Vadant-Deepika

Hindi

अनुक्रमणिका ।

प्रश्न	विषय	पृष्ठ

प्रश्न	विषय	पृष्ठ

वेदान्त दीपिका

अथवा

प्रश्नोत्तरी।

॥ मंगल ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

शब्दार्थः—यह पूर्ण है, वह पूर्ण है, पूर्ण से पूर्ण की वृद्धि होती है, पूर्ण में से पूर्ण ले लेने से भी पूर्ण ही अवशेष रहता है। ॐ शांतिः, शांतिः, शांति.।

---

१ ब्रह्म और जगत्।

प्रश्न—एक ब्रह्म के सिवाय और कुछ नहीं है तब संसार क्या है? ब्रह्म चैतन्य और जगत् जड़ है इसलिये जड़ जगत् चैतन्य ब्रह्म में से नही हो सक्ता।

उत्तर—अपने प्रश्न का उत्तर समझने के लिये तुझको पहिले अपनी बुद्धि निर्मल और एकाग्र करनी चाहिये। जब तक मैं तुझको समझाऊं तब तक इस प्रश्न के विषय मे जो कुछ तूने ख्याल बांध रक्खा है उस ख्याल को तुझे अलग रखना चाहिये। जिन दृष्टांतो से मैं तुझे समझाऊं उनका एक अंश ग्रहण करके समझना चाहिये। सब अंशों में दृष्टांत नहीं मिलेगा। यदि तू सब अंशों के ग्रहण करनेके भाव मे पड़ेगा, तो तू समझ नही सकेगा। तेरे प्रश्न करने से प्रतीत होता है कि तू ब्रह्म को नहीं जानता तो भी तू एक ब्रह्म के सिवाय और कुछ नही है ऐसे आरम्भ करके प्रश्न करता है। यदि तू ऐसा कहे कि शास्त्रों में लिखा हुआ देख कर और आप जैसे संत महात्माओं के मुख से निकले हुए वाक्य सुनकर मैं ऐसा कहता हूं तो भी तू झूठा है क्योंकि तू केवल दूसरे का कहा हुआ शब्द बोलता है, तू आप जान कर या समझ कर ऐसा नहीं कहता है। तू संसार को जानता है और संसार है ऐसा समझता है क्योंकि जगत् प्रत्यक्ष है। वस्तु को जानने की यह रीति है कि जैसी वस्तु है वैसा ही हमको बनना पड़ता है तब वह वस्तु जानी जाती है। जब तू हाथी को देखता है तब हाथी के भाव वाला हाथी के समान बड़ा होकर हाथी को देखता है और जब तू सुई के छिद्र को देखता है तब सुई के छिद्र के समान छोटा होकर सुई के छिद्र को देखता है। जब तू किसी वस्तु को देखता है तब तू अपने को भूल जाता है अर्थात् उसको और अपने दोनों को एक साथ नहीं जानता। यदि तू यों कहे कि मैं अपने भान सहित दूसरी वस्तु को देखता हूं या एक साथ बहुत

सी वस्तुओं को देखता हूँ तो तेरा यह कहना झूठ है। तू न तो अपने भान सहित वस्तु को देखता है और न बहुत सी वस्तुओं को एक साथ देखता है, क्षण बहुत थोड़े काल का होने से तुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं एक साथ अनेक वस्तुओं को देखता हूँ। सूक्ष्म बुद्धि से विचार करने से मालूम होगा कि क्षण में दो कार्य कदापि नहीं होते, उस विचार की रीति को एकाग्र चित्त होकर श्रवण कर:—शरीर की जाग्रत्, स्थूल अवस्था में संसार जाना जाता है, स्वप्न अवस्था में सूक्ष्म मानसिक संसार का भिन्न २ प्रकार से अनुभव होता है और सुषुप्ति अवस्था में प्रपंच को भिन्न २ भाव से जानने वाली बुद्धि का अभाव होने से संसार के अभाव का अनुभव होता है अर्थात् उस समय पर भी 'संसार नहीं है' इस प्रकार संसार को ही जानता है। देख, संसार भ्रम से दीखता है और उसको जानना तुझ से किसी अवस्था में भी नहीं छूटता तो तू ब्रह्मको किस प्रकार जान सके? एक को छोड़े तब दूसरे को जान सके। जाग्रत् की वस्तुओं को जानने के लिये जाग्रत् अवस्था की जरूरत है, स्वप्न के पदार्थ जानने के लिये स्वप्न अवस्था की आवश्यकता है, वस्तु और वस्तु का जानने वाला जब दोनों एक सत्ता में अर्थात् समान अवस्था में हो तब वस्तु की प्राप्ति होती है और जो दोनों भिन्न २ अवस्था में हो तो प्राप्ति नहीं होती। ज्ञानी पुरुष संसार और उसमें होने वाली शरीर की अवस्थाओं के और शरीर के भाव को छोड़ कर ब्रह्म को जानता है। शास्त्र का कथन भी इसी हालत का है और ज्ञानी भी इसी हालत का वर्णन करते हैं कि एक ब्रह्म के सिवाय

और कोई वस्तु वास्तविक नहीं है। अज्ञान की हालत मे रह
कोई ब्रह्म को नहीं जान सक्ता।

स्वप्न के पदार्थ स्वप्न में सच्चे प्रतीत होते हैं। स्वप्न अवस्था
स्वप्न के पदार्थ झूंठेहैं, यदि कोई यह जानना चाहे तो ज
नहीं सक्ता। स्वप्न की सृष्टि थोड़ी देर की और विचित्र होती
जब आदमी जागता है तब जानता है कि चारपाई पर पड़ा
मेरे भीतर स्वप्न हुआ, स्वप्न के पदार्थ, देश, काल और सब त्रि
मेरे सिवाय और कुछ नहीं थी। जैसे स्वप्न के पदार्थ झूठे हैं इ
प्रकार तत्त्व ज्ञानी पुरुष जो अज्ञान रूपी निद्रा में से ज्ञान र
जाग्रत् अवस्था को प्राप्त हुआ है वह ज्ञान के लक्ष से कहत
कि एक ब्रह्म के सिवाय और कुछ नहीं है।

ब्रह्म के जानने के लिये अज्ञान मे से हटने की आवश्यक
है। अज्ञान में से हटने के लिये ब्रह्म भाव वाला बनना चाहि
उसके विषय मे शास्त्र और महात्मा पुरुष जैसा कुछ बतात
वह यह है :-दृश्य और अदृश्य पदार्थों मे विकार रहित, अ
तथा बाहर एक हालत मे रहने वाला, अमाप, अक्रिय जो अ
वस्तु है, वह ब्रह्म है। अथवा प्रपंच से रहित और जिस मे प्रपंच
सिद्धि होती है, वह ब्रह्म है अथवा सब पदार्थों में अभिन्न रूप
रहने वाला ज्ञान स्वरूप ब्रह्म है। जाग्रत् अवस्था के सब
और विकारों को छोड़ कर रहने वाला ज्ञान, तथा स्वप्नावस्था
विकारो को छोड़ कर रहने वाला ज्ञान और सुषुप्ति के विक
को छोड़ कर अभाव का ज्ञान जो तीनों अवस्थाओं में
समान है वह ब्रह्म है। अथवा इन्द्रिय, मन और बुद्धि आदि

जिसका प्रकाश होने से वे सब अपने २ विषयों मे प्रवृत्त होते हैं, ऐसा जो सामान्य चैतन्य है वह ब्रह्म है। अथवा जगत् के विकार होने और न होने मे जो एक भाव से टिका रहता है वह ब्रह्म है। संसार विकारी है, जो ऐसे संसार और उसके विकार भाव से रहित, भिन्न २ भाव से रहित, सब प्रकार के लेप से रहित, द्वैत भाव से रहित, ज्ञान अज्ञान दोनों से परे, ज्ञान स्वरूप है, वह ब्रह्म है। जो मन वाणी का अविषय, निर्विकल्प, अव्यक्त और अक्षर है, वह ब्रह्म है।

तेरा प्रश्न है कि जगत् क्या है, उसका उत्तर सुनः—जैसे स्वप्न अवस्था में देखे हुए पदार्थ तेरे लिये जाग्रत् अवस्था मे नाम मात्र के हैं वैसे ही ज्ञानी पुरुष को जगत् नाम मात्र है। जैसे स्वप्न के पदार्थ जाग्रत् में न रहने से सच्चे नहीं हैं और स्वप्न में सुख और दुःख का अनुभव होने से और जाग्रत् मे उनकी स्मृति बनी रहने से, खरगोश के सींग की तरह जिनकी किसी को प्रतीति नहीं होती, ऐसे झूठे भी नहीं हैं। इसी प्रकार विचार दृष्टि से जगत् सच्चा नहीं है और सुख दुःख की प्रतीति होने से मिथ्या भी नहीं है अर्थात् सच्चे और झूठे दोनों भावों से विलक्षण अनिर्वचनीय जगत् है।

यदि तू कहे कि स्वप्न भी सच्चे होते हैं तो यह बात नहीं है। स्वप्न के पदार्थ सच्चे नहीं होते। स्वप्न कभी कभी भविष्य मे होने वाली बात बताते हैं परन्तु उनमें सच्चाई नहीं होती। सच्चाई तो जाग्रत् में ही होती है क्योंकि जाग्रत् में ही क्रिया से वस्तु की

प्राप्ति या हानि होती है। स्वप्न के धन से कोई श्रीमान् नहीं होता, जाग्रत् में धन मिलने से ही श्रीमान् होता है।

जैसे समुद्र मे तरंग, फैन, बुद्बुदे, चक्र आदिक होते हैं ऐसे ही ब्रह्म में जगत् है। जल में तरंगादिक केवल देखने मात्र हैं, जलके सिवाय अन्य कोई वस्तु नही है, वैसे ही जगत् भी बना नहीं है। जब तरंग आदि पर नज़र पड़ती है तब वे प्रतीत होते हैं और जब वस्तु रूप जल देखते हैं तब तरंगों की आकृति नही दीखती इसी प्रकार ब्रह्मरूप अधिष्ठान में ब्रह्म विकार को प्राप्त न होते हुए नाम मात्र दिखावा रूप जगत् है।

जैसे रस्सी में अंधेरा आदिक के कारण से सर्प प्रतीत होता है। यद्यपि रस्सी सर्प बनी नहीं है परन्तु जिस समय जिस रस्सी मे सर्प दिखाई देता है उस समय रस्सी और सर्प दो भिन्न २ वस्तु भी नहीं हैं, रस्सी के स्वरूप बिगड़े बिना ही भ्रम से सर्प देखने में आता है। जिस समय सर्प भ्रम होता है उस समय किसी को यह नही मालूम होता कि मुझे भ्रम होगया है और झूँठा सर्प ही भय कम्पादिक का कारण होता है इसी प्रकार का यह जगत् है। झूँठा होकर भी भ्रम से सच्चा प्रतीत होने लगता है।

जैसे मरुस्थल में वास्तविक जल नहीं है, तो भी रेत में सूर्य की किरणें पड़ने से दूर से जल है, ऐसा दीखता है। उस समय रेत जल रूप नहीं होजाता परन्तु रेत ही रहता है। ऐसे ही ब्रह्म-रूप रेत में मात्र जगत् रूप जल की प्रतीति होती है, ऐसा जगत्

है। यदि कोई ऐसा कहे कि रेत मे दिखाई देने वाले जल से किसी की प्यास नहीं बुझती, यदि जगत् भी रेत के जल के समान है तो उसके जल से प्यास बुझनी नहीं चाहिये और उससे प्यास बुझती है तो जगत् और मरुजल समान न हुए। यह कहना विना विचार का है क्योंकि जगत् अज्ञान रूप है और उसमे मरु-जल अज्ञान मे अज्ञान रूप है इसलिये दोनो की सत्ता में भेद है। जगत् की प्यास जगत् के जल के समान सत्ता मे जाती है और जगत् की प्यास जगत् से विषम सत्ता वाले मरु जल से नहीं जाती।

जैसे मिट्टी से बने हुए मटकने, सकोरे, घट आदि देखने में और भिन्न भिन्न उपयोग में आते समय मिट्टी सिवाय दूसरी वस्तु नहीं है; इसी प्रकार नाम रूप वाली आकृतियां अधिष्ठान में दिखाई देती हुई भी अधिष्ठान (ब्रह्म) से पृथक् नहीं हैं। वे ही आकृतियां जगत् है।

जैसे सुवर्ण मे हाथीघोड़े होना असम्भव है तो भी चित्र किये हुए हाथी, घोड़े दिखाई देते हैं, जैसे आकाश मे नीलता तीनों काल में नहीं है परन्तु दीखती है, जैसे लकड़ी का ठूँठ कभी मनुष्य नही होसक्ता परन्तु भ्रम से दिखाई देता है, इसी प्रकार भ्रम के कारण न बना हुआ भी जो दीखता है वह जगत् है।

जैसे वगीचे में अनेक वृक्ष होते हैं परन्तु वृक्ष वगीचे को छोड़कर दूसरी वस्तु नहीं हैं। समग्र वगीचे को देखने पर वृक्ष भिन्न भाव से नहीं दीखते और जब वृक्ष दीखते हैं तब वगीचे का भाव नहीं

रहता, वगीचे को छोड़कर वृक्षों को जो अलग अलग देखना है, वह जगत् है। यह समष्टि और व्यष्टि से समझना है।

जैसे शेखचिल्ली को अपना विचार प्रत्यक्ष दीखता है, जैसे नाटक के परदे में महल, मकान, मार्ग दीखते हैं, जैसे बाजीगर की हाथ की मिट्टी में रुपया दीखता है, जैसे बहुरूपिये पुरुष में स्त्री भाव की प्रतीति होती है, जैसे सीपी मे रूपा दीखता है, जैसे टेढ़े नेत्र से दूसरा चन्द्रमा दीखता है, जैसे जल के पात्रों में एकही सूर्य भिन्न २ रूप से दीखता है, जैसे एकही ऐंजिन से मशीनरी की भिन्नता के कारण अनेक प्रकार का कार्य होता है; ऐसा जगत् है।

श्रीकृष्ण और सुदामा दोनो लँगोटिये मित्र थे। दोनों ने एकही गुरु के पास विद्याभ्यास किया था। विद्याभ्यास करने के वाद दोनो अलग २ होगये थे। सुदामा दरिद्रावस्था मे अपने दिन काटता था और रातदिन श्रीकृष्ण का ध्यान किया करता था। स्त्री के वहुत कुछ कहने सुनने से वह मुट्ठी भर तंदुल ले कर श्रीकृष्णजी के मिलने के लिये द्वारका गया और उनसे मिलकर फिर सुदामापुरी मे लौट आया। श्रीकृष्णजी की कृपा से दरिद्र चला गया था और सुदामापुरी इन्द्र भवन के समान शोभा को प्राप्त हुई थी परन्तु सुदामा ने समृद्धि पाकर भी श्रीकृष्णजी की भक्ति नहीं छोड़ी। भक्ति वश भगवान् श्रीकृष्ण एक दिन उससे मिलने आये। भगवान् के दर्शन करने से सुदामा को इतना आनंद हुआ कि हृदय में न समाया। दोनो पुराने मित्र, वाल्या-

वस्था के सखा भाव समान वर्तने लगे। सुदामा की स्त्री, दास, दासी, नौकर सब सेवा करने में तत्पर रहने लगे। एक दिन श्रीकृष्णजी ने सुदामा की स्त्री से कहा "भाभी! आज तो तुम अपनी प्रथम अवस्था के समान सादा भोजन मात्र दाल रोटी बनाओ, मिष्टान्न भोजन खाते खाते जी भर गया है। सुदामा की स्त्री यह बात सुनकर रसोइया आदि होने पर भी प्रेम के कारण आपही रसोई बनाने लगी। तीन मनुष्यो के भोजन के लिये आटा मांड़ा। जब आधे आटे की रोटी कर चुकी तब श्रीकृष्ण और सुदामा स्नान करने के लिये ताल पर गये। रस्ते में सुदामा ने श्रीकृष्णजी से कहा "भगवन्, ऋषि मुनि आपकी माया को अद्‌भुत बताते हैं! वह माया कैसी है?" श्रीकृष्णजी ने कहा "मित्र, मेरी माया यही है, जो प्रत्यक्ष दिखाई देती है। जो कुछ जगत् तुझे दीखता है वह क्या है? वह सब माया ही तो है! जैसे कोई जादूगर अपनी टोकरी में से अनेक प्रकार के पदार्थ न होते हुए भी बाहर निकालता है और तमाशा पूर्ण होने पर उन सबको उसी टोकरी में डाल देता है ऐसे ही यह सब जगत् मेरी जादू की टोकरी की वस्तुऐं हैं। मैं सब से बड़ा जादू-गर हूँ इसलिये मेरी जादू विद्या मुझ पर नहीं चलती।" सुदामा ने कहा "महाराज! मैं आपकी इस बात को यथार्थ नहीं समझता, आप मुझे अपनी माया प्रत्यक्ष दिखलाइये," श्रीकृष्णजी ने कहा "भाई, तू अपना भजन करेजा, माया देखने मे क्या धरा है जो तू उसको देखने की इच्छा करता है?" इस पर सुदामा ने कहा "हे प्रभो, जब आप जैसे मेरे परम मित्र हो फिर भी मैं

आपकी माया को न जानूँ तो वड़ा आश्चर्य है। मित्र का ऐसा भाव नहीं होसक्ता कि मित्र की इच्छा को पूर्ण न करे इसलिये आप मेरी इच्छा को पूर्ण कीजिये क्योंकि जो मेरी इच्छा है उस को आप अपनी ही समझिये।" यह सुनकर श्रीकृष्णजी ने कहा "अच्छा, देखा जायगा। चलो अव तो स्नान करके जल्दी से घर लौट चलो, भाभी ने जल्दी आने के लिये कह दिया है।"

इस प्रकार वाते करते हुए दोनों तालाव पर पहुंचे और स्नान करने के लिये एक डुवकी लगाई। जव सुदामा ने दूसरी डुवकी लगाई तो उसको ऐसा मालूम हुआ कि वह वहा जारहा है। दिन भर वहते २ रात को किनारे पर जा लगा, रात अंधेरी थी, आस पास बस्ती नहीं दिखाई देती थी, थक भी गया था, वड़े कष्ट से रात भर किनारे पर व्यतीत की, सुबह पर्व का दिन था, पास के शहर मे से वहुत से स्त्री, पुरुप जो स्नान करने आये थे, सव उसको टिकटिकी लगाकर देखने लगे। इस माया-पुरी की राज कन्या भी स्नान करने आई थी, वह सुदामा का स्वरूप देखकर प्रसन्न हुई और सुदामा भी उसको देखकर मोहित हो गया। राजकन्या की प्रार्थना से सुदामा उसके साथ चला गया, वहां जाकर कन्या ने उसको वस्त्राभूषण पहनाये और अपने पिता के पास ले जाकर कहा "पिताजी, इस पुरुष के साथ मैं लग्न करना चाहती हू" सुदामा का सुन्दर स्वरूप और युवा अवस्था देखकर राजा प्रसन्न हो गया और उसने अपनी पुत्री के के साथ लग्न कर दिया। सुदामा और राजकन्या दोनों आनन्द-पूर्वक रहने लगे। थोड़े दिनों में एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसको

देखकर दम्पति के आनन्द का पार न रहा, राजा और राजकुमार (सुदामा का श्याला) सुदामा को वहुत ही चाहते थे। ऐसे आनन्द में दूसरा पुत्र हुआ फिर तीसरा फिर चौथा ऐसे ही क्रम क्रम से सात पुत्र हुए जिनके आनन्द मे सुदामा ऐसा मग्न हुआ कि उसको अपनी पूर्व स्त्री, घर और श्रीकृष्ण भगवान् तक की भी याद न रही। संयोग वश सुदामा की स्त्री राजकन्या वीमार पड़ी। उस समय सुदामा की और उसकी स्त्री की उमर साठ वर्ष के अन्दाज़ थी अर्थात् सुदामा को लग्न किये हुए पैंतीस वर्ष हुए थे। पुत्र भी वड़े २ हो गये थे स्त्री की दवा करने पर भी वीमारी वढ़ती चली गई और वह मर गई। राज-कुटुम्ब ने वड़ा शोक किया और सुदामा भी दुःखी हुआ। इस मायापुरी का एक नियम और स्थानों से विलक्षण था कि जिस पुरुष की स्त्री मर जाती थी तब उसके साथ पुरुष को भी चिता मे जलना पड़ता था और वह सता होना कहलाता था। यदि कोई अपनी स्त्री के साथ राजी से न जलता तो लोग उसे जबरदस्ती जला देते थे क्योंकि स्त्री के साथ न जलना सब प्रकार से राजा प्रजा के लिये अपशकुन समझा जाता था। सुदामा का विचार स्त्री के साथ जलने का न था परन्तु लोग जावरदस्ती उसको जलाने को लिये जाते थे, अपने को जावरदस्ती ले जाते हुए देखकर सुदामा चिल्ला चिल्ला कर कहने लगा, "अरे निर्दयी लोगो! तुम विना मौत मुझे क्यों मारते हो? मैं तो परदेशी हूँ, मुझे तुम्हारे यहा का कानून क्या मालूम, तुम्हारा कानून तुम्हारे देश के लिये है, मुझे मत जलाओ, मुझ पर दया करो दुष्टो दया करो!" इस

प्रकार सुदामा चिल्लाता रहा परन्तु उसकी किसी ने न सुनी। उसे लाचार होकर जलने के लिये जाना पड़ा। विचारा मन मे विचारने लगा "आज तो बुरे फसे! इन दुष्टों से कैसे छूटूं? सभी मेरे शत्रु हो रहे हैं, ईश्वर करे सो हो स्नान करके मरना शुभ है।" ऐसा विचार कर स्नान करने गया और डुबकी लगा कर सोचने लगा "जलने से तो वह जाना श्रेष्ठ है।" यह सोचता हुआ एक डुबकी लगाकर ज्यों ही उछला तो श्रीकृष्णजी किनारे पर खड़े थे। वे हंसकर कहने लगे "भाई! इतनी देर क्यों लगाई"? यह सुन सुदामा ने आश्चर्यपूर्वक कहा "आप यहां कैसे आ गये?" श्रीकृष्णजी ने कहा "क्यों भूल गया, हम स्नान करने आये थे, मैं स्नान करके किनारे पर खड़ा हूँ।" यह सुनकर सुदामा बड़े आश्चर्य में पड़ गया और कहने लगा "क्या कहते हो, पैंतीस वर्ष व्यतीत हो गये मुश्किल से दुष्टों के पंजे से छुटा हूँ।" श्रीकृष्ण ने उसे सोच में पड़ा देखकर कहा "तू पागल के समान क्या कह रहा है? क्या एक डुबकी में पैंतीस वर्ष हो गये। पाव घड़ी भी तो नहीं हुई।" इस तरह श्रीकृष्णजी हंसते रहे और सुदामा के आश्चर्य का पार न रहा, जो कुछ उसने अनुभव किया था वह उसके सामने से हटता न था। श्रीकृष्णजी उसका हाथ पकड़कर घर पर ले गये। वहां जाकर देखा तो सुदामा की स्त्री अभी रोटी बना नहीं चुकी थी। उसे देख सुदामा फिर कहने लगा "बड़ा आश्चर्य है! मैं स्वप्न तो नहीं देखता हूँ? पैंतीस वर्ष हो गये तो भी अभी रोटी नहीं बन चुकी।" तब श्रीकृष्णजी ने कहा "साधो मेरी माया का तमाशा देखा, यह ही माया है ऐसा

ही यह जगत् है, जो तूने देखा है और देख रहा है वह सब माया है, दोनों एक समान ही हैं।" यह सुन कर सुदामा ने श्रीकृष्णजी को दंडवत् की और कहा, "महाराज! कृपा करके अब अपनी माया मुझको कभी मत दिखाना!" सुदामा की विनय सुनकर श्रीकृष्णजी उसकी प्रार्थना के अनुसार वर देकर चले गये।

यह जगत् अज्ञान की जाग्रत् अवस्था में सच्चा मालूम होता है, मुमुक्षु भाव से झूठा मालूम होता है, ज्ञानी को अनिर्वचनीय है और विदेह के लक्ष से है ही नहीं। इस प्रकार अधिकार भेद से जगत् चार प्रकार का मालूम होता है; इन चारों मे से जगत् की सच्ची हालत का निर्णय करना चाहिये। जाग्रत् अवस्था का जगत् स्थूल भाव का पंचभौतिक है, स्वप्नावस्था का जगत् सूक्ष्म रूप है, जाग्रत् और स्वप्न का जगत् प्रत्येक मनुष्य को भिन्न भिन्न प्रकार का मालूम होता है जैसे सुखी को सुख रूप और दुखी को दुःख रूप आदि। जिस भाव वाला मनुष्य होता है उसी भाव से जगत् मालूम होता है और सुषुप्ति में सब का एक रूप होता है। उसमें सब भिन्नता का अभाव है वह ही जगत् का सच्चा स्वरूप है अर्थात् वास्तविकता से कुछ भी नहीं है। 'कुछ भी नहीं' यह जगत् की जड़ है, उसमें से शाखाओ का निकलना स्वप्न जगत् है और वृक्ष का फैल जाना जाग्रत् जगत् है। जगत् अंधेरा रूप है, अज्ञान रूप है, माया रूप है, अर्थात् वास्तव मे न होते हुए भी प्रतीत होना जगत् है।

'तू जो कहता है कि ब्रह्म चैतन्य है सो बता किस भाव से कहता है ? जो तू हिल, फिर सकने वालो को मात्र चैतन्य कहता हो वो ऐसा चैतन्य ब्रह्म नहीं है परन्तु सब में एकसा टिक कर न्यूनाधिक पात्रो की निर्मलता से हिलने फिरने में विशेपता से जो चैतन्य दीखता है उसमे रही हुई समान सत्ता को ब्रह्म चैतन्य कहते हैं। ब्रह्म चैतन्य स्वभाव वाला नहीं है परन्तु चैतन्य स्वरूप है और जगत् को तू जड़ बताता है सो क्या वह पत्थर लकड़ी के समान जड़ है ? नहीं ऐसा जड़ स्वरूप जगत् नहीं है जो वास्तविक वस्तु ही नहीं तो उसमे जड़ चैतन्य का भेद कैसे कहा जाय ? जगत् का स्वरूप जैसा मैं तुझे ऊपर बता चुका हूँ, वैसा ही है। 'जगत् जड़है' कहीं कहीं ऐसा उल्लेख भी किया है परन्तु वहां परब्रह्म को चैतन्य समझ कर उससे विरुद्ध स्वभाव वाला होने के कारण जगत् को जड कहा है। माया रूपी जगत् जो स्वतः कुछ भी नहीं कर सक्ता इसलिये जड़ कहा गया है और ब्रह्म को, जिसकी सत्ता से सब कुछ होता है, मुमुक्षुओं के समझाने के लिये चैतन्य कहा गया है।

फिर तू जो कहता है कि जड़ जगत् चैतन्य ब्रह्म से नहीं हो सक्ता। यह तेरा कहना, ब्रह्म और जगत् को दो वस्तु समझकर है। वास्तविक ब्रह्म और जगत् दो वस्तु है ही नहीं तब ब्रह्म में से जगत् कैसे उत्पन्न हो सके ? यदि कोई यह कहे कि सूर्य में अंधेरा और उजाला दोनों हैं अथवा यों कहे कि सूर्य मे अंधेरा

पैदा होता है तो जैसे यह कहना झूंठ है। इसी प्रकार ब्रह्म में से जगत् का पैदा होना कहना झूँठ है। जैसे सूर्य का अभाव अंधेरा है ऐसे ही स्वस्वरूप का अभान (न जानना) ही जगत् है, जगत् को सच मानने वाले अज्ञानियों के समझाने के लिये शास्त्र-कारों ने चैतन्य मे से जड़ की उत्पत्ति का दृष्टान्त दिया है। जैसे चैतन्य मनुष्य मे से जड़ नाखून और बालों की और चैतन्य रेशम के कीड़े मे से जड़ रेशम की उत्पत्ति होती है; वैसे ही चैतन्य ब्रह्म में से भी जगत् की उत्पत्ति कही गई है। उत्पत्ति का भाव समझाने के लिये ही ईश्वर को जगत् का उपादान और निमित्त दोनो कारण बताया है, यह सब जगत् 'ब्रह्म से अभिन्न है' ऐसा निश्चय कराने के लिये कहा है। शास्त्रकारो ने जगत् की उत्पत्ति भिन्न २ प्रकार से बताई है इससे प्रतीत होता है कि यह समझाने के लिये है, यदि उत्पत्ति सत्य होती तो एक ही प्रकार से बताई जाती, परन्तु ऐसा नहीं है। जो उत्पन्न हुआ नही है केवल प्रतीत मात्र है उसकी बताई हुई उत्पत्ति भी वास्तविक नहीं है।

तेरे प्रश्न का सम्पूर्ण उत्तर यह है। जगत् जो दीखता है सो अज्ञान से दीखता है वास्तविक वह है नही। ज्ञानी पुरुषों की दृष्टि से एक ब्रह्म के सिवाय और कुछ नहीं है। ब्रह्म चैतन्य स्वरूप में से जगत् उत्पन्न नहीं हुआ है; इसी से चैतन्य ब्रह्म में से जड़ जगत् की उत्पत्ति कैसे सिद्ध की जाय? इसलिये तूने जो विरोध दिखलाया था उसका भी अवकाश न रहा।

२ जीव।

प्रश्नः—जीव क्या चीज है? चैतन्य हो तो चैतन्य असंग है, इस लिये कर्ता भोक्ता नहीं हो सक्ता और जड़ हो तो क्रिया नहीं कर सक्ता।

उत्तरः—जो प्रश्न करने वाला है वही जीव है। जीव पंचभौतिक स्थूल वस्तु नहीं है जो तुझको हाथ में देकर बता सकूं परन्तु सूक्ष्म बुद्धि से तू उसे समझ सक्ता है। सावधान होकर श्रवण करः—तू ऐसा कहता है कि मैं जीव को नहीं जानता, नकार के भाव से कहने वाला अज्ञानी जीव है। आत्मभाव को छोड़कर अज्ञान के भाव को ग्रहण करके वर्तने वाला आत्मा जीव कहा जाता है। जगत् के प्रपंच में नित्य बने रहने का जिस का भाव हो वह जीव है। शरीर मे रहकर जो हर्ष, शोक, क्रोध, उद्वेग, और चिन्ता के वश होता है और वाणी आदिक इन्द्रियों को अपने २ व्यवहार मे नियुक्त करता है, वह जीव है। शरीर में व्यापक रह कर जो सुख दुःख को जानता है और जिसके वियोग से 'मनुष्य मर गया' ऐसा कहा जाता है, वह जीव है। अथवा जो शरीर में उष्णता और चैतन्यता वाला है वह जीव है। स्थूल शरीर के नाश के साथ जीव का नाश नहीं होता, वह जब स्थूल उपाधियों को छोड़ता है तब दीखतो नहीं है क्योंकि वह सूक्ष्म उपाधी स्वरूप है जो स्थूल दृष्टि का विषय नहीं है, जब वह कर्मवश फिर स्थूल उपाधी मे आता है तब विशेष चैतन्यता वाला प्रतीत होता है। सूक्ष्म शरीर में रहा हुआ तेजस जीव है। जब जीव

त्रिगुणात्मक मूलप्रकृति और विकृति से मुक्त होता है तब उसको परमात्मा कहते हैं अर्थात् जब मन की सब कल्पनाएं निर्मूल हो जाती हैं तब जीव उपाधि रहित ब्रह्मरूप होता है वही क्षेत्रज्ञ जीव आत्मस्वरूप है। वह ही सब लोगों को सुख देने वाला सुखस्वरूप है और जब वही आत्मा सत्त्व, रज और तमोगुण युक्त होता है तब जीव कहलाता है। जब चैतन्य देह, इन्द्रिय और मन सहित होता है तब, उसको जीवगुण कहते हैं, वह जीवगुण देह की अनेक प्रकार की चेष्टाएं सर्वात्मक ब्रह्म की सत्ता से करता है।

संतः—मैं तुझसे पूछता हूं, तू कौन है? रामशंकरः—रामशंकर। संतः—रामशंकर कहां है? रामशंकरः—मेरे शरीर का नाम रामशंकर है। संतः—तब तू रामशंकर न हुआ, तूने 'मैं' और 'मेरे' में कुछ भी अंतर न समझा (टोपी हाथ में लेकर) यह क्या है? रामशंकरः—टोपी। संतः—किस की है? राम०ः—मेरी है। संतः—क्या तू टोपी है? राम०ः—नहीं। संतः—'क्यों नहीं' राम०ः—टोपी का मैं मालिक हूँ और टोपी मुझसे अलग है, इसलिये टोपी मैं नहीं हूँ परन्तु टोपी मेरी है। संतः—जैसे टोपी तू नहीं है ऐसे ही रामशंकर भी तू नहीं है फिर तू अपने को रामशंकर क्यों कहता है? रामशंकर तो तेरे शरीर का नाम है 'तेरी' कही हुई वस्तु तुझसे पृथक् होती है तो भी तू शरीर के साथ एक भाव को प्राप्त होकर 'मैं' कहता है—समझता है, यही अज्ञान है और इस प्रकार कहने वाला तू जीव है। ज्ञान जीव में भी है परन्तु उलटे भाव वाला होने से जीव का ज्ञान अज्ञान कहाता है। तुझे आकाश

के दृष्टान्त से समझाता हूँ। आकाश एक है और अपरिच्छिन्न है तो भी उपाधि के सम्बन्ध से अनेक प्रकार का दीखता है। उपाधि भेद से चार प्रकार के आकाश को समझ १ महाकाश, २ मेघाकाश, ३ जलाकाश और ४ घटाकाश। इसी प्रकार चैतन्य को, एक और अपरिच्छिन्न होने पर भी उपाधि के सम्बन्ध से चार प्रकार का समझ १ ब्रह्म, २ ईश्वर, ३ जीव, ४ कूटस्थ। भीतर बाहर सब स्थान में एक समान भरा हुआ जो व्यापक आकाश है वह महाकाश है। मेघ अर्थात् बादल को जो अवकाश देता है वह आकाश और मेघ के जल में जो आकाश का आभास है उसको मेघाकाश कहते हैं। एक जल के भरे हुए मटके के जल को जितना आकाश अवकाश देता है और जल मे जो मेघाकाश का आभास है उस आभास सहित जलाकाश है। जल भरा हुआ मटका जिस स्थान पर रक्खा है वहां आकाश का जितना स्थान मटके ने रोक रक्खा है वह घटाकाश है। महाकाश के समान ब्रह्म है, मेघाकाश के समान ईश्वर है, जलाकाश के समान जीव है और घटाकाश के समान कूटस्थ है। सब स्थान में एकसा व्यापक जो महाकाश रूप ब्रह्म है उसका आभास जो ऊपर बताये हुए, मेघाकाश में पड़ता है वह ईश्वर है। आभास अधिष्ठान ब्रह्म सहित, मेघ रूप उपाधी में पड़ता है, उपाधि और आभास मिथ्या है और अधिष्ठान रूप ब्रह्म सत्य है। उपरोक्त ईश्वर का आभास अर्थात् मेघाकाश का आभास भरे हुए घट के जल में पड़ा, अर्थात्, शरीर रूपी घट तथा अंतःकरण रूप भरे हुए जल में पड़ा हुआ आभास अधिष्ठान कूटस्थ सहित जीव

हुआ। कूटस्थ का ब्रह्म से अभेद है।' शरीर घट है और उसमें व्यापक ब्रह्म को समझने की संज्ञा कूटस्थ है जैसे ब्रह्म आभास के विकार से पृथक् है वैसे ही कूटस्थ भी आभास के विकार से रहित है। आभास पड़ने का स्थान अंत:करण है। ऐसे अंत:करण और उसमे पड़ा हुआ आभास, अधिष्ठान कूटस्थ सहित जीव है। अंत:करण और आभास जिसको चिदाभास कहते हैं दोनों उपाधि हैं और अधिष्ठान कूटस्थ शुद्ध ब्रह्म है इस प्रकार उपाधि, उपाधि में पड़ा हुआ आभास और अधिष्ठान इन तीनों को एक समझना जीव का स्वरूप है।

हिमालय पर्वत की पृष्ठ के ऊपर जहां गंगा नदी का द्वार है, जिस प्रदेश का सिद्ध और ऋषि सेवन करते हैं, जो प्रदेश गंधर्व और अप्सराओं से व्याप्त है और अनेक प्रकार के वृक्ष तथा लताओं से शोभित है, वहां पर वैवस्वत मन्वंतर मे प्रचेता के पुत्र दक्ष प्रजापति ने यज्ञ करना आरम्भ किया। उसने अपनी पुत्री सती महादेवजी के साथ विवाही थी, महादेवजी उस के जामात्र थे। यज्ञ में निमंत्रित होकर देव, दानव, गंधर्व, पिशाच, आदित्य, वसु, रुद्र, साध्यदेव और मरुत गण के समुदाय और ऊष्मपा, धूमपा, ऋषि तथा पित्रो सहित ब्रह्मा यज्ञ मे भाग लेने के लिये जा रहे थे। इन सब को जाता हुआ देख कर सती ने महादेवजी से पूछा, "हे स्वामिन्! ये सब देवता कहां जा रहे हैं?" महादेव जी ने कहा "तुम्हारा पिता दक्ष यज्ञ कर रहा है, उसके निमंत्रण किये हुए ये सब देवता जा रहे हैं।" सती ने कहा "हे भगवन्! आपको निमन्त्रण क्यों नही आया? जामात्र भाव से अथवा

ईश्वर भाव से आपको अवश्य निमंत्रण देना चाहिये था ।" महादेवजी ने कहा, "हे प्रिये ! अभिमान से उसने ऐसा किया है ।" यह सुन सती अपने जी में सोचने लगी, बड़े शोक की बात है कि पिता के यहां इतना भारी उत्सव हो और मैं न जाऊं, मेरी सब बहिनें जा रहीं हैं, मेरे लिये निमंत्रण की क्या आवश्यकता है। ऐसा विचार कर महादेवजी से कहने लगी, "हे प्राणपते ! मेरा पिता निमंत्रण देना भूल गया होगा, यदि जान बूझकर निमंत्रण नहीं भेजा तो उसने बड़ा अनुचित किया। यद्यपि आप निमंत्रण विना नहीं जा सकते परन्तु मेरे लिये निमंत्रण की आवश्यकता नहीं है, मुझे आप आज्ञा दीजिये कि मैं जाऊं और पिता को आपकी याद दिलाऊं और यज्ञ में उपस्थित होऊं ।" महादेवजी ने कहा "हे देवी ! वह भूला नहीं है, उसने जानकर मेरा अपमान करने के लिये निमंत्रण नहीं भेजा है उसके यज्ञ मे अवश्य विघ्न होगा, इस समय तुमको जाना उचित नहीं है, मुझे उसने सामान्य देव समझा है, मेरी अवज्ञा करनेका फल उसे मिले विना नहीं रहेगा, जो मनुष्य पूजने योग्यका पूजन नहीं करता और अयोग्य का पूजन करता है वह आत्मघाती है, उसका नाश होता है ।" सती, जिसका अंतःकरण पिता के मोह से आच्छादित हो रहा था, महादेवजी के वाक्य अभिमान युक्त समझ कर बोली, "हे देव! असमर्थ पुरुष स्त्रियोंके मध्यमे अपनी बड़ाई का रणसिंहा फूंका करते हैं !" महादेवजी ने कहा, "हे कोमलांगी ! मैं सत्य ही कहता हूं ।" सती ने महादेवजी का कहना न माना और वह दक्ष के यज्ञ मे चली गई। दक्ष के यहां किसी ने उसका सन्मान

ने किया तब वह अपना अपमान देख कर दुखी हुई। यज्ञ में सब देवताओं को भाग दिया गया परंतु यज्ञ भोक्ता महादेव का भाग नहीं दिया गया, इस प्रकार यज्ञ भगवान् अपमानित हुए, यज्ञेश महादेव की क्रोधाग्नि से सब को आश्चर्य देते हुए वीरभद्र प्रगट हुए और विकाल स्वरूप से यज्ञ की समस्त सामग्री विध्वंस करने लगे। उन्होंने ऋषि और देवताओं को अंग भंग कर डाला, घबराहट फैल गई, सब भागने लगे, यज्ञ के मध्य में सामग्री जलाने से यज्ञ की अग्नि महा प्रलय की अग्नि के समान प्रचण्ड हुई। वीरभद्र ने दक्ष प्रजापति का शिर काटकर यज्ञ में जला दिया, भयंकर कुलाहल मच गया, सामर्थ्यवान् देव भी अपने प्राण बचाने के लिये भाग निकले। महादेवजी की आज्ञा न मानने से लज्जित हुई, यज्ञ भंग देखकर सती भी स्वयं जल गई! सब ऋषि विकलता में ही महादेवजी की स्तुति करने लगे। द्रवित भाव की स्तुति से महादेवजी प्रसन्न हो प्रगट होकर बोले, "हे ऋषियो, क्या चाहते हो?" तब देवताओं और ऋषियों ने कहा, "हे देव देव, यज्ञ के अशुभ को निवारण कीजिये।" महादेवजी ने "तथास्तु" कहा और जिस जिसके अंग टूट गये थे उनके अंग ठीक होगये। दक्ष का शिर जल जाने से यज्ञपशु का शिर उसके धड़ पर रक्खा गया जिससे दक्ष ने जीवित होकर महादेवजी की स्तुति की जो शिवसहस्र नाम से प्रसिद्ध है और महादेव की प्रसन्नता से सब सामग्री जैसी थी वैसी ही होगई और दक्ष का यज्ञ सफल हुआ। अब इस दृष्टान्त का

सिद्धान्त तुझे समझाता हूं जिससे जीव का स्वरूप तेरी समझ में आजायगा।

देख, जैसे दक्ष का धड़ मनुष्य आकृति का और शिर बकरे का है वैसाही जीव को समझ। जीव इस संसार मे शुद्ध आत्म-स्वरूप परमात्मदेव महादेव का पूजन रूपी महान् यज्ञ करने के लिये आया है जिसको वह नहीं करता और भूत प्रेतादिक पंच महाभूत और इन्द्रिय आदिक अन्य देवताओं की पूजा करता है इसलिये उसका यज्ञ भंग हो रहा है। मनुष्य के धड़ और बकरे के शिर का भावार्थ सुन। शुद्ध चैतन्य, धड़ का भावार्थ है, माया सम्बन्धी मुख बकरे के शिर का भावार्थ है। जैसे बकरा 'मैं मैं' करता है और उसका शिर काटा जाता है ऐसे ही प्रपंच वाले मुख से 'मैं मैं' करने वाले अहंकारी जीव का शिर काटा जाता है। जब चैतन्य स्वरूप आत्मदेव को प्रसन्न करता है तब उसका जन्म मृत्यु रूप विघ्न निवृत्त होकर निर्विघ्न यज्ञ समाप्त होता है।

एक समय महादेवजी तपश्चर्या करने वन को जाने के लिये तत्पर हुए। तब पार्वतीजी ने कहा, "हे स्वामी, आप वन में जाते हैं यहां अकेले मेरा जी कैसे लगेगा?" महादेवजी ने कहा, "हे प्रिये! तू अपनी शक्ति से अपने शरीर से पुत्र उत्पन्न कर लीजो, उसके साथ तेरा जी बहलता रहेगा।" इस प्रकार आज्ञा देकर महादेवजी तप करने चले गये। पार्वती ने अपने शरीर के मैल को खुरचकर उसका एक पुतला बनाया और महादेवजी की आज्ञा स्मरण करने से वह सजीव होगया, वही गणपति हुआ।

पार्वतीजी उसको लाड़ लड़ाकर अपना समय व्यतीत करने लगीं। ऐसा करते २ गणपति वड़ा हुआ। महादेवजी अभी तप करके न लौटे। जहां महादेवजी तप कर रहे थे वहां घूमते २ नारदजी पहुँचे और उन्होंने अपनी नारदीय विद्या लगाई, महादेवजी से कहा, "हे महेश! आप तो यहां तप कर रहे हैं और पार्वती घर पर रह कर पुत्र उत्पन्न कर रही हैं!" भोले महादेव पार्वती को पुत्र उत्पन्न करने की आज्ञा दे आये थे यह वात वे भूल गये थे उन्हें घर की पूर्व की स्मृति आई और वे जी में विचारने लगे, घर से आये वहुत दिन हुए, अव घर चलना चाहिये और नारद जो कहता है उसकी भी परीक्षा लेना चाहिये ऐसा विचार कर महादेवजी घर को लौटे। घर पर पार्वतीजी स्नान कर रही थीं और गणपति को चौकी पर वैठा दिया था कि कोई मनुष्य घर में आने न पावे, इतने मे महादेवजी आपहुंचे और घर में घुसने लगे। गणपति ने उनको घर मे जाने से रोका। उसे रोकते हुए देखकर महादेवजी ने कहा, "हे दुर्भाग्य, मैं अपने घर में जाता हूँ, तू रोकने वाला कौन है?" गणपति ने झुंझलाकर कहा "हे भिक्षुक, सीधा सीधा लौटजा। नहीं तो इस सांग से तेरा शिर चूरा चूरा कर दूंगा। जाने कहां का लंगोटिया है, अपना घर वताता है।" महादेवजी को यह सुनकर क्रोध आया और वे बलात्कार से घुसने लगे, गणपति पार्वती की आज्ञानुसार रोकने लगा। पहिले तो क्रोधयुक्त बोलचाल हुई और फिर दोनों मे घूसों मुक्कों के साथ युद्ध होने लगा। गणपति ने इतना पराक्रम दिखलाया कि महादेवजी भी आश्चर्य करने लगे। अन्त में महादेवजी ने गणपति का शिर

बल से काट कर धड़ से उड़ा दिया जो समुद्र में बहुत दूर जाकर गिरा, उससे भयंकर शब्द हुआ और समुद्र के जीव जन्तुओं ने उसको तत्त्त्रण खालिया। शब्द को सुनकर स्नान करती हुई पार्वतीजी वस्त्र लपेट कर बाहर निकल आईं, महादेवजी को देखकर प्रसन्न हुईं परन्तु जब गणपति का शिर कटा हुआ देखा तब शोक में डूब गईं और विलाप करने लगीं। महादेवजी ने पूछा, "हे प्रिये! क्यों रोती है? यह कौन था?" पार्वतीजी ने कहा, "था कौन! आपका पुत्र था।" महादेवजी ने कहा, "मेरा पुत्र कैसा? मैं तो तपश्चर्य्या कर रहा था।" पार्वतीजी ने चलते समय पुत्र उत्पन्न करने की आज्ञा देने का स्मरण कराया और वे कहने लगीं "यह तो आपने बहुत बुरा किया। बालक को मार-डाला, आप उसे सजीव कीजिये।" महादेवजी ने कहा, "उसके मस्तक का नाश हो गया है अब वह सजीव नहीं होसक्ता।" पार्वतीजी ने कहा "चाहे जैसा हो, उसके सजीवन हुए बिना मैं न मानूंगी।" तब महादेवजी ने अपने गण को बुलाकर कहा "हे गण, तू जा और जो प्रथम मिले उसका शिर काटकर मेरे पास लेआ।" यह सुनकर वह गण चला और प्रथम ही उसको एक हाथी मिला उसका शिर काट कर महादेवजी के पास ले आया। महादेवजी ने उस शिर को गणपति के धड़ पर रखकर जोड़ दिया और वह सजीवन होगया परन्तु उसकी भद्दी आकृति देख पार्वतीजी प्रसन्न न हुईं और बोलीं, "हे स्वामी! आपने मेरे पुत्र की कैसी भद्दी आकृति करदी! अब उसको कौन मानेगा, उसका विवाह भी कोई न करेगा।" महादेवजी ने कहा, "हे प्रिये, घबरा मत,

सब कुछ होगा।" इस प्रकार पार्वतीजी को सन्तुष्ट करके महादेवजी ने गणपति को वरदान दिया, "हे पुत्र, तू सब देवताओ मे श्रेष्ठ और प्रथम पूज्य समझा जायगा, प्रत्येक शुभ कार्य में प्रथम तेरा ही पूजन होगा, फिर अन्य देवताओं की पूजा होगी और तेरा पूजन न करके जो कोई दूसरे का पूजन करेगा तो उसका पूजन व्यर्थ होगा, तू सिद्धि बुद्धि का पति होगा।" इतना भारी वरदान सुनकर पार्वतीजी प्रसन्न हुईं।

गणपति–इन्द्रिय आदि के देवताओं का पति जीव, चैतन्य-स्वरूप होकर चैतन्यदेव ब्रह्म (महादेव) को न मानने लगा और मायारूपी पार्वती की आज्ञा का पालन करने लगा–माया की उपासना करने लगा, चैतन्य प्रभु से शत्रुता की; इसलिये शरीर देवता का और शिर हाथी का हुआ। देख, चैतन्य होकर जिसका सुख माया में है वह जीव है। गणपति के प्रथम पूजन होने का अर्थात् श्रीगणेशायनमः का यह अभिप्राय है कि गणपति की जो व्यवस्था हुई है उसके स्मरण सहित सब कार्य करना और चैतन्य को भूलकर माया के वश न होजाना–माया के कार्य करते हुए भी असंग अक्रिय आत्मस्वरूप को न विसारना।

आत्मा अक्रिय, निर्विकार और निरञ्जन है, भिन्न भिन्न भाव की चैतन्यता से रहित सामान्य चैतन्यस्वरूप है। जैसे सूर्य और सूर्य का प्रकाश अलग नहीं है एकको छोड़कर दूसरा नहीं रहता। वैसे ही चैतन्य और चिदाभास अलग नहीं है। चैतन्य को छोड़ कर चिदाभास नहीं रहता। सूर्य सब स्थानों में समान प्रकाश

वाला है परन्तु जैसा पात्र होता है उस पात्र की निर्मलता अथवा मलिनता के अनुसार प्रकाश की न्यूनता अथवा विशेपता प्रतीत होती है। जल, लकड़ी, निर्मल कांच इन सब पर प्रकाश पृथक् २ रूप से दिखाई देने पर भी वह एक है। सूर्य का प्रकाश जव सूर्यकान्त (आतिशी शीशे) पर पड़ता है तब वही प्रकाश विशेष होकर दूसरी वस्तुओं को जला देता है। सूर्य के सामान्य प्रकाश में जलाने की विशेषता नहीं है, सूर्यकान्त से संवन्ध वाला सूर्य का प्रकाश क्रिया करने वाला दिखाई देता हुआ भी जैसे उनसे असंग है ऐसे ही सामान्य प्रकाश वाला ब्रह्म अपरिच्छिन्न असंग है। जैसे सूर्यकान्त में से पड़ा हुआ विशेष प्रकाश परिच्छिन्न और नाश वाला है वैसे ही विशेष चैतन्य चिदाभास है। क्योंकि पात्र के सहारे से है, पात्र अविद्या का कार्य होने से नित्य रूपान्तर वाला है और विद्या से नाश को प्राप्त होता है, उसके साथ विशेष चैतन्य का भी अभाव होता है। विशेष चैतन्य को चिदाभास कहते हैं। कूटस्थ और उपाधि के साथ में एकमेक भाव को प्राप्त हुआ जीव कहाता है।

आज कल वड़े वड़े शहरों में विजली से चलने वाली ट्रामगाड़ियां चल रही हैं। रेल की पटरियों के समान लोहे की पटरियां सड़क पर बिछाई गई हैं, दोनों पटरियों के ऊपर टैलिग्राफ (Telegraph) के तार के समान एक तार होता है। पटरियों और तार के बीच मे होकर ट्राम की गाड़ियां आती जाती हैं जहां जहां पटरियां हैं वहां वहां उनके ऊपर तार है। एक स्थान

पर विजली उत्पन्न करने का अंजन रहता है, उसमें से विजली उत्पन्न होकर ऊपर वाले तार में घूमा करती है, ट्राम की गाड़ियों में अंजन नही होता, उनके ऊपर की तरफ एक लकड़ी होती है वह लकड़ी ऊपर वाले तार को छूती है, तार मे घूमने वाली विजली लकड़ी द्वारा गाड़ियों में लगे हुए यंत्र मे आती है और उसे विशेप शक्ति वाला वनाती है जिससे मनुष्यों के वोझ सहित ट्राम की गाड़ी दौड़ती है। उसमें सीधे उलटे चलाने की और रोकने की कल होती है। ऊपर वाले तार में घूमने वाली विजली जव तक गाड़ी की ऊपर की लकड़ी के साथ न मिले तव तक गाड़ी और उसका यंत्र कुछ नहीं कर सक्ता और उपाधि रहित तार में रहने वाली सामान्य विजली भी कुछ नहीं कर सक्ती। इसी प्रकार समझ कि गाड़ी मनुष्य का शरीर है, अन्त.करण गाड़ी में रहने वाला यंत्र है, जव सामान्य चैतन्य स्वरूप सर्व-व्यापी शुद्ध व्रह्मका संवंध अन्तःकरण से होता है तव अन्तःकरण रूप यंत्र मे विशेष चैतन्यता आती है और वह गाड़ी रूप शरीर को खेंचने लगती है। जैसे उस गाड़ी का यंत्र सामान्य चैतन्यता से विशेष चैतन्यता वाला होता है ऐसे ही सामान्य चैतन्य सहित विशेप चैतन्य वाला जीव है, जड़ गाड़ी है, संवंध वाला यंत्र और विशेष चैतन्य ये उपाधि हैं उनको हटाने से ट्राम का सामान्य सत् स्वरूप ऊपर के तार की विजली शेष रहती है उसे व्रह्म समझ और वह ही जीव का शुद्ध स्वरूप है।

ऊपर जो जीव का स्वरूप समझाया है उससे समझ में आगया होगा कि प्राकृत जीव कोई मुख्य एक वस्तु नहीं है परन्तु

तीन का एकत्र भाव जीव है वे तीन इस प्रकार हैं (१) शुद्ध चैतन्य जो निर्विकार असंग है (२) आभास और (३) अज्ञान का कार्य अन्तःकरणादि। पिछले दो माया के कार्य हैं। आभास, चैतन्य और अन्तःकरण दोनों के साथ संबंध वाला है। वह चैतन्य की सत्ता को माया में मिलाता है जिससे जड़ माया चैतन्य होकर पृथक् २ भाव से कार्य करती है, यह चिदाभास न तो सम्पूर्ण चैतन्य है और न सम्पूर्ण जड़ है। चिदाभास भी माया में पड़ने से माया का है। जैसे अंजन में अग्नि और जल दो वस्तु मुख्य हैं, अग्नि को चैतन्य स्वरूप और जल को जड़ रूप समझ। रेलगाड़ी को न मात्र अग्नि चलाती है न मात्र जल चलाता है परन्तु अग्नि की उष्णता जल में आती है, उष्णता देती हुई भी अग्नि जल से पृथक् है, जल में से निकली हुई बाफ क्रिया करती है। बाफ और जल दोनों ही को जड़ समझ क्योंकि बाफ भी जल का अंश है। ऐसे ही ब्रह्म रूप अग्नि की उष्णता मायारूप जल में आने से बाफ स्वरूप चिदाभास सबके सहित क्रिया करने के योग्य होता है, वही कर्ता भोक्ता जीव है, वही ज़ीव अपनी उपाधि के दोनों अंशों को छोड़कर शुद्ध ब्रह्म है।

जीव में कर्ता भोक्ता का अभिमान अज्ञान है वह अज्ञान माया का कल्पित है, कल्पित अवस्था में कल्पित को सच्चा समझने वाला जीव भी कल्पित है। जब वह माया के कल्पित दबाव से मुक्त होता है तब उसी समय प्राकृत जीव हटकर जीव का आद्य स्वरूप शेष रहता है जो परमात्मा ब्रह्म है।

ट्राम के दृष्टान्त से भी यही सिद्ध होता है कि सामान्य सत्ता स्वयं क्रिया नहीं करती और ट्राम की जड़ गाड़ियां भी क्रिया नहीं करतीं, यंत्र में लकड़ी के सहारे से आई हुई सत्ता यंत्र की विशेष सत्ता सहित कार्य करती है।

अंतिम सारांश—चैतन्य के प्रकाश सहित माया का भाव जीव है इससे प्राकृत जीव असंग नहीं है और चैतन्य के आभास से निदान जड़ भी नहीं है वही अज्ञान स्वरूप जीव कर्ता भोक्ता है।

३ अज्ञान और ज्ञान।

प्रश्नः—अज्ञान और ज्ञान किसको होता है ?

उत्तरः—तेरे प्रश्न का विचार करने से यह भाव निकलता है कि आत्मा ज्ञान स्वरूप है और जो ज्ञान स्वरूप है उसको और ज्ञान क्या होगा ? ज्ञान स्वरूप को अज्ञान कदापि हो नहीं सक्ता इसलिये उसको अज्ञान क्या होगा ? इसी प्रकार माया अज्ञान स्वरूप है अज्ञान को ज्ञान नही हो सक्ता, उसे ज्ञान होना किसी प्रकार से संभव नहीं है। इस प्रकार ज्ञान किसको होता है ? अज्ञान किसको होता है ? ज्ञान अज्ञान दोनो किसको होते हैं ? ये तीन प्रश्न हुए। ज्ञान जानने को कहते हैं। कोई भी वस्तु, यह वस्तु है, अथवा वह वस्तु है, इस प्रकार वस्तु के जानने को वस्तु का ज्ञान कहते हैं। जब इन्द्रिय का संबंध वस्तु से होता है तब इन्द्रिय द्वारा अंतःकरण की वृत्ति बाहर निकल कर वस्तु के आकार की हो जाती है तब वस्तु का ज्ञान चिदाभास सहित अंतःकरण रूप जीव को होता है। वस्तु का ज्ञान, परोक्ष और अपरोक्ष दो प्रकार का होता है। जानने वाला जानने की वस्तु से पृथक् रहकर उसको जाने, वह परोक्ष ज्ञान कहाता है और जानने वाला जानने की वस्तु से मिलकर उसे जाने यह अपरोक्ष ज्ञान है। जैसे एक टोपी रक्खी हुई है जब नेत्र का संबन्ध उससे हुआ तब चिदाभास सहित अंतःकरण की वृत्ति टोपी के आकार के समान होकर अंत.करण ने जाना कि वह टोपी है, यह टोपी का परोक्ष ज्ञान हुआ और टोपी को नेत्र से देखकर

अंतःकरण की वृत्ति टोपी के आकार की होकर टोपी देश में अंतःकरण ने टोपी को जाना कि यह टोपी है, यह टोपी का अपरोक्ष ज्ञान हुआ। अथवा जैसे किसी मनुष्य ने कहा कि मिश्री मीठी है यह शब्द सुनकर मिश्री का स्वाद जो मिठास उसके साथ अंतःकरण की वृत्ति मिठास के आकार की हुई और अंतःकरण ने जाना कि मिश्री मीठी है यह मिश्री का परोक्ष ज्ञान हुआ और जब मिश्री खाई गई तब स्वादेन्द्रिय के साथ अंतःकरण की वृत्ति मिश्री के रूप की होकर मिश्री के स्थान मे अंतःकरण ने जाना कि यह मिश्री मीठी है, वह मिश्री का अपरोक्ष ज्ञान है।

'आत्मा निष्क्रिय, असंग और सर्व व्यापक है' ऐसे शास्त्र और गुरु के मुख से सुनकर निष्क्रिय, असंग और सर्व व्यापक का शब्द इन्द्रिय ने ग्रहण किया उसके साथ अंतःकरण की वृत्ति उस आकार की हुई और उस देश से हट कर अंतःकरण से जाना, यह आत्मा का परोक्ष ज्ञान हुआ और जब गुरु मुख से सुना तू सर्व व्यापक चैतन्य ब्रह्म रूप है तब चिदाभास सहित अंतःकरण की वृत्ति सर्व व्यापि चैतन्य शब्द के अर्थ स्वरूप ब्रह्म से सम्बन्ध वाली हुई—उसी के आकार की हुई और उसी के देश में जाना यह आत्मा का अपरोक्ष ज्ञान हुआ। इससे यह सिद्ध हुओ कि चिदाभास सहित जो अंतःकरण है उसको ज्ञान हुआ, वह अंतःकरण ज्ञानस्वरूप नहीं है तथा अत्यन्त अज्ञान स्वरूप भी नहीं है—मध्य में होने से उसको ज्ञान अज्ञान हो सक्ता

है। व्यवहार में जिसको अज्ञान कहते हैं वह अज्ञान मात्र जड़ स्वरूप नहीं है परन्तु ज्ञान से उल्टे भाव वाला जो ज्ञान है उसका नाम अज्ञान है। अज्ञान में उल्टे भाव से ज्ञान रहता है। सतो-गुण प्रकाशवान है उसमें जो ज्ञान होता है वह ज्ञान कहाता है और तमोगुण के अंधेरे में और रजोगुण की चंचलता में जो ज्ञान होता है वह अज्ञान कहाता है। ज्ञान स्वरूप जो कूटस्थ है उसका विषय ज्ञान और अज्ञान नहीं है और अत्यन्त माया के अंधेरे में भी ज्ञान अज्ञान नहीं हो सक्ता परन्तु चैतन्य की दमक वाले अज्ञान का अथवा चिदाभास सहित अन्तःकरण का ही ज्ञान और अज्ञान विषय है। जो जिसका विषय होता है उसको वह ही ग्रहण करता है। वास्तविक रीति से तो ज्ञान अज्ञान दोनों ही अज्ञान हैं परन्तु दोनों के फल में भिन्नता है। अज्ञान दु.ख रूप और फंसाने वाला है उसके विरुद्ध भाव वाला ज्ञान, अज्ञान की फंसावट और दुःख का नाश करने वाला है। जब ज्ञान उत्पन्न होकर अज्ञान का नाश करके स्वयं भी नहीं रहता तब शुद्ध स्वरूप आत्मा रह जाता है।

शन्तनु राजा के मरने पर भीष्मजी अपने सौतेले भाई चित्रांगद को गद्दी पर बैठा कर, काशीराज की पुत्रियों के स्वयंवर में जा, उसकी तीन पुत्रियां अंबा, अंबिका और अंबालिका हरण करके ले आये और अपने भाइयों के साथ उनके विवाह करने की सम्मति अपनी माता सत्यवती से की तब उनमें से बड़ी लड़की ने भीष्मजी से कहा कि मेरी इच्छा सौम्य देश के शाल्व राजा के साथ विवाह करने की है। यह सुनकर भीष्मजी

ने माता और वृद्ध मंत्रियों की सम्मति लेकर वृद्ध ब्राह्मणों और दासियो के साथ अंबा को उस राजा के यहां भेज दिया। उसने जाकर राजा से अपना मनोरथ कहा। राजा ने कहा कि तेरा नाम अन्नपूर्णा है और भीष्म तुझको हरण करके लेगया था इसलिये मैं तुझ से विवाह नहीं कर सक्ता। अन्नपूर्णा ने कहा कि मैं दूसरे के साथ विवाह करना नहीं चाहती, भीष्म ने अपने भाई के लिये हरण किया था परन्तु मेरे कहने से आप के पास भेज दिया है अब आप मुझे ग्रहण कीजिये। राजा शाल्व ने न माना। वह रोती हुई वहां से निकली और चिन्ता करती हुई तपस्वियों के आश्रम में गई और उनके समझाने से फिर भीष्म के पास गई परन्तु भीष्म ने भी उसे ग्रहण न किया। दोनों ओर से भ्रष्ट होकर रोती हुई वह फिर वन में चली गई और तपस्वियों में रहने लगी। उन्होंने उसे परशुराम से मिलाया। अंबा ने उन से कहा कि मैं भीष्म का वध चाहती हूँ। परशुरामजी ने भीष्मजी से युद्ध किया परन्तु वे उनको परास्त न कर सके। तब अंबा निराश होकर नदी किनारे जाकर भीष्म का वध करने के लिये तपश्चर्या करने लगी। कई दिन पीछे महादेवजी प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष हुए, तब अंबा ने उनसे कहा कि मैं भीष्म का वध किया चाहती हूं। महादेवजी ने वरदान दिया कि तू भीष्म का वध करेगी। अंबा ने कहा कि मैं स्त्री हूं भीष्म का वध कैसे कर सक्ती हूँ? महादेव ने कहा कि तू मरने के पीछे राजा द्रुपद के घर में कन्या होकर जन्मेगी फिर कुछ दिन पीछे पुरुषत्व प्राप्त करेगी, तुझे इस जन्म की स्मृति बनी रहेगी।

यह कह कर महादेवजी अन्तर्ध्यान हो गये, उनके अन्तर्ध्यान होने के पश्चात् अंबा चिता बना कर जल गई। राजा द्रुपद ने भीष्म का वध करने के लिये महादेवजी से संतान मांगी तब महादेवजी ने कहा कि तुम्हारे एक कन्या होगी जो कुछ दिन पश्चात् पुरुषत्व प्राप्त करके भीष्म का वध करेगी। राजा ने रानी से यह वृत्तान्त कहा। जब कन्या उत्पन्न हुई तब रानी ने कह दिया कि पुत्र उत्पन्न हुआ है, सब संस्कार पुत्र के किये गये। राजा और रानी के सिवाय और कोई नहीं जानता था कि कन्या उत्पन्न हुई है। जब वह कन्या शिखंडिनी विवाह के योग्य हुई तब राजा द्रुपद ने दशार्णवपति की कन्या से उसका विवाह कर दिया। थोड़े दिन पश्चात् जब दशार्णवपति को अपनी कन्या से विदित हुआ कि शिखन्डी स्त्री है तब उसने राजा द्रुपद के पास चिट्ठी देकर एक दूत भेजा कि तूने मुझसे छल किया, शिखंडी स्त्री है। राजा द्रुपद ने लिख दिया कि यह बात झूठी है। फिर भी अपनी पुत्री से वही समाचार मिलने से दशार्णवपति युद्ध करने के लिये तत्पर हुआ। यह समाचार पाकर राजा द्रपद ने भी युद्ध की तैयारी की। यह सब समाचार शिखंडिनी सुन कर विचारने लगी कि यह सब उत्पात मेरे कारण हो रहा है इसलिये यदि मैं प्राण त्याग दूं तो सब झगड़ा शान्त हो जाय। यह विचार कर वह प्राण त्यागने के लिये वन में गई और निराहार रहने लगी। उस वन में स्थूलकर्ण नाम का एक यक्ष रहता था, शिखडिनी की कथा सुन कर उसको दया आगई। वह कहने लगा कि यदि तू अपने प्रण को पूर्ण करे तो थोड़े दिन के लिये

तुझे अपना पुरुपत्व देकर तेरे स्त्रीपने को मैं ले सक्ता हूं। शिखंडिनी ने कहा कि जब मेरा श्वशुर लौट जायगा तब मैं आकर तुझे तेरा पुरुषत्व लौटा दूंगी। इस पर यक्ष ने अपना पुरुषत्व शिखंडिनी को देदिया और उसका स्त्रीपन आप लेलिया। शिखंडिनी प्रसन्न होकर अपने घर आई और सर्व वृत्तांत अपने पिता से कहा। इतने मे दशार्णवपति आपहुँचा और राजा द्रुपद के पास उसने अपना पुरोहित भेजकर कहलाया कि तुमने मुझे धोका दिया है इसलिये मैं तुम्हारा वध करूंगा। राजा द्रुपद ने कहला भेजा कि मैंने धोका नहीं दिया है, तुम्हारा जामात्र स्त्री नही हैं परन्तु पुरुष है, किसी ने तुमसे झूठ कह दिया है, इसकी परीक्षा लीजाय। दशार्णवपति ने स्त्रियां भेज कर परीक्षा ली तो ज्ञात हुआ कि स्त्री नहीं है पुरुष है तब वह प्रसन्न हो शिखंडी को बहुत सा धन देकर अपनी पुत्री की निन्दा कर अपने नगर को लौट गया। इसी अवसर मे एक दिन कुबेर स्थूलकर्ण के निवास स्थान पर गये और पूछा कि स्थूलकर्ण कहां है। तब यक्षों ने कुबेर को स्थूलकर्ण का सब वृत्तांत कह सुनाया। स्थूलकर्ण बुलाया गया। जब वह लज्जित होता हुआ आया तो कुबेर ने उससे कहा कि तू ने यक्षों का अपमान किया है इसलिये अब तू स्त्री रहेगा और शिखंडी पुरुप रहेगा, उसके मरने के पश्चात् तू पुरुष होगा। ऐसा कह कर कुबेर चले गये। जब शिखंडी लिया हुआ पुरुषत्व देने स्थूलकर्ण के पास गया तो उसने कुबेर के शाप का वृत्तांत सुनाया, यह सुन शिखंडी प्रसन्न हो घर लौट आया और उसने बहुत सा दान पुण्य किया। इसके पश्चात् शिखंडी और धृष्टद्युम्न दोनों

राजकुमारों को द्रोणाचार्य ने धनुर्विद्या सिखाई। कौरवों और पाण्डवों के महायुद्ध में जब शिखंडी भीष्म के सन्मुख युद्ध करने को हुआ तब भीष्म ने उसके सन्मुख अस्त्र चलाना अस्वीकार किया क्योंकि नारदजी के कहने से उन्हे यह सब वृत्तांत ज्ञात होगया था। "शिखंडी में पुरुषत्व है परन्तु वास्तविक पुरुषत्व नहीं है-वह स्त्री है, मैं स्त्री को कदापि शस्त्र से न मारूंगा।" यह विचार कर भीष्मजी ने शिखंडी पर शस्त्र न चलाया और उसके सहारे से उनका मरण हुआ।

भीष्मजी पूर्व जन्म मे वसु—वसे हुए आत्म स्वरूप थे। चैतन्य विशिष्ठ-वसिष्ठ की कामना स्वरूप कामदुधा गऊ को चुराने से भ्रष्ट होकर व्यक्तिगत साक्षी चैतन्य आनन्दाभास हुए। माया और चैतन्य की संधि स्वरूप काशी के राजा की त्रिगुणात्मक तीन पुत्रियो अंबा, अंबिका और अंबालिका को स्वयवर में से अपने सौतेले भाई चिदाभास और सदाभास रूप चित्रांगद और विचित्र से विवाह करने के लिये हरण कर लाये। घर से आने के पश्चात् सतोगुण रूप बुद्धि अंबा ने कहा कि (सौम्यता स्वरूप) सौम्य देश के राजा के साथ विवाह करने को मैंने निश्चय किया है। भीष्म ने उसको वहां भेज दिया। सौम्यता का जीवन सतोगुण है इस कारण सौम्य देश के राजा ने अम्बा को अन्नपूर्णा-जननी समझकर उसके साथ विवाह नहीं किया, फिर भीष्म ने भी उसे ग्रहण न किया। भीष्म अज्ञान का साक्षी था उसकी कोई सत्ता होती नहीं। तब अंबा वन में गई, परशुराम से भीष्म का

वध कराना चाहा परन्तु सामान्य सत्ता रूप परशुराम विशेष चैतन्य वाले आनन्दाभास साक्षी रूप भीष्म के गुरु होने पर भी भीष्म का वध न कर सके। निराश होकर अंबा ने महादेव की तपश्चर्या की। महादेवजी ने भीष्म के वध करने का वरदान अंबा को दिया। माया और चैतन्य दो पद हैं जिसमें ऐसे जीव रूप राजा द्रुपद ने अज्ञान स्वरूप आनन्दाभास रूप व्यक्ति साक्षी भाव भीष्म का वध करने के निमित्त संतान होने की प्रार्थना महादेवजी से की उन्होने वरदान दिया कि तेरी संतान भीष्म का वध करेगी। अंबा ने पूर्व देह त्यागकर द्रुपद के यहां जन्म लिया और बुद्धि पुत्री हुई। राजा द्रुपद ने पुत्री होने पर भी ऐसा प्रचलित कर दिया कि पुत्र हुआ है और उसका नाम शिखंडी रक्खा, उसका विवाह दशार्णवपति (जीव) की पुत्री वासना से हुआ। चैतन्य भंडार स्वरूप व्यापक चैतन्य स्वरूप यक्षपति कुवेर है, उसका एक दास स्थूलकर्ण यक्ष है, जिसके कर्ण लंबे हैं ऐसे चिदाभास से शिखंडी का मिलाप हुआ। स्थूलकर्ण को शिखंडी पर दया आई और उसने अपना पुरुषत्व शिखंडी रूप बुद्धि को दिया और शिखंडी रूप बुद्धिका स्त्रीपन चिदाभास रूप स्थूलकर्ण यक्ष ने लिया, स्थूलकर्ण रूप चिदाभास को व्यापक चैतन्य रूप ने शाप दिया कि जहां तक बुद्धि रूप शिखंडी न मरे वहां तक तू स्त्री भाव में रह और शिखंडी पुरुष भाव मे रहे, ऐसे चिदाभास के पुरुषत्व वाली बुद्धि विशेष चैतन्यता से दूसरे के उधार लिये हुए पुरुषत्व से आनन्दाभास रूप अज्ञान का वध करने में निमित्त हुई।

भीष्म के दृष्टांत से ज्ञात होता है कि चिदाभास कामना वश अपने शुद्ध स्वरूप से भ्रष्ट होकर अज्ञानी हुआ। कामना करना ही अज्ञानी बनना है जो कामना रहित होता है वह अपने अच्युत भाव में रहता है। माया से मिले हुए भाव वाले चैतन्य से कामना होती है और उसमें से पृथक् भाव के तीनों गुण होकर शरीर की तीनों अवस्थायें होती हैं वे ही तीनों गुण रूप तीनों कन्याओं को भयंकर कार्य करने वाले भीष्म ने ग्रहण किया। भयंकर कार्य करने वाला इस कारण से है कि शुद्ध चैतन्य होकर भी माया के अशुद्ध भाव वाला होकर भीष्म आनन्दाभास स्वरूप है यह स्वरूप सुषुप्ति अवस्था में होता है, जहां पृथक् भाव की प्रतीति नहीं होती, मात्र अज्ञान होता है, उसके कोई सन्तति नहीं होती इस कारण उसने अपने भाई चिदाभास और सदाभास के साथ तीनों कन्याओं का विवाह करना चाहा। विज्ञानमय कोश में जो चैतन्य का आभास है वह चिदाभास है और मनोमय कोश में जो चैतन्य का आभास है वह सदाभास है। यह दोनो आभास प्रकृति वाले हैं। सतोगुणी बुद्धि रूप अम्बा ने सौम्य देशाधिपति को चाहा। सौम्याधिपति (सौम्यता) ने अपनी उत्पत्ति सतोगुण से समझ-कर उससे विवाह न किया। परशुराम अवतार होने से सामान्य चैतन्य स्वरूप थे जो आनन्दाभास अज्ञान स्वरूप विशेष चैतन्य भीष्म के गुरु थे; क्योंकि सामान्यता के प्रभाव से ही विशेषता होती है। अज्ञान विशेष में होता है, सामान्य चैतन्य इस विशेष चैतन्य का नाश नहीं कर सक्ता। सामान्य चैतन्य विशेष चैतन्य का विरोधी

नहीं है उलटा विशेषता प्राप्त करने का हेतु है, इस कारण परशुराम रूप सामान्य चैतन्य भीष्म रूप विशेष चैतन्य का नाश नहीं कर सके। विशेष चैतन्य रूप अज्ञान का नाश विशेष चैतन्य रूप ज्ञान ही कर सक्ता है। अंबा [बुद्धि] ने महादेव का तप करके वरदान लिया अर्थात् महादेव की सन्निधि से उनके प्रभाव रूप वरदान को ग्रहण किया, ऐसे ही द्रुपद माया विशिष्ट चैतन्य ने अज्ञान रूप भीष्म का नाश करने के लिये महादेव का तप करके सन्तति मांगी। द्रुपद की पुत्री बुद्धि हुई जो शिखंडी कहलाया। दशार्णवपति—जीव की पुत्री वासना से उसका विवाह हुआ। दोनों ही स्त्री रूप होने से जीव घबराया। बुद्धि माया स्वरूप होने से चैतन्य भाव मिश्रित जो अज्ञान-भीष्म उसका नाश नहीं कर सक्ती थी कुबेर परम चैतन्य था उसमें से निकला हुआ आभास रूप यक्ष स्थूलकर्ण था। उसने शिखंडी के ऊपर दया करके अपनी चैतन्यता रूप पुरुषत्व शिखंडी रूप बुद्धि को दिया और बुद्धि का स्त्रीत्व आप लिया, वह स्थूलकर्ण बुद्धि के भाव में दवा, बुद्धि का भाव अर्थात् जन्म मरण और सुख दुःख उसमें अनुरक्त हुआ, बुद्धि के भाव को अपना भाव समझने लगा। बुद्धि चैतन्य भाव वाली होकर, चैतन्य के समान चिदाभास सहित होकर कर्ता भोक्ता भाव करने मे समर्थ हुई। जहां तक बुद्धि न मरे वहां तक चिदाभास रूप स्थूलकर्ण स्त्री के रूप मे रहे। बुद्धि का नाश होने से चिदाभास रूप चैतन्य अपने पुरुषत्व को प्राप्त करे ऐसा शाप कुबेर ने दिया, यह आदि नीति है। ऐसी बुद्धि के सहारे आनन्दाभास रूप भीष्म का वध हुआ। चैतन्य से उधार मागकर ली हुई बुद्धि

ज्ञान और अज्ञान को ग्रहण करती है इस प्रकार ज्ञान और अज्ञान बुद्धि को होता है। इस भाव वाली बुद्धि को जीव भी कहते हैं। कोई २ इसको अन्तःकरण, चिदाभास और चैतन्य की एकता रूप आत्मा भी कहते हैं।

प्रश्न के उत्तर का संक्षिप्त अर्थ यह हुआ कि जड़ और चैतन्य के मिले हुए भाव को जीव कहते हैं, ज्ञान और अज्ञान उसका विषय होने से उसी को होता है और जीव का मिले हुए इस अशुद्ध भाव से जो मुक्त होना है वह मोक्ष कहा जाता है। जैसे ज्ञान और अज्ञान जीव का विषय है, उसी प्रकार बंध और मोक्ष भी उसी को होते हैं। बंधन में पड़े हुए को ही मोक्ष होती है और जिसे अज्ञान है वही अज्ञान को हटाकर ज्ञान प्राप्त कर सकता है और ज्ञानाज्ञान रहित अपने स्वरूप को प्राप्त होता है।

४ अद्वैत।

प्रश्नः—जगत् प्रत्यक्ष है और तुम एक ब्रह्म को और बताते हो तब जगत् और ब्रह्म दो होने से द्वैत हुआ, अद्वैत कैसे है ?

उत्तरः—तेरे इस प्रश्न का उत्तर प्रथम प्रश्नों के उत्तर मे आगया है तो भी तेरे दृढ़ बोध के निमित्त मैं फिर समझाता हूँ। तेरे पूछने से ऐसा प्रतीत होता है कि जगत् को मैं प्रत्यक्ष देखता हूँ और ब्रह्म को तुम देखते हो, मेरे देखने मे आता हुआ जगत् एक वस्तु है और तुम जिसको जानकर कहते हो वह ब्रह्म दूसरी वस्तु है, इस प्रकार दो का जोड़ मिलाता है। यह तेरा जोड़ मिलाना इस प्रकार है जैसे तू कहे कि मैं अपने पिता का पुत्र हूँ सो पुत्र एक हुआ और मै अपनी बहिन का भाई हूँ सो भाई दूसरा हुआ अर्थात् एक तु पुत्र और दूसरा तू भाई इस प्रकार दो हुए; यह जोड़ केवल शब्दो मे है वस्तु स्वरूप देखा जाय तो तू एक ही है। तेरे पिताने तुझमें पुत्र भाव का आरोप किया है, पिता की दृष्टि से तू पुत्र कहा जाता है, तेरे शरीर के सिवाय पुत्र का कोई और स्वरूप नहीं है, इसी प्रकार तेरी बहिन के व्यवहारिक सम्बन्ध से तू भाई है वह भी तेरे शरीर के सिवाय और कोई वस्तु नहीं है। दोनों भावों में रही हुई वस्तु एक ही है। इसी प्रकार जगत् की दृष्टि वाला तू जिस वस्तु को जगत् रूप से जानता है, उसी वस्तु को वस्तु के आकार की ब्रह्माकार वृत्ति से मैं और मुझ जैसे संत ब्रह्म जानकर कथन करते हैं। अब बता कि द्वैत अर्थात् दो वस्तु

और दो वस्तुओं का ज्ञान कहां हुआ ? उपाधिकी भिन्नता से एक ही वस्तु भिन्न रूप से दीखने पर भी वस्तुरूप से दो नहीं होती।

जैसे तेरे पास एक रुपया है वह रुपया तुझे किसी कारण से भुनाना पड़ा। जब तू रुपया भुनाने जाता है तब तेरे हाथ में एक रुपया है उसको देकर चौंसठ पैसे हाथ में लेता है। जिस समय पैसे हैं उस समय रुपया नहीं है और जब रुपया था तब पैसे न थे, इस प्रकार एक रुपया और दूसरे पैसे दो नहीं हुए! दो रुपये नहीं हुए। विचार से जान पड़ता है कि प्रत्येक स्वरूप में एक ही रुपया है पैसो को देखकर रुपया न कहना मूर्खता है। रुपये के हिसाब से चांदी के रूप से एक रुपया है और पैसों के हिसाब से भी तांबे के चौंसठ पैसे होते हुए भी एक ही रुपया है। समष्टि रुपया है और व्यष्टि पैसे हैं। समष्टि और व्यष्टि उपाधि रहित स्वरूप से वस्तु एक ही है। चौंसठ पैसों को अलग अलग समझना व्यष्टि है। दो अठन्नी, चार चवन्नी, आठ दुअन्नी, सोलह आने, बत्तीस अधन्ने, चौंसठ पैसे, एक सो अठ्ठाईस धेले, अथवा एकसो बानवे पाई एक रुपया है। मंद बुद्धि वाले रुपया होते हुए पैसे समझते हैं यह उनका अज्ञान है। अनेक भाग विभाग होते हुए भी जैसे रुपया एक ही है इसी प्रकार अनेक भाग विभाग रूप से प्रतीत होने वाला जगत् वस्तुतः एक ब्रह्म स्वरूप ही है। इस प्रकार सत्य बुद्धि से देखा जाय तो द्वैत कहां है ? अध्यास अधिष्ठान से भिन्न नहीं। एक वस्तु को दूसरे रूप से देखना अध्यास है और जिसमे अध्यास (अन्य को अन्य

देखना) होता है, वह उस वस्तु का अधिष्ठान है जैसे रज्जु में जब सर्प की भ्रान्ति होती है तब सर्प और रज्जु एकही वस्तु है। यद्यपि सर्प दीखता है तो भी रज्जु के सिवाय और दूसरी वस्त नहीं है रज्जु ही है। और रज्जु के यथार्थ बोध होने पर भी रज्जु ही है। इसी प्रकार ब्रह्म रूप अधिष्ठान में जगत् अध्यस्त है अर्थात् सर्प की प्रतीति के समान है। जैसे सर्प कल्पित है वैसे ही जगत् भी कल्पित है इसलिये जगत् एक पदार्थ और ब्रह्म दूसरा पदार्थ न हुआ। वस्तु सर्व प्रकार से एक ही रही अ+द्वि+इत=अद्वैत। अ=नहीं, द्वि=दो, इत=ज्ञान, दो प्रकार का ज्ञान जहां नहीं है वह अद्वैत है। द्वैत व्यवहार दृष्टि में कल्पित है और परमार्थ दृष्टि में अद्वैत है, द्रष्टा की दृष्टि का लोप न होने से अद्वैत स्वरूप है-वस्तु है।

हाथ, पैर, कान, नाक, अंगुलियां इत्यादि अनेक अंग उपांग नाम वाला होकर भी तू अपने को एक क्यो मानता है ? मैं दो, चार, दश हूं ऐसा क्यों नहीं मानता ? तू अपने को एक भाव से 'मैं' कहता है। जब तू दूसरे पुरुष को कहता है तब कहनेवाला तू 'मैं' के बदले दूसरे मे 'तू' का उपयोग करता है और जब तीसरे पुरुष को कहता है तब तू 'मैं' के बदले तीसरे में 'वह' का उपयोग करता है। एक ही तू 'मैं' 'तू' 'वह' इस प्रकार तीन का उपयोग करता है। दूसरा जिसको तू 'तू' कहता है वह अपने को तेरे समान 'मैं' कहता है, तुझे 'तू' कहता है और तीसरे को 'वह' कहता है। इसी प्रकार तीसरा भी जिसको 'तू' वह कहता है अपने

को 'मैं' और दूसरों को 'तू' और तीसरे को 'वह' कहता है। देख! इसी प्रकार सब व्यवहार होते हैं। 'मैं' 'तू' होता है 'तू' 'मैं' होता है इसी प्रकार 'वह' 'मैं' होता है और 'मैं' 'वह' होता है 'तू' 'वह' होता है 'वह' 'तू' होता है। सब में 'मैं' वास्तविक भाव से स्थित है। 'तू' और 'वह' दोनों 'मैं' का ही रूपान्तर समझ मे आते हैं उपाधियों के भाव से भी 'मैं' कहीं नहीं जाता, वह ही 'मैं' वस्तु है, 'मैं' ही है, वही सत् है—ब्रह्म है। जब तू 'मेरा' कहता है तब भी स्वामीपने के भाव से 'मैं' वस्तु में भरा हुआ है। और भी विचार कि जब तू दूसरे पदार्थ को देखे, सुने अथवा समझे तब क्या होता है? दर्पण में मुख देखने के समान, देखने, सुनने अथवा समझने में पदार्थ के भाव वाला तू द्रष्टा, पदार्थ दृश्य और पदार्थ का दर्शन भिन्न नहीं होते हैं परन्तु उसी क्षण में त्रिपुटी को उड़ा कर एक होता है, सब कुछ एक होने से ही सब में एकता होती है। भिन्न भिन्न सम्बन्ध भाव और वस्तुओं मे एकता होना, समाधि होना, यह ही एक को सिद्ध करता है। विभिन्न पदार्थों की एकता कभी नहीं होती। एकता मे उपाधि जो वास्तविक नहीं है स्वयं हट जाती है इस प्रकार उपाधियों के कारण एकता के पूर्व और पश्चात् जो द्वैत दीखता है वह काल्पनिक है उपाधि द्वैत स्वरूप है और वस्तु स्वरूप अद्वैत है।

व्यासजी के शिष्य जैमिनि ऋषि विद्वान् और योग्य समझे जाते थे। व्यासजी जब किसी ग्रन्थ की रचना करते थे, तब वे उस ग्रन्थ को जैमिनि ऋषि को दिखलाया करते थे। ग्रन्थ कैसा

बना है ? कोई भूल तो नहीं रह गई ? इत्यादिक वे जैमिनि की सम्मति लिया करते थे और कभी २ जैमिनि की वास्तविक सूचना का उपयोग भी किया करते थे। सब शास्त्रों की रचना के पश्चात् उन्होंने महाभारत की रचना की। गीता में श्रोता अर्जुन और वक्ता श्रीकृष्ण भगवान् थे। वक्ता ने जो रहस्य अर्जुन को समझाया, उसमें श्रीमद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय का श्लोक ६० आया जिसका अर्थ यह है:—"हे अर्जुन ! प्रयत्न करने वाले विद्वान्-विवेकी पुरुष के मनको भी बलवान् इन्द्रियां अपनी ओर बलात्कार से खींच लेती हैं।" जब जैमिनि ने यह श्लोक देखा तब व्यासजी से कहने लगे,"हे भगवन् ! गीता की सम्पूर्ण रचना अत्यन्त उत्तम है। श्रीकृष्ण भगवान् के सम्पूर्ण तत्त्व का भाव ज्यों का त्यों आया है, गीता देखने से यही विदित होता है कि स्वयं कृष्णजी ने अपने हाथ से लिखी है परन्तु यह श्लोक गीता की शोभा को लाञ्छन रूप है। भला, विद्वान्-विवेकी पुरुष के मनको, इन्द्रियां अपनी ओर बलात्कार से कैसे खींच सकी हैं ! इन्द्रियों की शक्ति मन है, जब वह इन्द्रियों से सम्मिलित होती है तब इन्द्रियां कार्य करने को समर्थ होती हैं, विद्वान्-विवेकी पुरुष का मन शुद्ध और वशीभूत होता है, विवेक के साथ लगे हुए मनको विवेकी की इच्छा न होते हुए, इन्द्रियां बलात्कार से खेंचलें, यह असम्भवित है ! इस श्लोक को निकाल देना ही अच्छा है।" शिष्य के ये वचन सुनकर व्यासजी को हंसी आई परन्तु उसे रोक कर कहने लगे, "हे यती, तुझे यह श्लोक अयुक्त प्रतीत होता है परंतु वह युक्त ही है। मेरा तो ऐसा निर्णय है कि यह एक श्लोक

ही गीता को यथार्थ जानने की चावी है। इस एक श्लोक के न होने से गीता रूप भण्डार खुल न सकेगा।" व्यासजी के इस प्रकार समझाने पर भी जैमिनि ऋषि ने उनके वचनों को यथायोग्य अंगीकार नहीं किया। व्यासजी ने यह समझकर कि जैमिनि अपने को पूर्ण ज्ञानी मानता है इसलिये उसको अपने मनका विशेष भरोसा है, कहा "अच्छा, इस वात का निर्णय फिर किसी दूसरे प्रसंग पर करेंगे।" व्यासजी के स्थान से जैमिनि कोई तीन कोस दूर वन में रहते थे और चार पांच दिन पीछे व्यासजी को प्रणाम करने को आया करते थे। जव वे चले गये तब व्यासजी अपने जी में विचार करने लगे "विद्वत्ता के अभिमान वाले को आत्मवोध होना कठिन है, यह अपने को ज्ञानी मानता है परंतु ज्ञानस्वरूप का निर्णय शव्द से करता है। विद्वत्ता के अभिमान गये विना ज्ञान कहां धरा है! उसके समझाने के लिये एक युक्ति करनी पड़ेगी।" ऐसा विचार कर व्यासजी ने उसी सायंकाल को एक चरित्र रचा। जैमिनिजी अपने स्थान पर है, सायंकाल के पांच वजे का समय है, शीतल उग्र वायु चलने लगी है, आकाश पर बादल छागये हैं, विजली आंखो को चोंधा कर अपने प्रकाश की झपट लगाने लगी है, वादल भारी गर्जना सहित परस्पर ठोकर खाते हैं। सूर्य की मंद प्रभा छुप गई है, आकाश और पृथ्वी के मध्य में अंधेरे ने अपना राज्य कर लिया है ऐसा दृश्य हो रहा था मानों पृथ्वी पर आकाशचारियों ने चढ़ाई की है, भारी भारी तोपे छूट रही हैं। उनका प्रकाश बिजली हो रही है। ऐसे उग्र

समय में जैमिनिजी नें एक युवा स्त्री देखी जिसकी आयु पन्द्रह सोलह वर्ष से विशेष न थी, कोमल, मनमोहक आकृति वाली, बाला घबराती हुई आ रही थी, महीन वस्त्र पहने हुई थी और अत्यन्त स्वरूपवती स्त्री के सब लक्षण उसमें दीखते थे। जल भी वर्षने लगा था, अंधकार में उस स्त्री का सौदर्य पूर्ण दिखाई नहीं देता था परंतु बिजली की चमक मे कभी २ दीख जाता था। जैमिनिजी उसको देखकर आश्चर्य को प्राप्त हुए। जब वह बिजली का प्रकाश न होने से नहीं दीखती थी तब जैमिनि उसकी सौन्द्रर्यता का विचार करते और फिर देखने की लालसा करने लगते थे। बिजली की चमक मे वह फिर दीख जाती थी। वर्षा से भीगने के कारण वह भागती हुई बाला वृक्षकी आड़ में ठहरना चाहती थी परंतु कोई ऐसा सघन वृक्ष नहीं मिलता था जहाँ ठहर जाय, भीगती जाती थी, उग्र पवन उसका वैरी हो गया था, उसके भीगे हुए महीन वस्त्रो को शीघ्र ही सुखाकर उसको अपनी ओर खींचता था। विचारी बाला वस्त्रो को संभालना चाहती थी परंतु पवन का उस पर बलात्कार होता था। वस्त्र उड़ जाने से उसका शरीर अंग प्रत्यंग जैमिनिजी के देखने में आता था। वर्षा और पवन की बलात्कारी से मुक्त होनें के लिये स्थान नहीं मिलता था। जैमिनिजी में किञ्चित् मोह घुस गया था उस मोह ने दया का स्वरूप धारण किया। जैमिनि बोले "हे बाले! तू भीग रही है, घबरा रही है, इस स्थान के बाजू के कोने में जा खड़ी हो उससे कुछ बचाव होगा।" यह सुनकर वह बाला तुरन्त अंगों और वस्त्रों को संकोचती हुई जैमिनिजी के स्थान के एक कोने में आकर खड़ी होगई।

थोड़ी देर पीछे जब वह स्वस्थ हुई तब जैमिनिजी पूछने लगे, "हे बाले! तू अकेली वन में कैसे आई? तेरा स्थान कहां है?" बाला ने कहा "महाराज! यहां से तीन कोस पर जो शहर है वहां की रहने वाली हूँ, सखियों के साथ वन मे अम्बिका माता के दर्शन करने आई थी, जब हम मन्दिर मे दर्शन करने जारही थीं तभी एक भयंकर सिंहकी गर्जना हुई जिसको सुनकर हम सब भागीं। कोई किधर को और कोई किधर को दौड़ी, किसी को दूसरी की खबर नहीं रही, गर्जना बराबर होती रही, मैं भी एक ओर धर भागी, पीछे फिर कर भी नही देखा, सामने के वन में आकर जब सिंह का शब्द सुनाई देना बंद होगया तब मैंने दम लिया, सखियों का पता नही, मालूम नहीं उनका क्या हुआ और वे कहां गईं, इस प्रकार जब मैं सिंह के मुख से छूटी तो वर्षा ने आकर मुझे घेर लिया, यदि वर्षा बंद होजाय तो घर चली जाऊंगी और जो अन्धेरा होगया तो फिर कैसे जा सकूंगी? शहर दूर है, मार्ग सूझता नहीं।" जैमिनि ने कहा "हे बाले, यह विरक्त साधु का स्थान है, यहां कोई स्त्री टिक नहीं सक्ती, एक उपाधि और भी है, रात को यहां भूत आता है, वह स्त्री को मार डालता है, तू यहां कैसे रहेगी?" बाला बोली "महाराज, मैं क्या करूं? आप शरण न दोगे तो मेरे प्राण नहीं बचेंगे।" जैमिनि को मोह तो हो गया था परन्तु वह साधुता और विद्वत्ता के भाव को सम्पूर्ण रूप से दबा न सका था। उन्होंने कहा "अच्छा, तू इस सामने की कोठरी में रात भर के लिये टिकजा, परन्तु एक काम अवश्य करियो, किवाड़ बन्द करके भीतर से सांकल दे दीजो, यदि भूत रात को

आकर किवाड़ खोलने को कहे तो मत खोलियो, भूत मेरे समान स्वर बनाकर बोलेगा, जो तूने किवाड़ खोल दिये तो तुझे खा ही जायगा। किवाड़ न खोलने पर यदि वह ऐसे भी कहे कि मैं भूत नहीं हूँ, मैं जैमिनि हूं, तुझे झूँठ मूँठ ही भूत का भय दिखाया था, तो भी तू उसकी बात मत मानियो और प्रातःकाल तक कदापि किवाड़ मत खोलियो।" इस प्रकार कह कर स्त्री से पक्की कोठरी में जाने के लिये कहा। रात भी अब चढ़ आई थी, स्त्री ने कोठरी में जाकर किवाड़ बंद कर सांकल लगादी। जैमिनि अपनी नित्य क्रिया के अनुसार ध्यान करने लगे परन्तु वे ध्यान कर न सके क्योंकि स्त्री की मनमोहक मूर्ति सामने से हटती न थी, उनका और उनके मनका प्रबल युद्ध हुआ, उसके जीतने को उन्होंने अनेक प्रकार की युक्तियां रचीं परन्तु मोह रूपी मदिरा पिया हुआ उनका मन उनके वश न हुआ। इस झगड़े में पूरे चार घंटे व्यतीत हो गये और आधी रात हो गई। अन्त में ऋषिजी हार गये और मन की जय हुई, उनका मूल स्वभाव मन के स्वाधीन हुआ, काम वासना प्रबल हुई। "स्त्री किस प्रकार प्राप्त हो? वह पक्के मकान में बंद है, किवाड़ खोलने वाली नहीं है।" इस प्रकार विचार कर और स्त्री की प्राप्ति असम्भवित जानकर भी ज्ञानी ऋषि उठे और कोठरीके द्वार पर जाकर स्त्री से किवाड़ खोलने के लिये कहा। स्त्री ने कहा "हे भूत, चला जा, मैं तेरे धोके में नहीं आने की, मुझे ऋषि ने पूर्व से ही समझा रक्खा है, मैं किवाड़ नहीं खोलूँगी, तू मुझे खाजायगा।" जैमिनि ने कहा "हे बाले, मैं भूत नहीं हूं, मैं वही ऋषि हूं जिसने तुझको

इस स्थान पर टिकाया है, मैंने तुझसे भूत की बातें झूँठ मूंठ कह दी थी, मैं तुझ पर मोहित हूं, तुझ विना मुझे शान्ति नहीं प्राप्त हो सक्ती, न तो मुझ से ईश्वर भजन होता है, न मुझे नींद आती है, विरहाग्नि से जल रहा हूं। प्रिये, शीघ्र किवाड़ खोलकर मुझ आतुर को सन्तोष.....स्त्री बात काटकर क्रोध युक्त हो बोली "अरे दुष्ट मैं किवाड़ कभी न खोलूँगी। तू मात्र भूत ही नहीं है परन्तु पूरा दुष्ट कामी है, निर्दोष स्त्री की प्रतिष्ठा विगाड़ ने वाले पापी, हठ यहां से। तू मुझे ठगना चाहता है, ऋषि की कृपा से मैं तेरे धोके में न आऊंगी। कैसी चालवाजी लगाता है, अपने को ऋषि वताता है। जैमिनि दयालु, विवेकी और पूर्ण ज्ञानी हैं वे तुझ दुष्ट के समान कभी कामना नहीं कर सक्ते। तू कदापि ऋषि नहीं है, पक्का भूत है। जा अव मैं तुझ से बोलूंगी भी नहीं।" ऋषि पर सचमुच भूत चढ़ा हुआ था, ऐसे मार्मिक वचन सुनकर भी न उतरा और उन्होंने अत्यन्त दीन होकर अनेक प्रकार से प्रार्थना की परन्तु स्त्री ने एक न सुनी, अन्त में जव दीनता से काम न चला तो उन्होंने निराश होकर दो चार घुड़-कियां भी दिखलाईं कि यदि तू किवाड़ न खोलेगी तो तुझे शाप दूंगा, भस्म कर दूंगा, मैं ऋषि हूँ। इस प्रकार जैमिनि ने अनेक गीदड़ भभकियां दिखलाईं परन्तु स्त्री न वोली, मौन साधकर चुप हो गई। जव ऋषि की कोई चतुराई न चली तव उन्होंने किवाड़ तोड़ना चाहा परन्तु उनका टूटना असम्भव जानकर छत फोड़कर कोठरी मे जाने का प्रयत्न करने लगे। ऋषि के पास कुदाल थी परन्तु उसमे दिस्ता न था उसको लेकर छत पर चढ़

गये और लगे खोदने। छत थी पक्की, भला विना दस्ते के कुदाल से खोदना कुछ सहज काम तो था नहीं परन्तु तो भी ऋषिजी ने मोहवश खोदना आरम्भ किया, खोदते खोदते कोई पांच घंटे में बड़ी कठिनाई से एक मनुष्य के उतर जाने योग्य छिद्र कर पाया। उस समय कुछ उजाला होने लगा था जो रोशन दान में होकर कोठरी में जाता था। छिद्र में होकर जैमिनिजी नीचे उतरे और वहां जाकर देखा तो उन्हें स्त्री तो कहीं दिखाई न पड़ी परन्तु लम्बी २ जटा धारण किये हुए, डाढ़ीवाले व्यासजी दिखाई दिये। उनको देखकर जैमिनि चकित होकर वहीं के वहीं खड़े रह गये। व्यासजी ने उठकर उनके दो तमांचे मारे और कहने लगे, "कहो बचा, वह श्लोक युक्त है अथवा अयुक्त ? तू विवेकी होकर मनके वश में कैसे आगया ? तेरे विद्वान होने में संदेह नहीं है, भूत की युक्ति जो तूने लगाई थी वह इसी विचार से लगाई थी कि मनके ऊपर अधिकार नहीं रहेगा।" शिष्य ने गुरु जी को दण्डवत् की और कहा "हे गुरो, कृपा कीजिये, मेरा अपराध क्षमा कीजिये ! आज ही मेरा संपूर्ण अभिमान नष्ट हुआ है, अभिमान नष्ट होने से ही यथार्थ ज्ञान होता है।"

इस दृष्टान्त से समझ में आता है कि व्यासजी स्त्री और व्यास दोनों ही थे, व्यास वास्तविक स्वरूप था और स्त्री माया का दिखाव मात्र स्वरूप था। स्त्री होने पर भी व्यासजी कहीं चले नहीं गये थे, वस्तुतः व्यासजी ही थे, इसी प्रकार स्त्री को सचेत करने वाला और पीछे से काम विकार युक्त भूत, रजोगुण

वश विरुद्ध भाव प्राप्त होने पर भी वास्तविक एक ही जैमिनि स्वरूप था, इसी प्रकार संसार होते हुए भी अद्वैत ही है। एक और उपदेश भी इस दृष्टांत से मिलता है कि ज्ञानियों को विषयों की ओर सचेत रहना चाहिये। शरीराभ्यास निवृत्त होने पर भी छाया रूप से जब तक शरीर दीखता है तब तक प्रबल विषयों से खींचे जाने का सम्भव रहता है।

संसार में सब पदार्थों की गिन्ती एक से होती है, हज़ार, लाख, करोड़, अर्बों तक गिनते चले जाओ, सबमें एकही की गिन्ती होती है, सबमें एक रहता है, एक में उपाधियां चाहे जितनी बढ़ा दी जांय, उपाधियों को छोड़ कर वस्तु एकही रहती है, पाव, आधा और पौन भी एक की उपाधि का ही भेद है। चाहे बढ़ाने की उपाधि हो चाहे घटाने की हो उपाधि का सम्बन्ध एक से है, वही एक 'अद्वैत' है। विविध प्रकार की न्यूनाधिक उपाधियों की वाह्य दृष्टि से भेद का भाव होता है, वस्तु दृष्टि से यथार्थ अद्वैत का बोध होता है। एक में जितने अंक मिलाये जांयगे, उतने ही वे कहलांयगे और उसके ऊपर जितने अंक चढ़ाते जांय उतनी दश दश गुणी विशेष कीमत पिछले अकों की बढ़ती जायगी और अपूर्णांक दशमलव चिन्ह सहित जितने अंकों के पीछे लिये जांयगे उतनी ही दश २ गुणी कीमत घटती जायगी। वास्तविक मुख्य अंक एकही है, शून्य भी एकही का अभाव है, उससे ही सबकी गिन्ती होती है वह ही सब आकृतियो का मूल है, उसीसे सब प्रकार की आकृतियों की सिद्धि होती है एक के अभाव रूप

सव शून्य की ही आकृतियां हैं यह ही जगत् है। और सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो सव आकृतियों मे एक सिवाय और क्या है ? जिस प्रकार एक ही मुख्य पदार्थ है और सव आकृतियां विविध प्रकार की होते हुए भी एक स्वरूप हैं इसी प्रकार एक अद्वैत तत्त्व सव संसार का एक स्वरूप है और वही एक, भाव से अनेक रूप से प्रतीत होता है।

वर्णमाला के अक्षरों में प्रथम ही अकार है और अन्य देशों की भापा की वर्णमाला में भी अकार प्रथम है, वही अकार सव वर्णों में मुख्य पदार्थ है। जितने स्वर हैं वे अकार का ही उपाधि सहित रूपान्तर हैं और जितने व्यंजन हैं वे सव परतंत्र हैं, स्वर के साथ मिलने से उच्चारण के योग्य होते हैं अर्थात् व्यंजनो का आत्मा अकार स्वर है। अकार अद्वैत स्वरूप है, उसको अक्षर (नाश रहित) कहते हैं। चाहे जितने वर्ण वढ़ाये जांय, उनमें अकार अवश्य होगा, जिसमें अकार न होगा वह स्वतन्त्र न रह सकेगा। अकार वाले व्यंजन वर्ण में उसे अवश्य मिलना पड़ेगा। जैसे अकार सव वर्णों में रहता है इसी प्रकार उपाधि सहित अथवा उपाधि रहित सव पदार्थों में अद्वैत तत्त्व होता है, उसका लोप कभी नहीं होता, वह सर्वत्र व्यापक है। इस प्रकार परम-तत्त्व अद्वैत है।

एक वगीचे में अनेक प्रकार के वृक्ष थे और एक नीम का वृक्ष था। आस पास के वगीचों में कहीं नीम का वृक्ष न था। यह वगीचा एक बड़े शहर के पास था और वहां से बहुत लोग

सैर करने बगीचे में आया करते थे। नीम के वृक्ष पर एक सुन्दर पक्षी रहता था। जैसा उसका स्वरूप सुन्दर था वैसी ही उसकी बोली अत्यन्त मधुर और मन हरण करने वाली थी। जैसे कोई उत्तम सितार बजाने वाला चतुराई से सितार बजाता हो और उसमें से जैसा उत्तम शब्द निकलता हो ऐसी ही उस पक्षी की बोली थी। जो कोई मनुष्य उसको बोलते हुए सुन लेता तो अवश्य ही प्रेमासक्त हो जाता और इधर उधर खोज करने लगता, यह सितार कहां बज रहा है, इसको देखने के लिये चारों तरफ दृष्टि डालता परन्तु सितार बजाने वाला कोई न दीखता। अन्त में जब वृक्ष पर दृष्टि पड़ती तब आश्चर्य सहित ज्ञात होता था कि सितार बजाने वाला कोई मनुष्य नहीं है परन्तु एक सुन्दर स्वरूप वाला पक्षी है! बहुत से मनुष्यों को इस पक्षी के गायन सुनने का प्रेम लग गया था। दो मित्रो को गायन सुनने का अत्यन्त प्रेम था परन्तु उनके व्यवहारिक कार्य भिन्न होने से एक तो उनमें से बगीचे की सैर करने और पक्षी का गायन सुनने प्रातःकाल को जाया करता और दूसरा प्रातःकाल में अवकाश न होने से सायं-काल को जाता था। एक दिन संयोगवश दोनों ही मध्याह्न के समय बगीचे में पहुंचे और नीम के नीचे बैठकर उस पर रहने वाले चतुर गवैये की बात चीत करने लगे। एक ने कहा, "हे मित्र! एक मनमोहक सौन्दर्यता वाला नीले रंग का पक्षी इस वृक्ष पर रहता है, उसका गायन सुनने मैं प्रातःकाल नित्य आया करता हूँ?" दूसरे ने कहा, "पक्षी नीला नहीं है! उसका रंग पीला है!" पहिले ने कहा, "वाह नीला है।" दूसरे ने

कहा, "नहीं, पीला है।" इस प्रकार दोनों मित्र एक दूसरे को झूठा मान कर एक दूसरे की बात काटने लगे। यह उसको झूँठा कहता था, वह इसको असत्यवादी बताता था। अपनी अपनी सत्यता दृढ़ता से सिद्ध करने के लिये दोनों उच्च स्वर से बोलने लगे जिससे ऐसा ज्ञात होता था कि मानो दोनों लड़ रहे हैं। उनकी बातें सुन कर बगीचे का माली दौड़ कर उनके पास आया और लड़ने का कारण पूछा। एक ने उनमें से कहा "हे चौधरी, जो पक्षी इस वृक्ष पर रहता है, बहुत ही मधुर बोली बोला करता है उसके रंग के विषय में हम दोनो का झगड़ा है, यह कहता है पक्षी पीला है और मैं कहता हूँ कि वह नीला है।" इन दोनों की बातें सुन कर माली को हंसी आई और उसने कहा "आप लोग व्यर्थ वाद विवाद क्यों करते हो? मुझे सब वृत्तान्त ज्ञात है, मैं इस बगीचे का रहने वाला हूँ। पक्षी को रात दिन देखा करता हूँ, यह पक्षी रंग बदला करता है, प्रातःकाल यह नीले रंग का होता है और सायंकाल में पीला हो जाता है। (एक की तरफ देख कर) तुम प्रातःकाल आकर उसे देखते हो और यह (दूसरे को बता कर) सायंकाल में देखते हैं इसलिये पीला कहते हैं।" यह सुनकर दोनों मित्र लज्जित होकर चले गये। देख, जैसे एक ही पक्षी में दोनों रंग दिखाई देते थे और वास्तविक दृष्टि से पक्षी को न तो नीला कह सकते थे और न पीला कह सकते थे; ऐसे ही अद्वैत तत्त्व है। उत्थान रूप प्रातःकाल में वह संसार रूप नीले रंग का दीखता है और प्रलय रूप सायंकाल मे पीला असंसारी दीखता है परन्तु प्रातः और सन्ध्या दोनों के स्वरूप को जानने वाले और

पक्षी रूप तत्त्व को प्रत्येक अवस्था में जानने वाले माली रूप ज्ञानी उसको यथार्थ जानते हैं कि वह उत्थान और अनुत्थान दोनों से रहित अद्वैत है।

एक मनुष्य ने काशी में शास्त्रों का अध्ययन किया। अध्ययन करने में उसकी यह इच्छा रहती थी कि शास्त्र पढ़ कर भारतवर्ष में दिग्विजय प्राप्त करूं, इस लालसा से उसने अपनी आयु का आधा अंश तीस वर्ष पढ़ने में व्यतीत किये। इसके पश्चात् वह दिग्विजय करने के निमित्त भारतवर्ष की चारों दिशाओं में पर्यटन करने लगा। शास्त्र में निपुण था, समयानुसार शास्त्र प्रमाण देने में कुशल था, सामान्य पंडित उसके सामने वाद विवाद करने की सामर्थ्य नहीं रखते थे, इस प्रकार पण्डितजी अद्वैत सिद्धान्त का खण्डन और द्वैत का मण्डन करते हुए ग्राम ग्राम और प्रसिद्ध २ शहरों के पण्डितों को जीतते हुए, हारे हुओं से विजयपत्र लिखाते हुए एक ग्राम में आये उसमें प्रसिद्ध २ पण्डित रहते थे और एक ब्रह्मचारी भी बहुत दिनों से निवास करते थे, जो विशेष शास्त्र पढ़े हुए तो न थे परन्तु ब्रह्मनिष्ठा मे अद्वितीय थे। ग्राम के प्रतिष्ठित पुरुष और पण्डित लोग भी उनको मान की दृष्टि से देखते और समय २ पर उनके मुखसे निकले हुए सदुपदेश को ग्रहण करने की चेष्टा किया करते थे। ब्रह्मचारी में वाह्य पाण्डित्य न था परन्तु आत्मनिष्ठा इतनी प्रबल थी कि किसी प्रकार का प्रश्न क्यो न हो उसको युक्तिपूर्वक सुलभ रीति से समाधान कर देते थे। स्वानुभवी पुरुष की युक्तियां विलक्षण होती हैं! वह मात्र

शास्त्र वचनों की मर्यादा में वना रहना नहीं चाहता, उसके स्वानु-भव वाले अन्त.करण में से जो वाक्य निकलते हैं वे सभी शास्त्र रूप होते हैं। दिग्विजय करने वाले पण्डित ने ग्राम के पण्डितों को वाद विवाद करने का निमंत्रण दिया और जहां २ से विजय प्राप्ति की थी उन ग्रामों के नाम वताये और विजय-पत्र दिखाये। ग्राम के पण्डित, प्रसिद्ध २ पण्डितों के लिखे हुए विजय-पत्र देख कर आश्चर्य करने लगे और आपस में कहने लगे कि जिन २ पण्डितों को हम श्रेष्ठ और विद्वान् समझते थे वे सव इससे हार गये तो हम लोगों की क्या सामर्थ्य है कि इस द्वैतवादी विद्वान् को जीत सके? इसलिये इस पण्डित का शास्त्रार्थ ब्रह्मचारी से कराया जाय। इस प्रकार सम्मति करके सव लोग ब्रह्मचारी के पास गये और वृत्तान्त निवेदन किया। ब्रह्मचारी ने कहा, "मैं विद्वान् नहीं हूँ, मैं शास्त्रों को नहीं जानता, फिर मैं अद्वैत कैसे सिद्ध कर सकूंगा?" लोगों ने कहा "हे यतीजी, आप सव कुछ कर सक्ते हैं, हमारी प्रतिष्ठा भंग हो रही है, इतना ही नहीं, ऋषि, मुनि और शास्त्र के रहस्य की भी हसी होती है, जो द्वैत सिद्ध होगया तो आगे कोई अद्वैत को न मानेगा!" ब्रह्मचारी ने लोगों की यथार्थ वात मानली और उन्होंने कहा "अच्छा, कल उस द्वैत प्रतिपादक विद्वान् को मेरे पास ले आना और तुम सव भी सभा में आजाना।" इस योजना अनुसार दूसरे दिन सभा स्थान लोगों से भर गया। एक उच्च स्थान द्वैत प्रतिपादक पण्डित के लिये नियुक्त किया गया था और उसके वरावर उतना ही ऊंचा स्थान ब्रह्मचारी के लिये वनाया गया था। द्वैत प्रति-

पाद्क पण्डित को आदर सत्कार सहित उच्च स्थान पर बैठाया गया और अपना विषय सिद्ध करने के लिये उसको आज्ञा दीगई। उसने प्रथम तो जहां २ गया था और जिस २ से शास्त्रार्थ हुआ था और जिस प्रकार विजय प्राप्त की थी वह सब वृत्तान्त कहा और फिर वह द्वैत प्रतिपादन करने लगा।"जो जो श्रुतियां कर्म और उपासना में उपयोगी हैं-वे ही वेद का मुख्य सिद्धान्त हैं और अद्वैत वाक्य की श्रुतियां मात्र प्रशंसा रूप हैं।" इस प्रकार कह कर उसने द्वैत भाव की श्रुतियों की विशेपता में अनेक श्रुति, शास्त्र और पुराणों का प्रमाण दिया और अद्वैत श्रुतिओं का अनेक प्रमाणो से खण्डन करने का प्रयत्न किया। इसके पश्चात् वह अपने विषय को सिद्ध करने लगा और चार पांच घंटे तक चतुराई से व्याख्यान देता रहा। जब पण्डित कह चुका तब ब्रह्मचारीजी से अद्वैत सिद्ध करने के लिये कहा गया। ब्रह्मचारीजी सभा को उत्साह दिलाते हुए बोले "हे द्वैताशय विद्वान्जी! आप पूर्ण शास्त्रज्ञ हैं इसमें सन्देह नहीं है, शास्त्र ही आपका विषय है और शास्त्र ही आपका स्वरूप है, अनेक शास्त्र संसर्ग से आप एक होकर अपने को बहुत क्यों नहीं मानते? वैशेपिक जानने वाले आप एक, न्याय जानने वाले आप दूसरे सांख्य जानने वाले तीसरे, योग जानने वाले चौथे और मीमांसक पांचवें, इस प्रकार आप अपने को नहीं मानते परन्तु ये सब भिन्न २ होते हुए भी उनके ज्ञाता स्वरूप एक अपने ही को मानते हो। जिस ज्ञाता को आप एक मानते हैं उस ज्ञाता भाव में रहने वाला ज्ञान स्वरूप अद्वैत है। अद्वैत को छोड़कर किसी प्रकार आप द्वैत की सिद्धि

नहीं कर सक्के, एक को छोड़कर दो आकाश में से कहां से उड़ आवेंगे, जैसे आप जीव और ईश्वर दो भिन्न २ मानते हैं वैसे ही भिन्न हम भी मानते हैं, व्यवहार में भिन्नता हम अंगीकार करते हैं, हम परमार्थ स्वरूप मे एकता मानते हैं। आप ईश्वर को व्यापक और सर्वज्ञ और जीव को व्यापक और अल्पज्ञ मानते हो और ईश्वर की व्यापकता सिद्ध होने पर जीव और जीव का बीज रहकर लय होना भी मानते हो तो आप का भी एक मानना ही हुआ। अब रहा बीज, वह बीज अज्ञान में हम भी स्वीकार करते हैं और वस्तुता से दूसरा पदार्थ न होने से बीज का अभाव है। आप लौकिक दृष्टि से परमार्थ स्वरूप का निर्णय चाहते हो यह असम्भवित है, शास्त्र अन्य वस्तु है और शास्त्र का रहस्य परमार्थ, शास्त्रशब्दों से भिन्न है, लौकिक दृष्टि तो संसार में सब की हो रही है। इतना कह कर ब्रह्मचारी ने एक मनुष्य से कहा "जाओ! बाहर कौन आदमी जा रहा है उसको ले आओ।" आदमी बाहर जाकर एक धोबी को जो किसी के कपड़े धोने को ले जारहा था, सभा में ले आया और ब्रह्मचारी के सामने खड़ा कर दिया। ब्रह्मचारी ने धोबी को सम्बोधन देकर कहा, "आइये परमात्मा जी, आप तो ईश्वर हो, सच्चिदानन्द रूप हो, आप में ही संसार की उत्पत्ति, स्थिति और लय हुआ करती है।" ब्रह्मचारीजी के ऐसे वचन सुनकर विचारा धोबी घवड़ा गया और दण्डवत् प्रणाम करके कहने लगा, "यह आप क्या कहते हो? मैं तुच्छ, सब का मैल धोने वाला, अल्पज्ञ जीव ईश्वर कैसे हो सक्ता हूँ?" ब्रह्मचारी ने कहा "क्या तू ईश्वर नहीं है?" धोबी ने कहा "ना महाराज

ऐसा कहने से मैं पापी होऊंगा।" फिर ब्रह्मचारी ने एक आदमी को आज्ञा देकर एक तेली को बुलाया उसने भी धोबी के समान अपने को ईश्वर होना न स्वीकार किया तव ब्रह्मचारी ने द्वैताशय पण्डित से कहा "हे विद्वान्! आपने शास्त्र पढ़ने में बहुत परिश्रम किया है, तो भी जितना एक धोबी और तेली जानता है उतना ही अभी आप जानते हैं, जीव अलग है, ईश्वर अलग है यह तो अपढ़ भी जानते हैं आपने शास्त्र पढ़कर विशेष क्या जाना? आप पढ़े हैं परन्तु गुणे नहीं हैं, कुछ दिन सद्गुरु के पास रहकर शास्त्र को गुणों, तव विशेषता प्रतीत होगी। शास्त्र से भी द्वैत सिद्ध नहीं होता, वेद को अपौरुषेय आप भी मानते हो, जो वात सामान्य मनुष्य तक जानते हैं उसको सिद्ध करने निमित्त गहन शास्त्र नहीं हो सक्ता। ईश्वर का ज्ञान वेद है और ईश्वर का कहा हुआ वेद है जिसकी वाणी है उसके समान कई गुणों में आये विना उसके रहस्य को कौन समझा सक्ता है? इसलिये अधिकारी के लक्षणों से सम्पन्न हो कर सद्गुरु द्वारा प्राप्त किया हुआ शास्त्र यथार्थ वोध का हेतु है" इस प्रकार ब्रह्मचारी के वचन और युक्ति को सुन कर द्वैताशय पण्डित लज्जित हो सभा से चला गया और किसी ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रिय के शरण मे जाकर समय पाकर अद्वैत निष्ठा मे पूर्ण हुआ।

द्वैत दृष्टि से अद्वैत समझ में आना कठिन है। जैसे वंध्या स्त्री पुत्र प्रसव को नहीं जान सक्ती वैसे ही द्वैत को निकाले विना अद्वैत नहीं होता।

तेरे प्रश्नका सारांश रूप उत्तर यह है:- तेरी विकारी दृष्टि से भिन्न २ प्रकार का नाशवंत जगत् भासता है और अविकारी दृष्टि वाले को जगत् भाव हट कर अद्वैत ब्रह्म भासता है। जगत् का दिखाव अवस्तु है और परब्रह्म वस्तु स्वरूप है। इसी से अद्वैत है।

५ स्वर्ग, नरक और मोक्ष।

प्रश्नः—पाप, पुण्य, स्वर्ग, नरक और मोक्ष क्या चीज हैं ? कर्म कहां रहते हैं ?

उत्तरः—पाप, पुण्य, स्वर्ग, नरक आदि क्या हैं ? और कर्म कहां रहते हैं ? यह तेरा प्रश्न अज्ञान के विवेचन करने का है। वह अज्ञान में है और तू अज्ञान, माया, भ्रम और कल्पना को सच्ची मानकर प्रश्न करता है वे वास्तविक नहीं हैं, स्वप्नवत् हैं तो भी विवेचन के योग्य हैं। वे सब अज्ञानस्वरूप हैं तो भी वे किस क्रम से उत्पन्न होते हैं यह जानने से जब मूल अज्ञान का पता लगता है तभी उसको हटा सकते हैं। अज्ञान ढीला पड़े बिना अथवा उसके नाश हुए बिना मोक्षस्वरूप समझ में नहीं आता और बिना समझे उसकी प्राप्ति नहीं होती।

क्रिया करके जो होता है वह कर्म कहाता है। कर्म आन्तरिक और बाह्य दो प्रकार के होते हैं। दोनों प्रकार के कर्म सूक्ष्म भाव को उत्पन्न करते हैं और उस भाव को अदृष्ट कहते हैं। अदृष्ट शुभ और अशुभ दो प्रकार का होता है। शुभ भाव पुण्य स्वरूप है और अशुभ भाव पाप स्वरूप है। पुण्य सुख रूप और स्वर्ग है, पाप दुःख रूप और नरक है। जब अदृष्ट पक होता है तब उसका फल सुख दुःख होता है। इस अज्ञान से मुक्त होकर अपने आद्य स्वरूप में टिक जाने को मोक्ष कहते हैं अर्थात् अज्ञान की मर्यादा से बाहर निकल जाने का नाम मोक्ष है।

पाप और पुण्य स्थूल वस्तु नहीं है। स्थूल के सम्बन्ध से अज्ञान के कारण राग द्वेष सहित उठा हुआ सूक्ष्म भाव पाप पुण्य है। यह भाव यदि तीव्र हो तो बहुत जल्दी पक हो जाता है और यदि मन्द होता है तो देर में पक होता है। पक होकर जब वह फल देने के लिये तत्पर होता है तब उसको प्रारब्ध कहते हैं। वह फल दिये बिना नही रुक सकता। पाप कर्म कौन कौन हैं और पुण्य कर्म कौन कौन हैं इसका यथार्थ निर्णय सहज नही हो सकता; सामान्य रूप से ही अमुक पाप कर्म हैं और अमुक पुण्य कर्म हैं ऐसा कह सक्ते हैं। जो पाप पुण्य मात्र स्थूल कार्य हो तो ऐसा निर्णय हो सके परन्तु वह सूक्ष्म भाव स्वरूप है इसलिये उसका यथार्थ निश्चय देश, काल, स्थिति, योग्यता, सामर्थ्य सहित लोक सम्मति, शास्त्र वाक्य और अपने अन्तःकरण के शुद्ध भाव के अनुसार होता है। शास्त्र में अमुक कर्म को पाप और अमुक कर्म को पुण्य कहा है। एक दूसरे शास्त्र में अन्तर भी पड़ता है और कभी कभी शास्त्र वाक्य से विरुद्ध फल भी होता है। देश, काल, संयोगादिक को छोड़ कर मात्र शास्त्रवाक्य को ही ग्रहण करना भारी भूल है। इस कारण पाप, पुण्य और कर्तव्य, अकर्तव्य के निर्णय करने में दीर्घदृष्टि से काम लेना चाहिये। लोक सम्मति का भी विचार करना चाहिये। विद्वानों की दृष्टि में जो लोग सज्जन समझे जाते हों और जिनका व्यवहार देश, काल और शास्त्र के अनुसार हो उन लोगों की सम्मति लोक सम्मति है और अपना शुद्ध अन्तःकरण (Conscience') इस बारे में क्या कहता है इस प्रकार तीनों बातो के ठीक २

मिलान करने से यथार्थ निर्णय होना सम्भव है। जैसे शास्त्र में आज्ञा दी है कि माता पिता और गुरु की आज्ञा के उल्लंघन करने वाले को पाप लगता है। ध्रुव, प्रह्लाद और वली ने क्रम से माता पिता और गुरु की आज्ञा का उल्लंघन किया था तो भी लोक और शास्त्र उन लोगों को दूषित—पापी नहीं समझते हैं। माता, पिता और गुरु की आज्ञा भंग करके यदि कोई विशेष महत्व का कार्य होता हो तो आज्ञा पालन न करने का दोष नहीं होता किन्तु विशेष फल होता है। माता की आज्ञा भंग करके ध्रुव ने तपश्चर्या की। पिता की आज्ञा न मान कर प्रह्लाद ने ईश्वर भजन किया और वली ने गुरु की आज्ञा पालन न करके दान देने की प्रतिज्ञा पूरी की।

सबसे अधिक पुण्य करने से इन्द्र की पदवी प्राप्त होती है। स्वर्ग में सब देवताओ को जो सुख और ऐश्वर्य प्राप्त होता है उस सुख से विशेष सुख और ऐश्वर्य इन्द्र को प्राप्त होता है क्योंकि वह सब देवताओं का राजा है। इतना सुख होते हुए भी वह दुःख से मुक्त नहीं है। अधिक सुख होते हुए भी सुख का अन्त होता है इस कारण मुमुक्षुओं को इन्द्र के सुख की भी इच्छा नहीं होती। इन्द्र का सुख मायिक सुख है। मुमुक्षु आत्म सुख के सामने मायिक सुख को तुच्छ और असत्य समझता है। जब जब कोई महान् तपस्वी होता है तब तब इन्द्र को अपने पद से भ्रष्ट होने की भारी चिन्ता लग जाती है। एक समय त्वष्टापुत्र त्रिशिरा को मारने से इन्द्र को दोष लगा फिर दूसरे पुत्र वृत्रासुर से इन्द्र

का युद्ध हुआ। लड़ाई महान् भयंकर हुई। देवताओं का बल असुरों के सन्मुख कुछ काम न आया, देवता हार गये और वृत्रासुर इन्द्र को निगल गया, तब तो इन्द्र होकर भी वृत्रासुर के उदर रूपी जेलखाने में बन्द हुआ इन्द्र बहुत कष्ट पाने लगा। संयोग वश वृत्रासुर को जंभाई आई और इन्द्र जंभाई के साथ निकल तुरन्त ही भाग गया। तब इन्द्र, देवता और ऋषि मिलकर विष्णु भगवान् की शरण गये और उनकी सहायता से इन्द्र ने वृत्रासुर से सन्धि की। इन्द्र की इच्छा सन्धि करने की न थी परन्तु परवशता से संधि की। उसके मन में छल था इसलिये समय पाकर संधि भंग करने के पाप का अदृष्ट सूक्ष्म बीज इन्द्र में जमा। एक दिन वृत्रासुर सन्ध्या समय समुद्र किनारे पर टहल रहा था, इन्द्र ने योग्य समय देखकर वज्र के ऊपर समुद्र का फेन चढ़ा कर विष्णु का ध्यान करके वज्र मे विष्णु शक्ति का प्रवेश करा के वृत्रासुर को मारा, वज्र लगते ही उसका शिर कट कर गिर पड़ा। इस प्रकार विश्वासघात करने से पाप का अदृष्ट जो सूक्ष्म था वह दृढ़ हुआ, पक्क होकर फल देने को प्रवृत्त हुआ। इन्द्र घबड़ाया और भीतर जलने लगा। किसी स्थान पर शान्ति न पाने से वहां से भाग कर वह एक अरण्य में जाकर जलमें प्रवेश कर छुप गया। वहां वरुण की प्रेरणा से उसने अश्वमेध यज्ञ किया। इन्द्र के चले जाने से इन्द्रासन खाली रहा। राजा विना प्रजा को शान्तियुक्त न देखकर सब देवता और ऋषि लोगो ने एकत्र होकर राजा नहुष से इन्द्र बनने के लिये प्रार्थना की। राजा नहुष शुभ आचरण वाला था और उसका पुण्य पक्क होकर

फल देने के योग्य होगया था। उसने देवता और ऋषि लोगों से कहा कि मैं इन्द्र वनने के योग्य नहीं हूं क्योंकि मैं निर्बल हूँ। यह सुनकर सब देवताओं और ऋषियों ने कहा कि हम सब अपना तेज आपको देते हैं जिससे आप बलिष्ट होगे, ऐसा कहकर सब ने मिलकर नहुष को देवताओं का राजा इन्द्र बना दिया। नहुप स्वर्ग का राज्य करने लगा। सब देवता दरबार में हाजिरी देने लगे परन्तु शचि-इन्द्राणी उसके पास न गई। नहुप ने दरवार में कहा "हे देवो! मैं इन्द्र हूं, सब देवताओं का राजा हूँ, शचि-इन्द्राणी का भी मैं अब मालिक हूँ इसलिये उसको भी मेरे स्वाधीन होना चाहिये।" सब देवता चुप होगये किसी ने कुछ उत्तर न दिया। शचि को इस बात की खबर लग गई उसने देवगुरु वृहस्पतिजी से विनयपूर्वक कहा "महाराज, नहुप मुझको अपनी स्त्री बनाना चाहता है और आपने मुझको वरदान दिया है कि तू पतिव्रता होगी और कभी विधवा न होगी, इस अपने वाक्य को सत्य कीजिये और नहुष से मेरी रक्षा कीजिये।" बृहस्पति ने आश्वासन देते हुए कहा "देवी, घवड़ा मत, मैं तेरी रक्षा करूगा और इन्द्र को भी बुलवा दूंगा।" नहुप को यह खबर लग गई कि बृहस्पति शचि को मेरे पास आने नहीं देते हैं। यद्यपि वह पुण्यात्मा था तो भी ऐश्वर्य प्राप्त होने से अभिमान के दोप से दूषित हुआ। प्रथम जब शचि के संयोग की इच्छा की तब बुरा सूक्ष्म भाव उत्पन्न हुआ इसके पश्चात् उसकी कामना मे विघ्न डालने वाले बृहस्पति पर तिरस्कार का सूक्ष्म भाव उसके प्रथम भाव से सम्मिलित हुआ, अन्त मे वही स्थूलता को प्राप्त होकर

दुष्टता को प्राप्त होने लगा। नहुष को वृहस्पति के ऊपर क्रोधित देखकर देवता और ऋषि लोगों ने उसको क्रोध से रोकते हुए कहा, "हे राजन्, आपको क्रोध करना उचित नहीं है। दूसरे की स्त्री पर काम वासना करना बुरा है, शचि पतिव्रता स्त्री है जिन लोगों ने पतिव्रताओं को भ्रष्ठ किया है वे सब पापिष्ठ होकर गिरे हैं, आप इन्द्र हो, पुण्यात्मा हो, आप ऐसा न कीजिए।" इस वाक्य से नहुष विशेष क्रोधयुक्त होकर बोला " क्यो जी, गौतम की स्त्री अहिल्या, क्या इन्द्र के लिए पर स्त्री नहीं थी ? गौतम के जीते हुए छल करके इन्द्र ने उसको भ्रष्ट किया तब तुमने उसको क्यों न रोका ? तुम लोग मेरी अवज्ञा करते हो, मैं तुम्हारा राजा हूं, मेरी आज्ञा का पालन करना ही तुम्हारा कर्तव्य है, प्रत्येक कार्य में मुझको सहायता देना तुम्हारा धर्म है।" इस प्रकार सुनकर देवता चुप होगये, तब उनमे से एक ने सबकी तरफ़ से कहा, "अच्छा, हम सब लोग शचि के पास जाते हैं और समझाने का यत्न करते हैं।" ऐसा कह कर सब देवता वृहस्पतिजी के पास जाकर कहने लगे, "हे गुरो, हमने नहुष को अनेक प्रकार समझाया परन्तु वह नहीं मानता। सबों के कल्याण के निमित्त आप शचि को समझा दीजिये कि वह नहुष को अपना पति समझे; यदि ऐसा न कर सके तो आप कोई दूसरा यत्न विचारिये, राजा और प्रजा का मन मिला रहने से शांति रहती है।" वृहस्पतिजी ने देवताओं को समझा कर शान्त कर दिया और शचि के पास जाकर कहा, "हे शचि, तू नहुष से कुछ समय मांगले उस समय तक कुछ न कुछ विघ्न पड़ जायगा।"

जब नहुष शचि के पास गया तो शचि ने विनयपूर्वक कहा, "हे राजन्, मैं एक पति विद्यमान होते हुए दूसरा पति नहीं कर सक्ती, मैं इन्द्र की खोज कराती हूँ, यदि वह नहीं मिला अथवा जीवित न हुआ तो मैं आपको अपना पति बना लूंगी, आप ग्यारह दिन का अवकाश (मुहलत) दीजिये इतने समय में जो उसका पता न लगा तो मैं अवश्य आपको अपना पति अंगीकार करूंगी।" यह बात नहुप ने मान ली क्योंकि उसने सोचा कि इन्द्र ब्रह्म हत्यारा होगया है अब वह इन्द्र नहीं होसक्ता। यदि जीवित होगा तो उसे मार डालूँगा। शचि ने सन्देह विनाशिनी उपश्रुति देवी का आराधन किया। देवी ने प्रगट होकर शचि से कहा कि हमारे संग चल। ऐसा कहकर वह उसे हिमालय पर्वत पर ले गई। हिमालय के उस पार उत्तर कोण मे सरोवर के बीच एक द्वीप में एक तालाब था जो सौ योजन लम्बा था और उसमें कमल खिल रहे थे। उसमें के एक कमल की डंडी में सूत के समान बारीक रूप धारण करके इन्द्र रहता था। देवी ने शचि को इन्द्र दिखलाया और इन्द्र से कहा कि तुम आकर नहुप को निकालो इन्द्र ने कहा कि ऋपियों की आहुति पाकर नहुप बहुत बलिष्ट होगया है, यह समय उससे लड़ने का नहीं है, मैं उसके साथ युद्ध करके जीत नही सक्ता। शचि की मांगी हुई मुद्दत जब व्यतीत होजाय तब उसे नहुप से कहना चाहिये कि सब प्रकार के वाहन मैंने देख लिये हैं, आप इन्द्र हो इसलिये किसी आश्चर्ययुक्त वाहन पर चढ कर मेरे पास आइए, मैं आपको अपना पति बनाऊंगी। वाहन के पशु दिव्य स्वरूपधारी हृष्ट पुष्ट और ब्रह्मज्ञानी हों इसलिये आप

ऋषि लोगों के कंधे पर धरी हुई पालकी में वैठकर मेरे पास आइए। यह सुनकर शचि और देवी वहां से लौट आई। इन्द्र के कहे अनुसार शचि ने नहुप से कहा। नहुप ने यह वात मान ली और ऋषि लोगों को पालकी मे जोतकर उसमे वैठकर इन्द्राणी के पास चला। पालकी में जुते हुए ऋषि लोगों में अगस्त ऋषि भी थे। परमहंस ऋषि लोगों ने महनत का काम कभी नहीं किया था उनसे कहार का काम भला कैसे हो सक्ता था? तो भी विना क्रोध किये पालकी को उठाकर वे धीरे धीरे चलने लगे। राजा नहुप को शचि से सत्वर मिलने की उत्सुकता प्रवल थी इसलिये उसन ऋषिओ से जल्दी जल्दी चलने को कहा। ऋषि अपनी जान मे जल्दी२ चलते थे परन्तु नहुष की आतुरता के सामने वे ऋपि लोग वहुत ढीले थे। दो तीन वार नहुष ने जल्दी चलने को कहा तो भी ऋषि लोगो को अपनी उसी चाल से चलते देखकर उसे क्रोध आया और उसने अगस्त ऋषि के लात मार कर (सर्प सर्प) चल चल कहा। अगस्त ऋषि शान्त थे तो भी नहुष का क्रोध उनमें प्रवेश कर गया और प्रतिध्वनि रूप क्रोध निकला। अगस्तजी ने उसे शाप दिया कि तू सर्प होकर पृथ्वी पर गिर, दश हजार वर्ष पीछे तू स्वर्ग लोक को प्राप्त होगा। नहुष के पाप के संस्कार जो स्थूलता को प्राप्त हुए थे वे ऋपि को लात मारने के दोष से पूर्ण होकर पक गये और फल देने मे प्रवृत्त हुए इस-लिये राजा नहुष सर्प होकर पृथ्वी में गिरा। इन्द्र को इस वात की खवर हुई और वह जल में से निकल कर अपने पद पर आरूढ़ हुआ।

इन्द्र ने प्रथम त्रिशिरा को मार कर हत्या का पाप ग्रहण किया परन्तु उसका पुण्य प्रबल होने से पाप सूक्ष्म भाव मे रहा जब दूसरी वार वृत्रासुर से युद्ध करने को गया तब उस पाप के दोष स जीत न सका। छल से संधि करने के कारण फिर पाप की वृद्धि हुई फिर विश्वासघात से अधिक वृद्धि होने से सब पक कर फल देने को तत्पर हुए और पाप के फल से इन्द्र को आन्तरिक जलन के कारण जल में प्रवेश करना पड़ा।

नहुष शुभ कर्म वाला था, जब उसका पुण्य फल देने के योग्य हुआ तब निर्बल होते हुए भी ऋषि और देवताओं की शक्ति से इन्द्र हुआ, यहां तक उसका शुभ कर्म था, ऐश्वर्य प्राप्त होने से पाप के संस्कार बढ़ने लगे। प्रथम परपत्नी की तरफ कामेच्छा दूसरे ऋषि देवताओं को तुच्छ समझने का अभिमान और गुरु बृहस्पति पर तिरस्कार, तीसरे ऋषियों की पालकी पर चढ़ने का शास्त्र विरुद्ध कर्म और चौथे अगस्त को लात मारना, इस प्रकार पाप का घड़ा पूर्ण भर जाने से सर्प होना पड़ा।

एक धर्मकर्मनिष्ठ पण्डित शिवालय में शिव पुराण की कथा लोभ लालच रहित शान्त चित्त से शिव की प्रसन्नता निमित्त और व्यवहार के निर्वाह निमित्त कहा करता था। वह शुभ आचरण वाला और संतोषी भी था परन्तु कथा सुनने के लिये उसके पास श्रोता बहुत कम आते थे, इसकी चिन्ता रहित वह अपना काम ठीक २ किया करता था। कथा कहते हुए तीन मास बीत गये। घर से खर्च भेजने को पत्र पर पत्र आते थे परन्तु वह कुछ भेज

नहीं सक्ता था और कथा की पूर्णाहुति में कुछ विशेष प्राप्ति की आशा भी न थी। उस ग्राम का एक लोभी साहूकार संध्या समय वन की तरफ महादेव के मन्दिर में दर्शन करने गया और उसने जा कर देखा तो शिवालय बन्द था और उसमें कोई आदमी बातें करते हों ऐसा उसे ज्ञात हुआ। साहूकार कान लगा कर सुनने लगा तो उसे यह सुनाई दिया:—प्रथम शब्द:—"हे प्राणपते, हे जगन्नाथ सदाशिव आप अपने भक्तों की रक्षा करना भूल जाते हो सो ठीक नहीं है।" दूसरा शब्द:—"प्रिये पार्वती किस भक्त के लिये तू कहती है? मैंने किसकी रक्षा नहीं की है?" प्रथम शब्द:—"हे स्वामिन् इस ग्राम में चन्द्रशेखर महादेव पर जो पंडित कथा कह रहा है वह आपका पूर्ण भक्त है उसके घर पर बाल बच्चे भूखे मरते हैं, शिवपुराण की कथा कहते हुए तीन मास हो गये हैं अब तो उसकी पूर्णाहुति कराइये। श्रोता भी विशेष नहीं आते, ब्राह्मण गरीब, सुशील और आपका अनन्य भक्त है पूर्णाहुति में कुछ अच्छी रकम उसको दिलवाना चाहिये।" दूसरा शब्द:—"हे देवी, मुझे इस बात का स्मरण है, मैं उसकी पूर्णाहुति परसों ही करा दूंगा और उसकी भक्ति अनुसार उसको धन दिलवाऊंगा।" प्रथम शब्द:—"हे भक्त वत्सल, आप कितना धन उसको दिलवावेंगे?" दूसरा शब्द:—"ग्यारह सौ रुपये" प्रथम शब्द:—(हँस कर) "हे देव वहां तो ग्यारह सौ कोड़ियों का भी ठिकाना नहीं है।" दूसरा शब्द:—"हे प्रिये, क्या कुछ मेरी सामर्थ्य के सामने असम्भवित है? परसों किसी न किसी प्रकार से ग्यारह सौ रुपये अवश्य ही दिलवाऊंगा!" साहूकार यह सुन

कर उलटे पांव अपने घर आया और विचार करने लगा, "आज महादेवजी का दर्शन तो न हुआ परन्तु शिव पार्वती की बातें सुनने में आगईं जिनके सुनने से दर्शन से भी अधिक लाभ होगा। शास्त्रों में श्रवण का जो महात्म्य वर्णन किया है वह झूठ नहीं है।" दूसरे दिन वह कथा कहने वाले पंडित के पास पहुंचा और कहने लगा, "महाराज! शिवपुराण की पूर्णाहुति कब है?" परिडतजी ने कहा, "सेठ, समय वेढब है, कथा कहते तीन मास हो गये हैं, घर जाने की और खर्च की जरूरत है, कल ही पूर्णाहुति कर दी जायगी, प्रारब्धवश जो प्राप्त हो जायगा सो सही।" साहूकार ने कहा, "परिडतजी, कथा सुनने वालो मे कोई सभ्य और श्रद्धालु श्रीमान् तो दीखता नहीं है और विशेप पुरुष भी नहीं हैं, चढ़ोतरी यथायोग्य कहां से होगी? यदि आप मुझे अपनी चढ़ोतरी का ठेका दे दें तो कैसा? कहिये आप क्या लेंगे?" परिडतजीने कहा "सेठजी, जो आप योग्य समझे दे दीजिये।" साहूकारने ५०) रु० निकालकर परिडत के सामने रख दिये और कहा, परिडतजी, यह रुपया लेकर आप अपनी कथा की चढ़ोतरी का ठेका मुझे दे दीजिये और इन रुपयोंकी रसीद लिख दीजिये। पंडितजी रुपयोंको देखजी मे प्रसन्न हो विचार करने लगे "पांच, सात रुपयों से अधिक चढ़ोतरी में मिलना असम्भव दीखता है, ५०)रु० ले लेना ठीक है परंतु अंगीकार न करने से कदाचित् और बढ़ जाय" ऐसा विचार कर ऊपर से उदासीन चेष्टा बना कर परिडत जी वोले "वाह सेठजी तीन मास तो मस्तक मारते हो गये आप अन्तिम चढ़ोवरी के ५०) रु० दाम लगाते हैं हम सन्तोषी

ब्राह्मण अपना कर्तव्य करे चले जाते हैं और संतुष्ट रहते हैं। कहां तक कम लूं! यदि आप कुछ समझ सोचकर ठेका लो तो मैं दे सक्ता हूं।" साहूकार ने कहा "वाह, कोई पांच सात आदमी तो तुम्हारी कथा में आते ही हैं; पांच सात रुपये से विशेष क्या मिलना है ? मुझे तुम पर दया आती है इसलिये मे ५०) रु० देने को तैयार हुआ हूं।" पण्डितजी ने न माना तब उसने १००) रु० तक बढ़ा दिये और अंत में १००) रु० में ठेका होगया। दूसरे दिन प्रातःकाल से ही अपने ठेके की रक़म वसूल करने के निमित्त साहूकार आ बैठा। पूजन आदिक बहुत सामान्य रीति से हुआ, फिर चढ़ोतरी हुई, किसी ने दो आने किसी ने चार आने किसी ने चार पैसे चढ़ाये इस प्रकार सायंकाल तक कोई पांच रु० आ गये। साहूकार अपने मन मे बहुत कुढ़ा और सायंकाल होने पर जब किसी के आने का समय न रहा तब क्रोध सहित वहां से उठ कर चला। "आज मैंने १०००) रु० की कमाई करने की आशा में प्रातःकाल से भोजन भी न किया, रुपये पांच ही आये, ९५) रु० का टोटा रहा, देवता और उसमें भी महादेव झूठ बोलते हैं, उन के वचनों के ऊपर मैंने सौदा किया और हार गया!" इस प्रकार सोचता हुआ और क्रोधाग्नि से जलता हुआ जिस मन्दिर मे महादेवजी के वचन सुने थे साहूकार गया और क्रोध के कारण शिवलिङ्ग में लातें मारने लगा। जब तीसरी लात मारी तब उसका पैर शिवलिंग से चिपट गया। बहुतेरा छुड़ाया परन्तु न छुटा तब तो वह बहुत घबड़ाया और बल करने लगा। ज्यों ज्यों वह बल करता था त्यों त्यो पैर विशेष चिपटता जाता था

और गिर गिर पड़ता था। गिरने से शरीर में कई स्थानों में लोहू निकल आया। कई हड्डियां टूट गईं, चिल्लाते २ उसे एक घंटा बीत गया। समय पर घर न पहुंचने से उसका लड़का उसको ढूँढ़ता हुआ मन्दिर में आया तो देखा कि साहूकार दुखी होकर महादेवजी से प्रार्थना कर रहा है "हे देवों के देव, महादेव, मेरा अपराध क्षमा कीजिये, मेरी महान् भूल हुई, हानि होने से मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी, मैंने आपको लातों से मारा; आप तो भोलानाथ हैं, हम आपके बालक हैं, अब क्षमा कीजिये, कृपा कर छोड़ दीजिये।" जब इस प्रकार उसने कहा तो मन्दिर में से आवाज आई, "हे साहूकार, तू ने १००) रु० पण्डितजी को दिये हैं जब एक हजार रुपये और उनके पास पहुंचा देगा तभी तू छूट जायगा।" साहूकार के लिये रुपयों का जाना क्या था ? जान का जाना था, परन्तु अन्त में प्राण ही प्यारे होते हैं, विचारा राजी होगया और पुत्र को पास खड़ा देखकर उसने सब समाचार सुना कर कहा "हे धनीराम, घर जाकर हज़ार रुपये लेकर पण्डितजी को दे आ।" लड़का घर गया और हज़ार रुपये पण्डितजी को देकर उनकी चढ़ोतरी पूरी कर आया। इस प्रकार साहूकार छूट कर अपने घर पहुचा।

पण्डितजी शुभ गुण और कर्म वाले थे। क्रम से भक्ति सहित शुभ संस्कार बढ़ते गये और अदृष्ट पक होकर पुण्य का फल भोग देने में प्रवृत्त हुआ। साहूकार के पाप का अदृष्ट लोभ के कारण बढ़ता गया क्योंकि लोभ पाप का मूल है। क्रम क्रम से लोभ के

कारण पाप का मूल गहरा होकर वृक्ष रूप से फैलता गया। जब पूर्ण वृक्ष हुआ तब विष रूप फल उसको मिला—हाथ पैर टूटे, लोहू लुहान हुआ और ग्यारह सौ रुपये भी गये। यह ही पाप का प्रत्यक्ष फल है।

कई मनुष्य ऐसी शंका भी किया करते हैं कि स्वर्ग नरक इस लोक में हैं या इसके बाहर हैं। इस शंका का उत्तर यह है कि स्वर्ग नरक इस लोक में तो फल का भोग देखने से प्रत्यक्ष हैं हीं; परन्तु इससे बाहर दूसरे लोक में भी स्वर्ग नरक हैं। ब्रह्माण्ड अनन्त हैं इसलिये स्वर्ग नरक भी अनन्त हैं। जिस पुण्य कर्म का फल इस लोक में भोग सक्ते हैं उस पुण्य फल के भोग का स्थान यह लोक स्वर्ग है परन्तु यदि किसी कर्म का फल विशेष पुण्यप्रद हो और इस लोक में उस पुण्य फल के भोग का स्थान और सामर्थ्य न हो तो दूसरे ही लोक में जाकर उसके भोगने योग्य शरीर धारण कर के भोग सक्ते हैं, उन स्थान विशेष को इस लोक से अतिरिक्त स्वर्ग कहना चाहिये। जैसे छोटे ग्राम मे छोटा धन्धा और थोड़ा भोग होता है और जिन्होंने अपनी सामर्थ्य बढ़ाली है वे बड़े शहर कलकत्ते बम्बई आदिकों मे विशेष धन्धा करने और अधिक भोग भोगने के लिये जाते हैं। जिस प्रकार स्वर्ग का भोग है उसी प्रकार नरक का भी समझ लेना। सामान्य दुःख भोगने का नरक यह लोक है और विशेष दुःख भोगने का स्थान और शरीर इस लोक में नहीं है, उनके लिये इस लोक से अतिरिक्त स्थान और शरीर विशेष को घोर नरक कहना चाहिये। जिस प्रकार थोड़ी सज़ा

वाले कैदी को छोटे जैलखाने में रक्खा जाता है और उससे घोर विशेष पाप कर्म वाले बड़ी जैल मे रक्खे जाते हैं और उनसे भी जो अधिक दुष्ट कर्म करते हैं वे देश से बाहर दूसरे टापू काले पानी को भेज दिये जाते हैं।

स्वर्ग और नरक अन्तःकरण मे हैं क्योकि अन्तःकरण से कर्म होता हैं और उसीसे भोग होता है। अन्त.करण अज्ञान का कार्य है इसलिये स्वर्ग और नरक भी अज्ञान मे ही हैं। अज्ञान ब्रह्माण्ड भर में फैला हुआ है इसलिये अज्ञान दृष्टि से स्थान विशेष को स्वर्ग नरक कहते हैं।

स्वर्गः—इस लोक में जितना सुख है उससे विशेप सुख स्वर्ग में है। यहां के भोग से स्वर्ग के भोग कई गुणा अधिक और दिव्य होते हैं; वहां का शरीर पञ्चभौतिक सूक्ष्म भाव से वना हुआ दिव्य और ऐश्वर्यवान् होता है। देवताओं को कई प्रकार की उत्तम सिद्धियां जन्म से ही प्राप्त होती हैं। जैसे मनुष्यों को महनत करके काम करना पड़ता है और भोजन भी वनाकर खाना पड़ता है वैसे देवताओं को नहीं करना पड़ता। संकल्प से सब काम और अमृत के दर्शन मात्र से उनकी तृप्ति होजाती है। देवताओं का शरीर मल मूत्र रहित होता है। गमनागमन के लिये उत्तम विमान होते हैं जो इच्छा मात्र से चलते हैं। भांति भांति की अप्सरायें नृत्य, गान किया करती हैं उन के अंग प्रत्यंग विकार रहित निर्दोष होते हैं। वे अप्सराये देवताओ के रमण करने के लिये होती हैं। वहां शारीरिक रोग, बुढ़ापा और मरण नहीं होता। इस प्रकार की सब

विभूतियां होते हुए भी अज्ञानमय होने से वहां का सुख, ईर्षा, द्वेष और अभिमान से रहित नहीं है और जब पुण्य का भोग समाप्त होता है तब मृत्यु लोक में गिरा दिये जाते हैं, जिससे महान् कष्ट होता है।

नरक:— उस स्थान विशेष को कहते हैं जिसमें अंत:करण और शरीर विशेष मलिन पदार्थों से बना हुआ तमोगुणमय होता है। यह उसी स्थान का नाम है जहां महान् पाप का फल भोगा जाता है। वहां दु:ख अधिक होता है। नित्य जलन और अनेक प्रकार का कष्ट होता है। प्राणी नित्य सताये जाते हैं। बुद्धि की मलिनता और कष्ट की अधिकता से शुभ कर्म, ईश्वर भजनादिक नहीं होसक्ते। इन्द्रिय भी मलिन, अस्पष्ट अथवा न्यून होती हैं। 'हाय! जला! मरा!' इस प्रकार कष्ट से प्राणी चिल्ल पुकार किया करता है। इस लोक के नरको में गर्भवास प्रत्यक्ष है जहां प्राणी अन्धेरे जेलखाने में बन्द होता है, मल मूत्रादि दुर्गन्धियुक्त पदार्थों के साथ रहता है, इन्द्रिय बल रहित होने से अन्तर में जलने के सिवाय और क्या होता है। गर्भ में पिछले मास में होश रहने से कष्ट अनुभव करने के साथ पूर्व जन्म की याद आती है इसलिये प्राणी कष्ट से बचना चाहता है परन्तु बाहर निकलते ही संसार की वायु लगने से जन्मांतर भूलकर अज्ञानी हो अज्ञान को सुख समझने लगता है और वही नरक-कष्ट बना रहता है।

मोक्ष कोई ऐसी वस्तु नहीं है कि तुझे 'अमुक वस्तु मोक्ष है' इस प्रकार समझा दिया जाय अथवा दिखला दिया जाय। मोक्ष

का अर्थ छूटना है यदि यह पूछे कि किससे छूटना है तो उसका उत्तर यह है कि अज्ञान से छूटना है। जब तक हमको यह मालूम नहीं होता कि हम अज्ञानी हैं तब तक अज्ञान हमको दुःखदायक है। जब तक अपने को अज्ञानी न जानेगा तब तक अज्ञान से छूटना क्यों चाहेगा? जब तक अज्ञानी न्यूनाधिक भाव से भी अपने को अज्ञानी न माने तब तक उसे मोक्ष की बात भी नहीं सुहाती। जितना कष्ट है वह सब अज्ञानका है और जो सुख भी कुछ प्रतीत होता है वह भी नाशवंत और परिणाम में दुःख रूप है। इस लोक के सब सुख और इस लोक के समान ब्रह्मांड मे जितने लोक हैं उन लोकों का भी सुख परिणाम में दुःख रूप है—अज्ञान है, यह समझ कर अज्ञान सहित अज्ञान के सब कार्यों के भाव से रहित होना—अज्ञान से छूट जाना मोक्ष है। अज्ञान, अज्ञान का कार्य और अज्ञान जिससे है उस आद्य प्रकृति के भाव से आत्मा का पृथक् कर लेना मोक्ष है। जगत् के अत्यन्त दुःख की कारण सहित निवृत्ति होने पर अखंड आनन्द स्वरूप परब्रह्म की प्राप्ति, मोक्ष का स्वरूप है।

एक मनुष्य के पास एक तोता था। जहां यह रहता था वहां के लोग एक दिन एक महात्मा के दर्शन करने जाने लगे। उन महात्मा के पास भी एक तोता था। सबो ने महात्मा से पूछने के लिये एक एक प्रश्न सोच रक्खा था। एक ने तोते से कहा "मियां मिट्ठू! क्या तुम भी महात्मा से कुछ पूछना चाहते हो?" तोते ने कहा, "आप लोग महात्माजी से प्रश्न करेंगे। मैं पक्षी हूँ, मेरा

प्रश्न मेरे एक जाति भाई से जो वहां पेड़ पर रहता है उससे करना वह महात्माजी के पास रहता है इसलिये अवश्य ज्ञानी होगा उससे पूछना कि तेरा एक भाईबंध अंधीपुर में रहता है उसने पूछा है कि मेरी मुक्ति किस प्रकार हो ? जो उत्तर वह देवे मुझसे आकर कह देना।" सब लोग संत के दर्शन करने गये। उन्होंने संत के स्थान के वृक्ष पर एक तोता देखा और उससे अपने घर के तोते का प्रश्न किया। प्रश्न सुनते ही तोता मूर्छा खाकर गिर पड़ा और मृतक के समान हो गया, कुछ उत्तर न दिया। लोग भीतर गये और महात्माजी से मिल कर तोते से प्रश्न करने और उसके मूर्छित होकर गिरने का हाल कहा। महात्मा भी सुन कर अचेत की समान पृथिवी पर गिर गये। यह देख कर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। थोड़ी देर पश्चात् वे उठ खड़े हुए। इसका कारण पूछने की किसी की हिम्मत न हुई। कुछ देर वार्तालाप कर के सब अपने घर लौट आये। तोते ने जब अपने प्रश्न का उत्तर मांगा तब उन्होंने तोते की और महात्मा की जो अवस्था हुई थी वर्णन की। तोता समझ गया और अचेत होकर पिंजरे में गिर गया। उसकी यह अवस्था देख कर सबों को बड़ा आश्चर्य हुआ ! जब बहुत देर तक तोता न उठा तो सबों ने मृतक जानकर उसको पिंजरे से निकाल कर बाहर फेंक दिया। बाहर फेंकते ही तोता सावधान होकर उड़ गया, बंधन से मुक्त हुआ, यही मोक्ष है। महात्मा के तोते ने उत्तर दिया था कि मरजाने के समना होने से मुक्त होगा यह श्रवण है। महात्मा ने उसी बात का मनन कर

के दिखलाया। तोता निदिध्यासन करके मुक्त हुआ। जब तक प्रथम मर जाने के समान आसक्ति-वासना रहित न हो तब तक कोई मुक्त नहीं होता। जगत् के आन्तरिक भाव का मरण और अपनी आद्य स्वतंत्रता-स्वरूप की प्राप्ति मोक्ष है।

एक लड़का जिसकी उमर अनुमान से १६ वर्ष की होगी, एक दिन पाखाने मे टट्टी फिरने गया। उसका चित्त किसी और विषय में लगा हुआ था। वहां उसको अचानक एक गिरगट दिखाई दिया, उसको देख कर वह चोंक पड़ा और आस पास गिरगट को देखने लगा परन्तु वह कहीं दिखाई न दिया। गुदा में जलन सी प्रतीत हुई और पेट में दर्द मालूम देने लगा। उसने समझा कि गुदा द्वार से गिरगट पेट में घुस गया। विचारे ने वहुतेरा जोर लगाया परन्तु गिरगट न निकला तब तो व्याकुलता अत्यन्त ही वढ़ गई और वह घर में जाकर इधर से उधर लोटने लगा। रक्त की टट्टियां होने लगीं। लड़के ने गिरगट पेट में घुस जाने की वात कही घर वाले घवड़ा गये! तू चल। मैं चल। होने लगी। वैद्य, हकीम, डाक्टर वुलाये गये, दवादारू लाने की दौड़ धूप होने लगी। इस प्रकार इलाज करते हुए चार पांच दिन होगये किसी दवा ने कुछ असर न किया, लड़के की मरने की तैयारी होने लगी। माता पिता के वह एक ही लड़का था, उनका घर भी प्रतिष्ठित था। जो औषधि जो कोई वतता था विचारे वही करते थे। लड़का भी सरल स्वभाव का था और सव से मेल झोल रखता था, उसकी जान जोखम में देख कर सवको कष्ट था,

संयोगवश एक चतुर वैद्य वहां आया, लोगों ने व्याधि होने का हाल उससे कहा और जिन जिन वैद्य डाक्टरों का इलाज किया था वह सब कह सुनाया। वैद्य ने कहा "मैं इस व्याधि को पूर्ण रूप से समझ गया हूं, आप निश्चिन्त रहिये मैं इसको बहुत शीघ्र दूर कर दूँगा, किसी प्रकार लड़के की जान जोखम में नहीं है; जब तक व्याधि पूर्ण रूप से समझ में न आवे तब तक दवा असर नहीं करती, जो निदान पूर्ण हो गया तो रोग गया समझिए।" इस प्रकार समाधान करने वाले वचन सुनकर सब की हिम्मत बंधी। वैद्य ने कहा "औषधि मैं अपने साथ नहीं लाया हूँ, अभी जाकर लिये आता हूँ!" इस प्रकार कहकर वैद्य वन में गया और वहां से एक मरा हुआ गिरगट ले आया। फिर उसने जमालगोटा मिश्रित जुलाब की गोलियां बनाई और एक गोली जल में घोट कर रोगी को पिला कर कहा, "आप सब सावधान रहिये, घबड़ाइये नहीं, दो चार दस्त होंगे, शीघ्र ही आराम हो जायगा।" उसके कहे अनुसार गोली ने बन्दूक की गोली के समान काम किया। तुरंत ही एक दस्त हुआ और फिर भारी गड़गड़ाहट के साथ पानी की पिचकारियां छूटने लगीं! वैद्यजी पास बैठे हुए थे उन्होंने उसी समय चालाकी से मरा हुआ गिरगट दस्त में गिरा दिया और प्रसन्न चेष्टा से कहा "व्याधि गई! व्याधि गई! देखो! पेट में यही गिरगट घुस गया था! औषधि की सामर्थ्य से पेट में से निकल आया; मरे हुए गिरगट को देखकर सब आश्चर्य युक्त हो वाह!

वाह ! कहकर वैद्य की प्रशंसा करने लगे! लड़के को भी दृढ़ निश्चय हो गया कि पेट मे घुसा हुआ गिरगट निकल गया। उसी समय पेट का दर्द वन्द हो गया, व्याकुलता जाती रही, रक्त के दस्त होना वन्द हो गया। दो चार दिन में पूर्ण आरोग्य हो गया। इस प्रकार लड़का रोग से मुक्त हुआ।

जैसे न घुसा हुआ भी गिरगट पेट में घुस गया ऐसा मानने से ही सब व्याधि खड़ी हो गई थी, इसी प्रकार माया-अज्ञान न घुसा हुआ होने पर भी अज्ञानियों ने लड़के के समान घुसा हुआ मान लिया है इस कारण उसके सब उपद्रव को सहना पड़ता है। इतना ही नहीं परन्तु जन्म जन्मातर में उसी माने हुए अज्ञान का फल भोगना पड़ता है! जब कोई चतुर वैद्य व्याधि का पूरा निदान करने वाला श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ गुरु मिले और युक्ति द्वारा घुसे हुए भ्रम को निवृत्त करे तब संसार रूप महान रोग से मुक्त हो और अपनी आद्य स्थिति को प्राप्त हो। रोग से मुक्त होने के लिये लड़के के जितने उपाय किये गये उनमें से कोई काम न आया, जब भ्रम मिटा तब रोग नष्ट हुआ। इसी प्रकार अज्ञान से उत्पन्न हुआ रोग किसी अन्य उपाय से नहीं जाता, अज्ञान निकलने से ही मिटता है, अज्ञान मे से निकल कर ज्ञान मात्र का रहना ही मोक्ष है।

क्रिया स्थूल सूक्ष्म शरीर से होती है। जिसे स्थूल क्रिया कहते हैं वह क्रिया स्थूल शरीर से सम्बन्ध रखती है, स्थूल शरीर इस लोक का है और क्रिया का कर्म भी इस लोक मे है। स्थूल

कर्म वास्तविक कर्म नहीं है उससे कुछ फल प्राप्त नहीं होता परन्तु कर्म करने के साथ में अज्ञान सहित जो भाव है उसी सूक्ष्म भाव वाले कर्म फल देने वाले होते हैं। वह सूक्ष्म भाव अज्ञान स्वरूप अंतःकरण में रहता है जिसका फल सुख दुःख, पाप पुण्य है। जब तक अज्ञान में स्थिति है तब तक अज्ञान में क्रिया और भोग होते हुए अज्ञानी को फल प्राप्त होना झूठा नहीं है। कर्म अज्ञान से उत्पन्न होते हैं और अज्ञान को पुष्ट करते हैं। जब ज्ञान की प्राप्ति होती है तब कोई कर्म अवशेष नहीं रहता। कर्ममीमांसा बहुत सूक्ष्म है, अन्य प्रसंग मे समझाई जायगी। कर्म क्या वस्तु है? इसके समझने का यही फल है कि कर्म अनित्य हैं और परिणाम मे दोष रूप हैं, उनको समझकर मुमुक्षु को उनकी सत्ता के बाहर जाने का प्रयत्न अवश्य कर्तव्य है।

अन्तिम सारांशः—अनेक प्रकार की क्रिया से होने वाला कर्म है। कर्म का भोग रूप फल, पाप अर्थात् नरक और पुण्य अर्थात् स्वर्ग है। पुण्य, पाप, स्वर्ग, नरक और सब कर्म अज्ञान में रहते हैं। इन सब से सम्बन्ध छोड़ना और अपने आद्य स्वरूप मे स्थिति करना अर्थात् जगत् का अत्यन्त अभाव होना और परमानन्द की प्राप्ति होना मोक्ष है।

६ माया और मोक्ष।

प्रश्नः—माया अनादि मानते हो तो अनादि का नाश कभी नहीं होता, इसलिये माया कभी नहीं छूटेगी और जीव का कभी मोक्ष नहीं होगा, फिर मोक्ष क्या ?

उत्तरः—वेदान्त सिद्धान्त तेरी समझ में नहीं आया है, इसलिये तू यह प्रश्न करता है। जब तू सिद्धांत को यथार्थ रीति से समझ लेगा तब ऐसा प्रश्न न करेगा। माया का स्वरूप तुझको पूर्व में दिखलाया गया है। माया उसको कहते हैं जो वस्तुतः कोई वस्तु न हो और देखने में सत्य के समान प्रतीत होती हो, जिस की आदि मालूम न हो, जो रूपान्तर वाली हो, नित्य एक रूप में टिकने वाली न हो, जैसे इन्द्रजाली की माया, स्वप्न की सृष्टि, रज्जु मे सर्प की भ्रांति इत्यादिक। अब देख उसमें अनादित्व किस प्रकार का है ? इन्द्रजाली ने मायाके वल से मृत्तिका का रुपया वना कर तुझ को दिखाया यह रुपया तेरे देखने से प्रथम वना था। जो तू यह कहे कि जब मैंने उस को देखा था तभी वह वना था, तो ऐसा नहीं है क्योंकि उस रुपये में सरकारी छाप है और संवत् आदिक भी ठीक ठीक हैं। अब विचार कि जब तूने उसे देखा तब उस क्षण में कौन सी खान से चांदी निकाली गई ? किस ने निकाली ? किस व्यापारी ने खरीदी ? सरकारी टकसाल में किस प्रकार पहुंची ? किस कारीगर ने चादी का रुपया वनाया ? और किस प्रकार उस इन्द्रजाली के हाथ में वह रुपया आया ? तेरे

रुपये देखने से प्रथम ही सब कार्य होना मानना पड़ेगा। जिस प्रकार उन बातों की आदि अज्ञात होने से वे अनादि हैं उसी प्रकार अज्ञान-अविद्या-माया को भी मुमुक्षुओ के बोध के निमित्त शास्त्रकारो ने अनादि कहा है। यही हाल स्वप्न के पदार्थों का है। जिस समय स्वप्न देखते हैं उस समय से प्रथम स्वप्न के पदार्थ उत्पन्न हुए हैं यदि उसी समय उत्पन्न होते तो कई वर्ष का पुराना पेड़, वगीचा, राज्य महल और पचास वर्ष का मनुष्य उत्पन्न होना असम्भवित था। इससे सिद्ध होता है कि जब देखने वाला देखता है उससे प्रथम के स्वप्न के पदार्थ हैं। आदि मालूम न होने से वे अनादि हैं परन्तु जाग्रत् अवस्था में स्वप्न के अनादि पदार्थों का नाश हो जाता है इसी प्रकार प्रपंच अज्ञान का होने से अज्ञानियों को अनादि मानना पड़ता है और ज्ञान होने के पीछे जाग्रत् में स्वप्न के समान उसका बाद भी प्रतीत होता है। इस प्रकार अनादि माया का ज्ञान से बाध होजाता है। रज्जु में जो सर्प दीखता है वह रज्जु में नया नहीं उत्पन्न हुआ है परन्तु भ्रांति के देखने से प्रथम का उत्पन्न हुआ है। रज्जु का सर्प वस्तु न होने से भ्रांति में अनादि है। जैसे रज्जु के बोध से सर्प भ्रम की निवृत्ति होजाती है वैसे ही अधिष्ठान-ब्रह्म के बोध से माया की निवृत्ति होजाती है। आदि और अनादि वस्तु की होती है। माया भ्रम मात्र है वास्तविक नहीं है उसकी अनादि क्या होगी? वेदान्त का रहस्य अत्यन्त सूक्ष्म है, अधिकारियों की योग्यता के अनुसार अनेक प्रकार की युक्तियों से आत्म स्वरूप का बोध कराया जाता है इस कारण शास्त्रकारो की यह योजना है।

ब्रह्म, ईश्वर, जीव, अविद्या, अविद्या का चेतन से सम्बन्ध और अनादि वस्तुओं का भेद ये छः अनादि हैं उनमे प्रथम जो ब्रह्म है सो वस्तु रूप होने से अनादि अनन्त है और शेष पांच अवस्तु होने से अनादि कल्पित हैं और अंत वाले हैं। कल्पित को अनादि कह कर मुमुक्षुओ को आत्म लक्ष में स्थिर कराना है, जब वे सच्चि-दानन्द स्वरूप को प्राप्त होते हैं तब माया रहती ही नहीं। तब उसका अनादिपना या सान्तपना क्या कहा जाय। 'अनादि मानते हो तो', ऐसा तू कहता है, मेरी दृष्टि में माया है ही नहीं, तुझ जैसे मुमुक्षुओं के समझाने के निमित्त माया को अनादि कल्पित और ज्ञान होने पर सान्त कहा है। बालकों को जिन युक्तियों से समझ में आजाय ऐसी युक्तियों का उपयोग किया जाता है, ऐसे ही अनादि के सहारे मुमुक्षुओं को ज्ञान प्राप्त कराया जाता है। जो वस्तु सत्य होकर अनादि हो तो उसका नाश कभी न हो परंतु कल्पित अनादि का नाश, कल्पित अज्ञान हट जाने से अवश्य होजाता है। तेरे समान एक मुमुक्षु ने एक संत से प्रश्न किया था, संत ने जो उत्तर दिया था वह सुनः—

गंगा किनारे एक शान्तिमय स्थान पर एक महात्मा विराजते थे। मुमुक्षु उनके समीप रह कर ज्ञान प्राप्त करते थे। एक मुमुक्षु विधिवत् गुरु के शरण मे रहता था। उसने गुरु महाराज से इसी प्रकार प्रश्न किया था। मुमुक्षु ने कहा हे गुरुदेव, परमात्मा जीव भाव को प्राप्त होगया है, माया अनादि है इससे जीव भाव की उपाधि भी अनादि है। जो वस्तु अनादि होती है वह अनंत भी

होती है, इसलिये जीव भाव और संसार नित्य हुआ, इन दोनों का नाश न होने से जीव का मोक्ष कभी न होगा। महात्मा ने कहा हे जिज्ञासु, परमात्मा वास्तविक जीव भाव को प्राप्त नहीं हुआ, अज्ञान के कारण अज्ञानियों को परमात्मा जीव भाव को प्राप्त हुआ भ्रान्ति से प्रतीत होता है। तेरा प्रश्न उत्तम है, सावधान होकर समझः—मोह की कल्पना से भ्रान्ति से बना हुआ जीव भाव यथार्थ नहीं है, जैसे आकाश में नीलता भ्रान्ति से कल्पित है वैसे ही असंग आत्मा में जीव भाव की कल्पना है। भ्रान्ति की कल्पना का नाश होने से उपाधिकृत जीव भाव नहीं रहता। जैसे रज्जु में सर्प का जो भान होता है वह बुद्धि के प्रमाद से होता है, जब तक भ्रांति है तब तक सर्प है। भ्रांति के नाश होने से सर्प की बुद्धि का नाश होता है। वैसे ही जब तक भ्रांति है तब तक मिथ्या ज्ञान से कल्पित जीव है, भ्रम के नाश होने से जीव भाव का नाश होकर आत्मा का ही भान होता है। माया और माया का कार्य दोनों ही अनादि है तो भी जब ज्ञान उत्पन्न होता है तब अनादि माया का भी कार्य सहित नाश होजाता है, जैसे जाग्रत् होने से स्वप्न का मूल सहित नाश होजाता है। माया और माया का कार्य अनादि होते हुए भी नित्य नहीं है क्योंकि प्राग-भाव (उत्पत्ति के प्रथम वस्तु का अभाव) अनादि है। जिस वस्तु का अभाव होता है उस वस्तु का सद्भाव होने से उस अभाव का नाश होता है वैसे ही अनादि माया का भी ज्ञान होने से नाश होजाता है। मुमुक्षु ने कहा भगवन्, यह आपका कहना यथार्थ नहीं जान पड़ता, मेरा पूर्ण निश्चय है कि जो पदार्थ अनादि

होता है वह अनंत होता है। आप अनादि माया का नाश कैसे बताते हैं? जिसमें अनादित्व की सामर्थ्य है वह अन्त वाली कदापि नहीं होसक्ती। जिसका जन्म होता है उसका नाश होता है। आपका कहना है कि जन्म तो होता नही और नाश वो होजाता है, जो कुछ आप कहते हैं उसका कोई दृष्टांत भी नहीं मिलता। महात्मा ने कहा अभी तेरी समझ में नहीं आया, जब तक समझ मे नहीं आवे तब तक बारम्बार प्रश्न करना चाहिये और एक बार समझ में आ जावे तो भी शंका कर के अच्छी प्रकार समझ लेना चाहिये इस प्रकार ऊहापोह करने से बोध दृढ़ होता है। जो श्रद्धालु होता है वह उत्तम अधिकारी होता है। तेरी समझ में नहीं आया तो क्या मैं समझाने वाला झूठा हूँ या झूठी युक्तियों से समझाता हूँ? मुमुक्षु ने कहा महाराज, मेरा अपराध क्षमा कीजिये, मेरा यह भाव नहीं है कि आप मुझे झूंठ समझावे हैं या आपने समझा नहीं है। आपका कहना सत्य ही होगा परंतु मेरी बुद्धि इस समाधान को सचे रूप से ग्रहण नहीं करती। महात्मा ने कहा तब क्या मेरी बुद्धि से तेरी बुद्धि विशेष है? मुमुक्षु ने कहा मैं ऐसा भी नहीं समझता, आपकी बुद्धि मेरी बुद्धि से अनंत गुण विशेष निर्मल है, आप मुझसे ऐसे ही मानने को कहें तो मैं मान लूंगा, परन्तु मेरा समाधान वो नहीं हुआ। यदि मेरी बुद्धि में सूक्ष्मतत्त्व के समझने की सामर्थ्य न हो तो जिस प्रकार मैं समझ सकूं उस प्रकार आप मुझे समझाइये। महात्मा ने कहा इस समय श्रद्धा के बल से तू मान ले कि जो कुछ मैं कहता हूँ वह सत्य है। कुछ दिनों के पश्चात् मैं तेरा समाधान कर दूंगा

मुमुक्षु महात्मा के साथ रहा किया। उनके स्थान पर एक वगीचा था और उसके सिवाय थोड़ा सा पृथ्वी का भाग खेत करने योग्य खाली पड़ा हुआ था। वहां रहने वाले शिष्य वर्ग वगीचे का सिंचन आदि कर्म अपने हाथों से किया करते थे, ऋतु अनुकूल माली का काम भी वे ही लोग किया करते थे। उपरोक्त प्रश्नोत्तर के एक सप्ताह पश्चात् महात्मा ने एक सेवक से एक छटांक मकई के वीज मंगवाये और मुमुक्षु से पृथ्वी को वोने योग्य करने के लिये आज्ञा दी। उसने आज्ञानुसार तीन दिन में कूड़ा करकट निकाल कर पृथ्वी खोद कर मुलायम कर दी। महात्मा ने मकई के वीज मुमुक्षु से मंगवाये और अंगीठी मे आग सुलगा कर उनको भूनकर मुमुक्षु से कहा यह वीज वोने के लिये हैं, उनको सरदी लग गई थी मैंने उन्हें भून लिया है, इस क्यारी में ये वोये जायेंगे। मुमुक्षु ने कहा महाराज! कहीं भुना हुआ अन्न भी उगता होगा? महात्मा ने कहा वाह! क्यों नहीं उगता? इन्ही को वोवेंगे। मुमुक्षु यह सुनकर स्तब्ध होगया! महात्मा के सामने वोल न सका। मन में विचारने लगा महात्माजी की बुद्धि कैसी होगई है? एक छोटा वालक भी समझ सकता है कि भुना वीज कभी नहीं उगता। खैर, देखें क्या होता है। महात्मा ने उन्हीं भुने वीजो को वुवा दिया और मुमुक्षु को रखवाली करने और योग्य समय पर जल देने का काम दिया गया। जव जल की आवश्यकता होती तो मुमुक्षु से कुए में से जल खींचकर दिलाया जाता। मुमुक्षु का सव श्रम व्यर्थ जाता था परन्तु महात्मा की आज्ञा

पालन किया करता और मन में दुःखी होकर कहा करता बीजं भूनकर बोये हैं, और इतनी सेवा कराते हैं! बीज बोये हुए एक मास होगया। आस पास के खेतों के मकई के पेड बड़े होकर भुट्टा देने के लायक होगये परन्तु महात्मा के मकई के खेत में अभी तक कुछ नहीं था। हरियाली तक भी नहीं दीखती थी क्योंकि मुमुक्षु झाड़ फूंस की नराई कर दिया करता था और मकई अभी तक उगी न थी! जल देते हुए डेढ़ मास होगया, सब खेतो की मकई आगई परन्तु महात्मा के खेत में कुछ भी न था। महात्मा ने मुमुक्षु से कहा सब खेत की मकई आगई अपने खेत की भी तोड़ ला। मुमुक्षु ने कहा महाराज, आपकी आज्ञानुसार मैं बराबर जल देता रहा हूं परन्तु आपने बीज भूनकर बोया है भला वह कैसे उपजे? भुनने से उसकी उगने की शक्ति नाश होगई। खेत में तो कुछ भी नहीं है, मकई कहां से तोड़ लाऊं? महात्मा ने कहा जा, देख तो सही। मुमुक्षु ने कहा महाराज! मैं रोज देखता हूँ, आपकी आज्ञानुसार अब भी जाता हूँ। इस प्रकार कह मुमुक्षु खेत में गया और वहां कुछ न पाया, तब लौट कर नम्रतापूर्वक महात्मा से कहने लगा महाराज, वहां मकई तो क्या कुछ भी नहीं है! हां, मैं रोज जल देता था, इस कारण पृथ्वी गीली है। महात्मा ने आश्चर्य मानकर कहा क्या सच कहता है? क्या मकई नहीं हुई? मुमुक्षु ने कहा नहीं! महात्मा ने कहा कैसे आश्चर्य की बात है! बता मकई कैसे होती है? मुमुक्षु ने कहा खेत में बोने से। महात्मा ने कहा तू ने भी तो खेत में ही बोई

थी ? मुमुक्षु ने कहा हां, परन्तु आपने बीज भून डाला था इससे नहीं उगा ! बीज भूना न जाता तो अवश्य उग आता महात्मा ने कहा बीज कहां से होता है ? मुमुक्षु ने कहा पेड़ से। महात्मा ने कहा पेड़ कहां से होता है ? मुमुक्षु ने कहा बीज से। महात्मा ने कहा बीज कहां से होता है ? मुमुक्षु ने कहा पेड़ से। महात्मा ने कहा तब उसका कुछ आदि भी है ? मुमुक्षु ने कहा जब से जगत् है तब से ही बीज और पेड़ हैं। महात्मा ने कहा जगत् कैसा है ? मुमुक्षु ने कहा माया का है। महात्मा ने कहा माया की आदि है ? मुमुक्षु ने कहा नहीं । महात्मा ने कहा क्या बीज और पेड़ की आदि है ? मुमुक्षु ने कहा नहीं। महात्मा ने कहा मकई के बीज की आदि है या नहीं ? मुमुक्षु ने कहा नहीं। महात्मा ने कहा अन्त भी है या नहीं ? मुमुक्षु ने कहा भगवन्, अन्त भी नहीं होता परन्तु भूनने से अन्त होगया ! महात्मा ने कहा तेरे कहने से सिद्ध हुआ कि मकई आदि रहित होने पर भी भुन जाने से अन्त वाली है और भुन जाने से वह जन्म मरण के चक्र से मुक्त होजाती है। मुमुक्षु ने कहा हां, ऐसा ही है ! महात्मा ने कहा तू उस दिन कहता था कि माया अनादि होकर शांत कैसे होसक्ती है, उस समय तेरी समझ मे नहीं आता था, अब मकई के दृष्टान्त से तू क्यों स्वीकार करता है ? इसी प्रकार माया को समझ कि माया अनादि है परन्तु ज्ञान रूपी अग्नि से जब भुन जाती है तब सांत-अन्त वाली होजाती है। जब अज्ञान का ज्ञान से बाध होता है तब अनादि जीव का मोक्ष हो जाता है।

और भी एक दृष्टान्त सुनः—हिमालय की तराई में एक ब्रह्म-निष्ठ संत रहते थे। उनकी प्रशंसा आस पास बहुत फैल रही थी। वहां का एक पहाड़ी राजा जो धर्मात्मा, नीतिवान् और मुमुक्षु था, संत का शिष्य हुआ था और समयानुकूल संत के पास आकर उनसे वेदान्त श्रवण किया करता था। एक वार उसके मन में एक प्रचण्ड शंका उत्पन्न हुई और उसने संत से कहा 'महाराज! माया अनादि है तो उसका नाश होना किस प्रकार संभवित है? और माया का नाश न होगा तो जीव का मोक्ष किस प्रकार होगा? संत ने कहा तेरा प्रश्न गंभीर है। उसका उत्तर पाने के लिये कुछ खर्च करने की आवश्यकता है। राजा अपने प्रश्न का उत्तर पाने का उत्सुक था। राजा होने से धन का तो कुछ टोटा ही न था। संत के कहे अनुसार मनुष्य और धन का प्रबन्ध कर दिया गया।

वहां के पहाड़ में एक बहुत पुरानी, बड़ी, कुदरती गुफा थी। उसके समीप एक मंदिर बना हुआ था। एक निर्मल झरना भी वहां था। पहाड़ी लोग मंदिर की पूजा और मानता किया करते थे इसलिये वह स्थान प्रसिद्ध था। वहां के लोग उस गुफा को अनादि गुफा के नाम से जानते थे। वह अत्यन्त भयंकर और अंधकारमय थी, पत्थर के स्वाभाविक चट्टानों से बनी हुई थी, वह कितनी लम्बी है यह कोई नहीं जानता था। उसकी वायु विषैली होगई थी, कोई मनुष्य हठ करके उसके भीतर जाता तो अवश्य मर जाता! संत ने मजदूर लगाकर उस गुफा को सुरंग

लगाकर खुदवाना आरंभ किया। कुछ दिन पश्चात् जब चट्टानों का आवरण (आड़) हट गया तब सूर्य का प्रकाश स्वाभाविक रीति से उस स्थान में पहुंचने लगा। संत ने राजा को गुफा के स्थान पर बुलाकर कहा बता, यह गुफा कब की थी ? राजा ने कहा बहुत प्राचीन थी, लोग इसको अनादि गुफा कहा करते थे। संत ने कहा तू इसको अनादि मानता था या नहीं ? किसी मनुष्य की तो बनाई हुई थी नहीं, कुदरती होने से अनादि ही थी। राजा ने कहा हां, अनादि थी। संत ने कहा अब रही या न रही ? राजा ने कहा अब नहीं रही। संत ने कहा क्यों ? राजा ने कहा जिन पत्थर की चट्टानों से वह घिरी हुई थी, उन चट्टानों के टूट जाने से गुफा न रही। संत ने कहा, गुफा का अंधकार भी तो अनादि था, वह क्यों न रहा ? राजा ने कहा आड़ निकल जाने से सूर्य का प्रकाश जाने लगा और प्रकाश पहुंचने से अंधकार जाता रहा। संत ने कहा तब तेरे प्रश्न का ठीक उत्तर मिल गया। माया अनादि है ! अंधकार स्वरूप है ! जिस आवरण से अंधेरे वाली है उस आवरण के टूट जाने से वह नहीं रहती !

जिस प्रकार अनादि कल्पित अंधेरा कुदरती गुफा में था उसी प्रकार कल्पित अज्ञान जीव मे था। जीव भाव अनादि होते हुए भी अज्ञान से था। अज्ञान आवरण रूप था इसलिये अलुप्त परमात्मा का प्रकाश होते हुए भी उसमें नही पहुंचता था। जब राजा, गुरु उपदेश द्वारा उस अज्ञान रूपी आड़ को हटाने

को तैयार हुआ और अपने माने हुए भ्रांति रूप बंधन को खोकर वैराग्य धारणकर अज्ञान को मूल सहित तोड़ दिया, तब ज्ञान स्वरूप का प्रकाश यथार्थ रीति से होने लगा, यही गुफा रूपी जीव भाव का मोक्ष हुआ।

तेरे समग्र प्रश्न का यह उत्तर है:-माया अनादि होने पर भी कल्पित है इसलिये कल्पित-भ्रांति के बाध होने से अज्ञान नहीं रह सकता, जब अज्ञान नहीं रहता तब अनादि अज्ञान में फंसे हुए जीव भाव का मोक्ष हो जाता है। अनादि कल्पित अज्ञान का छूट जाना और अपने वास्तविक आत्म स्वरूप में स्थित होना इसी का नाम मोक्ष है। चेतन, चिदाभास और अविद्या इन तीनो के मिश्रण का नाम जीव है। तीनों मे चिदा-भास और अविद्या कल्पित मिथ्या हैं इन दोनों का बाध होकर मुख्य अद्वितीय निर्विशेष शुद्ध चेतन मात्र रहना मोक्ष है।

७·ब्रह्म की असंगता।

प्रश्नः—असंग होकर ब्रह्म सृष्टि का कर्त्ता कैसे है? एक ही सब व्यवहार का हेतु है तो सब एक समान क्यो नही होते?

उत्तरः—"ब्रह्म असंग है" यह बात तूने मात्र सुनली है इस लिये तू पूछता है कि ब्रह्म असंग होकर सृष्टि का कर्त्ता कैसे है? असंग ब्रह्म, सृष्टि और कर्त्ता यह प्रत्येक ठीक२ समझना चाहिये। उनके वाक्यार्थ को लक्ष्यार्थ सहित समझना चाहिये। संग और असंग दोनों ही प्रपंच का भाव और अभाव रूप है, एक दूसरे से विरुद्ध स्वभाव वाले हैं। संग, सोहबत-मिलना-आसक्ति को कहते हैं। इसी प्रकार जब मेल न हो तब उसको असंग कहते हैं। ब्रह्म को लक्ष द्वारा समझने के लिये विधि और निषेध दो प्रकार के विशेषण होते हैं, जो नकार के भाव से लक्ष पहुंचाने मे सहायक हो उसको निषेध विशेषण कहते हैं जैसे अक्रिय, अविनाशी, अव्यक्त, अनादि, निर्विकल्प इत्यादि। इसी प्रकार का विशेषण असंग है। इससे यह समझ मे आता है कि जिस प्रकार प्रपंच का संग है इस प्रकार का संग जिसमें न हो वह असंग है। संग के भाव को तोड़ कर लक्ष कराने के निमित्त जो असंग शब्द है वह केवल मुमुक्षुओं को समझाने के निमित्त है वास्तविक तो ब्रह्म संग असंग रहित होते हुए दोनों का प्रकाशक और अधिष्ठान है। जैसे संग दूसरी वस्तु की अपेक्षा रखता है वैसे ही असंग भी प्रतिपक्षी की अपेक्षा से रहित नही

है। अद्वैत ब्रह्म में अपेक्षा नहीं है। शास्त्र और गुरु तटस्थ रहकर अपेक्षा छुड़वा कर असंग के अर्थ में लक्ष ले जाने का संकेत (इशारा) करते हैं। ब्रह्म और जगत् किस प्रकार का है यह बात प्रथम के प्रश्नों में समझा चुका हूँ। अद्वितीय सत्य तत्त्व को ब्रह्म कहते हैं, उसमे भासमान होने वाली को सृष्टि कहते हैं। द्वैत में सृष्टि भासती है। ब्रह्म और सृष्टि, दो नहीं है इसलिये सृष्टि का कर्ता ब्रह्म नहीं है क्योंकि उपादान कारण से कार्य की एकता होती है। कारण रूप ब्रह्म से कार्य रूप सृष्टि की एकता है नहीं, इसलिये शुद्ध परब्रह्म सृष्टि का कर्ता नहीं है। इसी प्रकार अवस्तु रूप जड़ माया भी सृष्टि की कर्ता नहीं हो सक्ती।

उपनिषद् आदिक वेदान्त ग्रन्थों में जगत् का कर्ता ईश्वर कहा है। यद्यपि ब्रह्म से ईश्वर का अभेद है तो भी ईश्वर जो कर्ता है वह उपाधि दृष्टि से मुक्त नहीं है। कारण दो प्रकार का होता है एक उपादान कारण जैसे मृत्तिका घट का उपादान कारण है। जिस कारण रूप पदार्थ में से कार्य रूप वस्तु बने वह उपादान कारण कहलाता है। दूसरा निमित्त कारण होता है जैसे घट का निमित्त कारण कुलाल है। अलग रहकर वस्तु को बनाने वाला निमित्त कारण कहलाता है। एक ही ईश्वर जगत् के बनाने में दोनों प्रकार का कारण है अर्थात् जगत् से ईश्वर भिन्न नहीं है। निमित्त और उपादान कारण होने से अभिन्न निमित्तोपादान कारण ईश्वर है। ईश्वर का उपाधि अंश जगत् का उपादान कारण है और उसका चेतन अंश निमित्त

कारण है। जिस प्रकार मकड़ी तन्तु का उपादान और निमित्त दोनों है। मकड़ी के शरीर में रहने वाला स्थूल अंश तंतु का उपादान कारण है और चैतन्यतायुक्त सूक्ष्म अंश तन्तु का निमित्त कारण है। ऐसा होने पर भी जगत् की उत्पत्ति सापेक्षिक है। प्रकृति अनादि होने से पूर्व के जीवों के संस्कार की अपेक्षा से ईश्वर जगत् का कर्ता है इसलिये कर्ता होकर भी वह असंग है। अनादि प्रकृति में उत्पत्ति का असंभव है। जहां तहां श्रुतियों ने सृष्टि की उत्पत्ति बताई है वह उत्पत्ति को ग्रहण करने के कारण नहीं है परन्तु मुमुक्षुओं को समझाने के निमित्त है। ज्ञान प्राप्ति के निमित्त अथवा लय चिन्तन के लिये उसका उपयोग है। यदि उत्पत्ति वास्तविक होती तो श्रुतियों में उसके क्रम की भिन्नता न होती। ब्रह्म सूत्र में उत्पत्ति की एकता की गई है वह यह समझाने के लिये नहीं है कि उत्पत्ति सत्य है परन्तु इस हेतु से है कि मुमुक्ष भ्रम मे न पड़े! ईश्वर जगत् का कर्ता होते हुए भी इस प्रकार का कर्तृत्व उसमें नहीं है जिस प्रकार का मनुष्य में है इससे वह असंग कर्ता कहाता है। यदि दूसरे की अपेक्षा से कर्ता न होता और संग सहित कर्ता होता तो सामान्य मनुष्यों के समान ईश्वर अल्पज्ञ होता और जन्म मृत्यु आदि अनेक प्रकार दु:ख भोगता और राग द्वेश कामना सहित असम दृष्टि वाला होता। इस प्रकार का ईश्वर मानने से उसमे ईश्वरता क्या रहती! वह तो सामान्य मनुष्य से भी तुच्छ होता। मनुष्य अज्ञानी होते हुए भी शरीरधारी है और गुरु की प्राप्ति होने से

उसको मोक्ष प्राप्त हो सकता है परन्तु ईश्वर की मुक्ति का सम्भव नही है, इसलिये ईश्वर को असंग होकर सृष्टि का कर्ता मानना युक्त है। मुमुक्षुओं के उपदेश के निमित्त शास्त्रकारों का यह कथन है कि ब्रह्म असंग है, नहीं तो अद्वैत में असंग, कर्ता, कार्य और कारण कुछ भी कहना नहीं बनता। जगत्-प्रकृति अनादि है इस भाव से भी संग वाला कर्ता कहना अयुक्त है। संग ही ऐश्वर्यता तोड़ने वाला है, मनुष्य संगदोष से अल्पज्ञ है इसलिये सर्वज्ञ, असंग ईश्वर ही सृष्टि का कर्ता मानना युक्त है।

एक संत और राजा में बहुत मित्रता थी। विचरते हुए संत राजा के पास आया करते थे। वह उनकी भली प्रकार सेवा किया करता था। संत के बारम्बार सम्बन्ध से धार्मिक राजा पर वेदान्त का संस्कार कई अंशों में पड़ा था। पूरा रहस्य तो वह नहीं जानता था परन्तु भली प्रकार वेदान्त विषय की वार्तालाप किया करता था। वेदान्त के ऊपर उसका प्रेम भी था परन्तु अंतःकरण की मलिनता के कारण उसको वास्तविक बोध नहीं हुआ था। जीवन्मुक्त के व्यवहार में उसको बारम्बार शंका उत्पन्न हुआ करती थी कि जीवन्मुक्त मुक्तकहा जाता है, मुक्त हुआ अर्थात् ब्रह्म हुआ, ब्रह्म असग है; जीवन्मुक्त भी असंग समझना चाहिये परन्तु उसका व्यवहार देखने में आता है। शास्त्र भी कहता है कि ज्ञानी और अज्ञानी का व्यवहार एक सा होता है। अज्ञानी का व्यवहार मन से होता है, ज्ञानी का व्यवहार मरे हुए मन से होता है, व्यवहार का हेतु मन है, जब मन मर

गया तो व्यवहार कैसे हो ? इस प्रकार की शंका राजा संत से किया करता था। संत उसे अनेक प्रकार समझाते थे परन्तु राजा पूर्ण अधिकारी न होने से कैसे समझता कि ज्ञानी का अंतःकरण किस प्रकार का होता है। एक बार जब संत आये तब राजा ने कहा महाराज, आप तो जीवन्मुक्त हैं ! आपको अब विधि निषेध से क्या प्रयोजन है ? आप के लिये तो जैसा कुछ हो सभी ठीक है। संत ने कहा हां, ऐसा ही है। राजा ने कहा, तब जंगलों में क्यों भटकते फिरते हो ? भटकने से तो यही प्रतीत होता है कि आप मे किसी प्रकार की कामनाएं शेष हैं। संत ने कहा यह बात नहीं है, जिस समय स्वाभाविक चित्त वृत्ति जहां प्रेरित होती है वहां मैं जाता हूँ और शरीर निर्वाह के सब काम यथा विधि करता हूँ परन्तु किसी कार्य से मेरा आंतरिक भाव से सम्बन्ध नहीं है। राजा ने कहा, जब बाहर कोई काम होता है तब उस काम का संकल्प प्रथम आंतर मे से उठता है फिर बाहर काम होता है। आप कहते हो कि मेरा आंतरिक भाव नहीं है, मैं किस प्रकार मानूं ? संत ने कहा, तू अभी मान नहीं सकता है परन्तु है ऐसा ही, जैसा मैंने कहा है। राजा ने कहा, अब आप इधर उधर मत विचरिये, यहां मेरे पास निवास कीजिये। "यह अभी समझने के योग्य नहीं है फिर किसी समय पर इसको समझाने का यत्न किया जायगा" ऐसा विचार कर संत ठहर गये। राजा के मन में यह बात समाई थी कि जितना संत जानते हैं उतना ही मैं भी जानता हूं, संत मुझ से विशेष कुछ नहीं जानते। एक दिन उसने कहा, आप संत बने हुए हैं, आप में और मुझ में

क्या अन्तर है ? बताइये ? संत ने कहा "अन्तर है ।" राजा ने कहा "क्या अन्तर है ?" संत ने कहा "तू राजा, मैं संत, यहीं अन्तर है !" राजा चुप होगया और इस प्रकार यत्न करने लगा कि संत का मेरे भोग के समान ही भोग हो। जो भोजन राजा आप करता था वह ही संत को कराने लगा। जैसे दास दासी राजा की सेवा मे रहते थे वैसे ही संत की सेवा मे रहने लगे। जैसे महल में राजा आप रहता था वैसा ही महल महात्मा के रहने को दिया। राजा ने फिर एक दिन संत से कहा, बताइये, आप में और मुझ में क्या अन्तर है ? संत ने कहा, तू गृहस्थी है, मैं त्यागी हूं। राजा चुप होगया और इसके पश्चात् उसने एक उच्च कुल की कन्या को उनकी सेवा में नियुक्त कर दिया और कुछ दिन पीछे फिर संत से पूछा, बताइये आप में और मुझ में क्या अन्तर है ? संत ने कहा, तू राजा है, मैं अभ्यागत हूँ। राजा चुप होगया और अपनी और संत की समानता करने के लिये उसने अपने राज के दो भाग करके एक भाग का राजा सन्त को बना कर फिर एक दिन संत से कहा; बताइये, आप में और मुझ मे क्या अन्तर है ? सन्त ने विचार करते हुए की समान आकृति बनाकर कहा "हां ! देखने के लिये तुझ में और मुझ मे बाहर से कुछ अन्तर नहीं है, समानता है, जिस बात का तुझमें और मुझ में अन्तर है वह बात मैं तुझे सायंकाल को बताऊंगा।" यह सुन कर राजा प्रसन्न हुआ और अब क्या अन्तर बतावेंगे, इसके जानने के लिये उत्सुक रहा। सायंकालके चार बजे सन्त ने राजा

के साथ फिटन में बैठ कर हवा खाने का विचार किया। राजा और संत दोनों गाड़ी में बैठ कर घूमने को चले। आस पास के बगीचों की तरफ घूमते हुए राजस्थान में आने के लिए मुख्य बाजार में थोड़ी दूर पहुंचे तब सन्त ने कोचवान से गाड़ी ठहराने को कहा। गाड़ी खड़ी हो गई। राजा को गाड़ी मे बैठा हुआ छोड़ संत नीचे उतर गये और जितने बहुमूल्य वस्त्र पहिने हुए थे उनको एक एक कर के उतारते हुए और मार्ग वालों को लुटाते हुए नग्न लंगोटी मात्र पहने रह गये। राजा आश्चर्य पूर्वक देखता रहा। इतने में सन्त ने पास की एक हलवाई की दुकान में घुस कर उसकी भट्टी की राख लेकर सब शरीर में लगा ली और राजा की ओर देख कर कहा "राजा, आ जा, हम और तू दोनों बराबर हो जांयगे, तू भी ऐसा ही कर ले तो तुझमें और मुझ में कुछ अन्तर नही रहेगा।" राजा यह सुन कर चोंक पड़ा ! भला, ऐसा उससे कब हो सकता था, उसमें तो राज्याभिमान भरा हुआ था, सब प्रजा के सामने राजा साधु का वेष कैसे धारण करे ? शिर नीचा कर के राजा बोला, आप ही सन्त महाराज हैं, मैं तुच्छ जीव हूं। आप की समानता मैं कैसे कर सक्ता हूँ ? मैं जो आप से बारंबार पूछता था वह मेरा अज्ञान ही था। आप के आजके उपदेश से मेरी समझ मे आ गया कि जीवन्मुक्त पुरुष व्यवहार में रहते हुए भी आंतरिक भाव किस प्रकार रखते हैं। इसके पश्चात् राजा ने गाड़ी में बैठने को सन्त से बहुत प्रकार कहा परन्तु वे गाड़ी में न बैठे और जंगल की तरफ चल दिये। राजा दुखी होता हुआ अपने महल को लौट आया।

ऊपर के दृष्टांत से विदित हुआ होगा कि जीवन्मुक्त का व्यवहार असंगता से होता है। जिसमें संग की गन्ध भी हो तो वह जीवन्मुक्त नहीं है। जीवन्मुक्त है या नहीं यह समझने का काम सामान्य पुरुषों का नहीं है। पूर्व मे जीवन्मुक्त एक अज्ञानी जीव था। पूर्व जन्मों के शुभ संस्कार वश प्राप्त हुए तीव्र पुरुषार्थ के बल से वह जीवन्मुक्त होता है। जब जीवन्मुक्त होने के पश्चात् असंग व्यवहार हो सक्ता है, तब ईश्वर जो नित्य मुक्त है असंग रह कर सृष्टि का कर्ता बने तो इसमें क्या आश्चर्य है? वह तो सर्व शक्तिमान् सर्वज्ञ ईश्वर है। जिसको सामान्य मनुष्य जड़ कहते हैं ऐसी पृथ्वी असंग रहकर काम करती है। अनेक प्रकार के वृक्ष, अन्न, लता और खनिज पदार्थों को पृथ्वी उत्पन्न करती है और उत्पन्न करती हुई भी असंग रहती है। जिस प्रकार पृथ्वी, जिसमें जो गुण है उसी गुण की वृद्धि करती है, अपनी तरफ से किसी में भी किंचित् फरक नहीं करती, केले में मिठास और नीम में कड़वास अपनी तरफ से नहीं देती इसी प्रकार ईश्वर भी असंग रह कर जिस जीव का जैसा कर्म होता है उस जीव को उस कर्म का फल भोगने के निमित्त सृष्टि करता है।

अब तेरा यह प्रश्न है कि एक ही सब व्यवहार का हेतु है तो सब एक समान क्यों नहीं होते, इसका उत्तर सुनः—हेतु दो प्रकार के होते हैं सामान्य और विशेष। परब्रह्म सबका सामान्य हेतु है, जीवों का कर्म विशेष हेतु है और वही भिन्नताका हेतु है इसलिये परब्रह्म सब का प्रकाशक होते हुए असंग है और भिन्नता जीवों

के पृथक् २ कर्मों की है। जिस प्रकार एक ही सूर्य संसार के सब व्यवहार का हेतु है। दिन में तो सूर्य प्रत्यक्ष ही है, रात्रि में वक्र रूप से उसका प्रकाश न हो तो संसार का व्यवहार न चले इतना ही नहीं परन्तु जीवत्व भी न रहे। इस प्रकार सूर्य सबका प्रेरक-प्रकाशक होते हुए भी प्रत्येक मनुष्य अपने २ अंतःकरण के अनुसार पृथक् २ चेष्टा करता है। चोर को चोरी करने में सूर्य का वही प्रकाश वस्तु दिखलाता है और धर्म का काम करने वाले का वही प्रकाश सहायक है। इसी प्रकार सब के प्रकाश का हेतु एक ही होने पर भी प्रत्येककी चेष्टा भिन्न २ होसक्ती है। भिन्नता अंतःकरण की है इस कारण समानता नहीं हो सक्ती। माया अवस्तु होते हुए भी विचित्र सत्ता वाली है, सब भेद उसी का किया हुआ है। आज मेरा विचार टहलने जाने का है। क्या तू भी मेरे साथ चलेगा ? मुमुक्षुः—मैं आपके साथ अवश्य चलूँगा, आप तो कभी टहलने कहीं जाते नहीं हैं, आज क्या कारण है ? सन्तः—सब का स्वभाव सदा एक ही प्रकार का नहीं रहता, आखिर शरीर ही तो है। थोड़ी देर पीछे सन्त और मुमुक्षु टहलने के लिये चल दिये। आगे आगे सन्त पीछे २ मुमुक्षु दोनों शहर की शोभा देखते जाते थे। "यह किस का मकान है ? इस रास्ते का क्या नाम है।" इत्यादि पूछते हुए संत मुमुक्षु के साथ शहर से बाहर निकल गये। चलने में श्रम होने से कुछ २ पसीना आ गया था इतने में एक आम्र का वृक्ष दिखाई दिया, वहां दोनों ठहर गये। आम्र की शीतल सघन छाया में ठहरने और

वायु की झपट लगने से उनको आनन्द प्रतीत हुआ। दोनों वहां बैठ गये। सन्तः—इस वृक्ष का क्या नाम है? मुमुक्षुः—आम्र का वृक्ष है। सन्तः—तू ने कैसे जाना? मुमुक्षुः—उसमें जानना ही क्या है? सब जानते हैं कि आम्र है। संतः—यह वृक्ष किस प्रकार हुआ? मुमुक्षुः—साम्राट जब राज्यारूढ़ हुआ तब उसकी यादगारी में यह वृक्ष लगाया गया था। संतः—क्या यह वृक्ष दूसरे स्थान से लाकर इस स्थान पर गाड़ दिया गया था? मुमुक्षुः—इतना भारी वृक्ष उठ कर कैसे आ सक्ता था? आम्र की गुठली बोई जाती है। सन्तः—गुठली तो बहुत छोटी होती है, इतना बड़ा पेड़ कैसे हो गया? मुमुक्षुः—गुठली से उत्पन्न हो, समय पा कर बड़ा हो गया। संत.—सब शाखायें और पत्ते एक ही गुठली में से हुए हैं? मुमुक्षुः—सब एक ही में से हुए हैं। सन्तः—बड़े आश्चर्य की बात है। तू कहता है कि एकही गुठली में से सब हुए हैं। मुमुक्षुः—महाराज, ऐसा ही है। सन्तः—उसमें तीन डाली हैं पहली नीची है, बीच की ऊपर गई है, तीसरी कुछ ऊपर जाकर झुक गई है, कई पत्ते पीले हैं, कई मोटे और हरे हैं, कई छोटे और हरे हैं, कई पत्तों की कोंपल हैं, कहीं कहीं पुष्प लग रहे हैं, कई छोटे २ फल हैं, कुछ बड़े भी हैं, ये सब अलग २ एक से कैसे हो गये? सबकी गुठलियां भिन्न होंगी, अथवा छोटी पत्तियों और शाखाओं को जल और वायु न्यून और भिन्न २ मिलता होगा। मुमुक्षुः—महाराज, ऐसा नहीं है, केवल जड़ में जल दिया जाता है, उसमें से रस

ऊपर को जाता है, वही एक रस अनेक प्रकार का हो जाता हैं। सन्तः—एक रस मे से "सब वस्तु एक समान होनी चाहिये, तेरा प्रश्न यह ही था कि सब का हेतु एक होते हुए सब समान क्यों नहीं ?" मुमुक्षु—अब मेरी समझ में आया कि ऐसा भी होता है परन्तु इसका कारण क्या है यह अभी समझ में नही आया। सन्तः—वह भी समझा दूंगा।

अद्भुत प्रकार से उपदेश देने से मुमुक्षु आश्चर्य करने लगा और यह बात भी उसकी समझ में आई कि महाराज टहलने नहीं आये थे। मुझे उपदेश देने के लिये आये थे। सन्त उसकी मनोकल्पना को समझ गये थे उन्होंने शान्ति तोड़कर सामने इशारा करके कहा सामने बहुत ऊंचा सा क्या है, जिसमे से धुआं निकलता है ? मुमुक्षुः—कपड़े बुनने की मिल है। सन्तः—मिल क्या ? मुमुक्षुः—जिसमें कपड़ा बुनने का सब काम यन्त्र से होता है, उसको मिल कहते हैं। संतः—मिल कैसी होगी ? मुमुक्षुः—क्या आपने कभी मिल नहीं देखी है ? सन्तः—नहीं। मुमुक्षुः—देखना हो तो चलिये उसका मैनेजर मेरी जान पहचान वाला है, वह आपको सब दिखा देगा। सन्त ने जाना स्वीकार कर लिया और दोनो मिल की ओर चले। थोड़ी देर में मिल का फाटक आ गया, उसमें घुसकर दोनो मैनेजर के आफिस में पहुँचे।

मैनेजर बहुत सभ्य पुरुष था उसने संत की ख्याति और नाम सुना था परन्तु व्यवसाय वश उनके दर्शन नहीं कर सका था।

मुमुक्षु से मैनेजर को मालूम हुआ कि यह वह ही महात्मा हैं जिनके दर्शन करने को मुमुक्षु ने उससे कहा था। उसने अपना अहोभाग्य समझा और दण्डवत् प्रणाम करके अपने पास कुरसी पर बैठाया। थोड़ी देर में अपने आफिस के कागज आदिक ठीक कर मैनेजर संत और मुमुक्षु को मिल दिखाने ले गया। प्रथम उन्होंने राक्षस के समान बड़ा काला अंजन बहुत जोर से लाट को घुमाते देखा। संत ने कहा, यह वस्तु महान शक्ति वाली मालूम होती है, जो लट्ठा सैकड़ों मनुष्यो से भी नहीं उठ सक्ता उसको घुमा रही है। इसके पश्चात् जहां रुई धुनी जाती थी वहां गये। एक तरफ रुई डाली जाती थी और दूसरी तरफ साफ हो कर निकलती थी। उसे देखकर संत ने आश्चर्ययुक्त हो कहा वाह! खूब! उसमे जीव है नहीं और काम कितनी सफाई से करता है। वहां से आगे चलकर धुनी हुई रुई से बड़ी चादर के समान चौड़ा पट होता देखा। उसके पश्चात् उसका बड़ा भारी रस्सा बनता हुआ देखा। फिर उसे बारीक होता हुआ देखा, इस प्रकार चार पाच स्थानों पर वारीक होकर ऐसे बारीक पांच २ रस्सों को एक होता हुआ देखा, उसमें से और बारीक होते हुए देखे, वारीक होते २ अन्त में जाकर बिलकुल सूत होगये। उसके ऊपर उन्होंने बल चढ़ता देखा, फिर बोबिन (Bobbin) लिपट जाता देखा, दूसरे स्थान पर कपड़ा बुनता देखा। कहीं मोटा, कहीं महीन, कहीं बेल बूटे वाला बुना जाता था। इस प्रकार उन्होंने बहुत प्रकार का कपड़ा बुनता हुआ देखा। संत ने मुमुक्षु से कहा सच-

मुच, मिल देखने योग्य है। जो इंजन हमने देखा है ऐसे इंजन बहुत होंगे। एक एक काम के लिये एक २ इंजन काम करता होगा। मुमुक्षु:—नहीं! महाराज! एकही इंजन सब यंत्रों को घुमाता है, सब में अलग २ इंजन लगे नही हैं। संत:—यह बात असम्भवित है। सब स्थानों पर काम अलग अलग होता है, अलग २ काम के लिये इंजन भी अलग अलग चाहिये। मुमुक्षु:—यह बात नहीं है। एक इंजन ताक़त करता है और सब यंत्रों में वही ताकत चमड़े के पट्टे द्वारा जाती है। इस प्रकार लाट से चमड़े के पट्टे से जिन यंत्रो मे जिस प्रकार ताकत आती थी वह सब मुमुक्षु ने समझाया। संत:—क्या एक ही ताकत सब यंत्रों में अलग अलग काम करती है? मुमुक्षु:—हां! संत:—तब काम एक समान होना चाहिये। मुमुक्षु.—पुरजे अलग अलग लगे हुए हैं इसलिये एक ही ताकत अलग २ पुरजों में जाकर अलग अलग काम करती है। आपने मिल प्रथम ही देखा है इससे समझने में कठिनाई पड़ती है। संत:—हैं! एक ही हेतु से अलग २ काम होसक्ता है। प्रथम उसका कारण तू नहीं समझा, अब तू कहता है कि "पुरजे अलग होने से एक ही ताकत अलग २ काम करती है।" मुमुक्षु आश्चर्य करने लगा, जिस प्रश्न का उत्तर मैं महाराज से पूछता था उसका उत्तर उन्होंने मेरे मुख से ही कहला दिया। इस प्रकार मुमुक्षु ने अत्यन्त आनन्दयुक्त होकर संत को प्रणाम किया। संत:—तू अभी कहता था कि "आपने मिल प्रथम नही देखा है इसलिये समझने मे थोड़ी कठिनाई पड़ती है।" इसी प्रकार ब्रह्माण्ड रूपी एक महान मिल चल रहा है, जब तुझे उस

मिल की बात समझाते हैं तब तुझे समझने में कठिनाई पड़ती है। पूर्व कर्मानुसार सब मनुष्यों का अन्तःकरण रूप पुरजा भिन्न भिन्न प्रकार का बना है उस पुरजे से अलग २ काम होते हुए भी सत्ता स्फूर्ति देने वाला चैतन्य एक ही है। मैं समझता हूँ तेरे प्रश्न का यथार्थ उत्तर अब तेरी समझ मे आगया होगा। मैनेजर और मुमुक्षु दोनो संतोप को प्राप्त हुए। थोड़ी देर में संत और मुमुक्षु मिल में से घर लौट गये। वहां जाकर संत ने इस प्रश्न के प्रत्तर का सार मुमुक्षु से इस प्रकार कहा:—

संतः—तेरे प्रश्न के उत्तर का सार यह है:—मुमुक्षुओ को समझ में शीघ्र आने के लिये वेदान्त आचार्यों ने ब्रह्म को असंग समझाया है और सृष्टि कर्ता ईश्वर को कहा है। ईश्वर का ब्रह्म से अभेद है। भेद दृष्टि वाले के लिये असंग होते हुए उपाधि सहित को ईश्वर कहते हैं। ऐसा ईश्वर असंग होकर सृष्टि का कर्ता है। जीवों के पूर्व कर्म ही सृष्टि करने में हेतु हैं। जैसे जीवन्मुक्त असंग रह कर व्यवहार करता है वैसे ही ईश्वर सृष्टि का कर्ता है। मिल के दृष्टान्त से समझाया गया कि पुरजे रूप अन्तःकरण भिन्न भिन्न होने से सब का व्यवहार एक समान नहीं होता।

८ पुनर्जन्म ।

प्रश्नः—पुनर्जन्म का शास्त्रवाक्य के सिवाय क्या सुबूत है ? पुनर्जन्म होता है तो याद क्यों नहीं रहती ?

उत्तरः—तेरा प्रश्न योग्य होते हुए भी शास्त्र की अश्रद्धा सहित है। अश्रद्धा वालों को शास्त्र ने उपदेश करने को मना की है। इस प्रकार की अश्रद्धा आर्य कहलाने वालों को शोभा नहीं देती और मुमुक्षुओं को विष के समान है। बुद्धि के सहारे इन्द्रियों से, प्रत्यक्षादि प्रमाण से सिद्ध होने को प्रमाण मानना और अपौरुपेय वेदवाक्य को प्रमाण न मानना और उनके ऊपर आशंका करना तुच्छ बुद्धि वालों का काम है। शास्त्र वाक्य को आप्तवाक्य कहते हैं। आप्तवाक्य सब प्रमाणों से बलिष्ट हैं, क्या उनका तू व्यवहार मे उपयोग नहीं करता ? यदि कोई अपने पिता को ऐसा कहे कि मेरी माता के वाक्य सिवाय, तुम मेरे पिता हो इसका क्या सबूत है तो यह उसका पूछना एक सद्व्यवहार को लाञ्छन रूप ही होगा इसी प्रकार यह तेरा प्रश्न है। स्थूल बुद्धिगम्य बातों के सिवाय और बातों का स्थूल बुद्धि से प्रत्यक्ष नहीं होता। यदि घुघु को सूर्य मे प्रकाश न दीखे तो उसमें यह घुघुपन ही दोष भागी है। पुनर्जन्म न मानने वाले विधर्मियों के समागम से शास्त्र की अश्रद्धा सहित तू प्रश्न करता है, उन लोगों के सह-वास से शंकाशील हुआ तू श्रवण कर:—

प्रथम तू यह बता कि जैसे तू शास्त्र को शंका से देखता है वैसे ही मेरे वाक्यों पर भी तुझे श्रद्धा है या नहीं ? मेरे प्रत्यक्ष

किये हुए अनुभव पर जो तुझे पूर्ण अश्रद्धा हो तो मैं तेरा समाधान कर ही नहीं सक्ता। यदि थोड़ी आशंका हो तो अनेक प्रकार की युक्तियों से और कई प्रकार के प्रत्यक्ष अनुभव किये दृष्टान्तों से मैं तुझे समझा सक्ता हूं।

शिष्य:—महाराज, आप और आप के वाक्यों के ऊपर मुझे श्रद्धा है और इसी प्रकार शास्त्र के ऊपर भी कई अंश मे श्रद्धा है परन्तु आज कल के समय अनुसार भौतिकवाद में चित्त फँसने से और आप ने कहा ऐसे विधर्मियों के संस्कार से श्रद्धा डिगमिगा जाती है-उखड़ जाती है। मुझे विश्वास है कि आप के वचनों से मेरे चित्त का समाधान हो जायगा। जिस को थोड़ी भी सारासार को समझने की बुद्धि है यदि वह एकाग्रता से सुने तो आप के समझाने की युक्तियां निष्फल नहीं होतीं।

संत:—"ब्रह्मतत्त्व में तो जगत् है ही नहीं, वहां पूर्व जन्म कहना नहीं बन सक्ता। पुनर्जन्म संसार में है, जहां तक संसार का भाव अज्ञान है वहां तक पुनर्जन्म की निवृत्ति नहीं होती। एक शरीर छुटकर दूसरे शरीर की प्राप्ति होना पुनर्जन्म है। जितने प्राणी हैं वे सब प्रथम थे, पश्चात् बीज रूप में रहकर, स्थूलता को छोड़कर, स्थूल दृष्टि से नाश को प्राप्त होकर सूक्ष्म से स्थूल होते हैं, वही पुनर्जन्म है। शरीर तीन हैं और एक के भीतर एक टिका हुआ है। जब तक मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती तब तक कारण और सूक्ष्म शरीरों का नाश नहीं होता, केवल स्थूल शरीर का नाश होता रहता है, सूक्ष्म शरीर कारण सहित बना रहता

है, वह स्थूलता को प्राप्त होता है, उसीको पुनर्जन्म कहते हैं। स्थूल ही जन्मता और मरता है। सकुचना और फैल जाना ही मरण और जन्म है। यदि कोई वस्तु प्रथम न हो तो उसका होना असम्भवित है। स्थूल पदार्थों में से भी किसी का नाश नहीं होता, रूपान्तर हुआ करता है। इस प्रकार प्राणियों का शरीरान्तर, रूपान्तर होना पुनर्जन्म है। जब मनुष्य रात्रि को सो जाता है, तब उसका बाहर का फैलावा और प्रवृत्ति बुद्धि एकत्र होकर दब जाती है—सकुच जाती है फिर प्रातःकाल वही संकुचित हुई बुद्धि फैल जाती है। इसी प्रकार प्रारब्ध के भोग के लिये स्थूल शरीर का बनना और प्रारब्ध कर्म की समाप्ति मे स्थूल शरीर का न रहना जन्म मरण है।

"बार बार जन्म नहीं होता, ईश्वर ने एक समय सब जीवों को पैदा किया है, और अन्त में सबका एक साथ न्याय किया जायगा" ऐसा मानने में बड़ी आपत्ति आती है। जब पूर्व जन्म था नहीं और सबको एक साथ पैदा किया तो सब एक समान होने चाहिये। धन, सुख, दुःख, आयु और बाल बच्चे सभी समान होने चाहिये। परन्तु ऐसा है नहीं। जो ऐसा कहा जाय कि "ईश्वर ने अपनी मरज़ी के अनुसार सुखी, दुःखी, राजा, रंक बना डाले" तब तो वह ईश्वर क्या हुआ बिना अपराध दंड देने वाला कोई अन्यायी हुआ। न्यायी ईश्वर अपनी तरफ से किसी को सुख दुःख नही देता और ऐसा करे तो से उसमें विषमता का दोष आता है। एक ही समान पढ़े लिखे एक प्रकार का धंधा करने वाले एक दूसरे से विरुद्ध फल क्यों प्राप्त करते हैं? इसीसे

सिद्ध होता है कि पूर्व के किये हुए उनके कर्म का सम्बन्ध फल प्राप्ति में है। इन सब बातों से पूर्व जन्म सिद्ध होता है।

ईश्वर की सत्ता में ही प्राणी अपने कर्मानुसार सुख दुःख भोगते हैं और कर्मानुसार उत्पत्ति नाश हुआ करता है। कर्म ही पुनर्जन्म के कारण हैं।

भिन्न भिन्न आचार, विचार, देश, काल, बुद्धि, माता, पिता, आदिक को रोज अनुभव करते हुए भिन्न २ प्रारब्ध अवश्य ही मानना पड़ेगा और जब प्रारब्ध कर्म माने तो पूर्व के किये हुए ही कर्म हुए इससे पूर्व जन्म सिद्ध होता है। किसी किसी स्थान पर पूर्व जन्म की याद रखने वाले देखने में भी आते हैं। ऐसे कई मनुष्यों का अनुभव मैंने स्वयं किया है वह तुझे सुनाता हूँ।

बम्बई शहर जो आजकल भारत भरमें सब शहरों से अधिक समृद्धि वाला है, उसमें मैं एक बार एक गृहस्थ के यहां टिका हुआ था। वह गृहस्थ सीधा और कुटुम्ब वत्सल था, शक्ति अनुसार देवार्चन किया करता था। उसके दो पुत्र थे, छोटा पुत्र कोई तीन वर्ष का होगा और बड़ा स्कूल में पढ़ता था। उसकी स्लेट पेनसिल पड़ी रहती थी। एक दिन उसने अपनी स्लेट पर अंग्रेजी लिखी हुई देखी, जिसको देख कर उसने सब से पूछा कि यह किसने लिखा है, परन्तु पता न चला। दूसरे दिन एक चित्र कहीं से घरमे आगया, छोटा लड़का उसके साथ खेलने लगा।

सायंकाल को बड़े भाई ने देखा कि जिस चित्र से छोटा भाई खेल रहा था, उसी चित्र की यथार्थ नकल स्लेट के ऊपर पैनसिल से चित्रित थी। वह चित्र उसने सबको दिखलाया जिसको देखकर सब घर वाले आश्चर्य करने लगे कि यह चित्र बनाने वाला कौन है? किसी का यह ख्याल भी नहीं होता था कि छोटा लड़का उस चित्र को वना सक्ता है। जब छोटे लड़के से पूछा गया तो प्रथम उसने कुछ उत्तर न दिया जब उसे खाने का लालच दिया गया तब उसने कहा "हां? मैंने ही यह चित्र खींचा है।" बड़े लड़के ने पूछा कब खेंचा था, तब छोटे ने कहा जब कोई न था तब खेंचा था। बड़े ने पूछा कल अंग्रेजी लिखा हुआ था वह भी तूने ही लिखा होगा, छोटे लड़के ने कहा हां, बड़ेने कहा मैं कहूँ सो लिख। छोटे ने कहा, मैं पढ़ा नहीं हूं। बड़ेने कहा, तब लिखा कैसे? छोटा लड़का शरमा गया और विशेष छेड़ छाड़ करने से रोने लगा। तब सबने उसको समझा बुझाकर शांत किया। दूसरे दिन बड़ेने छोटे को एक चित्र दिया और कहा, स्लेट पर चित्र बना। छोटे ने कहा, तुम्हारे सामने नहीं वनाऊंगा। यह सुन कर सब एक कोठरी में चले गये। छोटे लड़के ने पांच मिनट में ही चित्र वना दिया। वह चित्र सामान्य नहीं था। किसी उस्ताद चित्रकार का वनाया हुआ हो इस प्रकार का था। कम्पास आदि कोई औजार उसके पास न था तो भी वहुत उत्तम चित्र वना था। वच्चे की उमर तीन वर्ष की थी। अभी उसके खेलने का समय था। वह मात्र नकल कर जानता था। मैंने सोचा, इतनी

छोटी उमर में कैसा उत्तम चित्र बनाया है। उसके माता पिता से पूछने से मालूम हुआ कि उन्हें चित्र बनाने का शौक नहीं था, वे चित्र बनाना नहीं जानते थे इससे सिद्ध होता है कि यह गुण उसको माता पिता से भी प्राप्त नहीं हुआ था। बड़ा लड़का अंग्रेजी के ऊंचे दर्जे में पढ़ता था। उसको भी चित्र बनाने का शौक न था इससे सिद्ध होता है कि वह पूर्व जन्म का चित्रकार था। किसी किसी मे बाल्यावस्था से ही विशेष शक्तियां प्रतीत होती है वे शक्तियों पूर्व जन्म के अभ्यास को दिखाती हैं।

इसी प्रकार सिंहलद्वीप के मुख्य शहर में मैने एक लड़का देखा जो पूर्व जन्म का बाजित्र बजाने वाला था। जिस शहर का मैं जिकर करता हूं उसका नाम कुलम्बो है। वह व्यापार का बड़ा भारी शहर है। टापूभर मे जो विदेशी माल जाता है सब वहां से जाता है। भरतखंड के कई व्यापारी लोग भी वहां व्यापार करते हैं और समय समय पर भारतवासी आपस में मिला भी करते हैं। एक दिन एक व्यापारी के वहां पांच सात मनुष्य एकत्र हुए थे। संयोग वश मेरा भी वहां जाना हुआ। मैंने एक पौने तीन वर्ष का बालक देखा। इस लड़के के बारे में मैं प्रथम सुन चुका था, पूछने से मालूम हुआ कि यह वही लड़का है। मैंने पूछा, मैंने सुना है कि यह लड़का हारमोनियम अच्छा बजाता है, क्या यह सच है? लड़के के बाप ने कहा, हां, सच है। सबकी सम्मति से हारमोनियम मिलाकर लड़के के पास रक्खा गया। एक आदमी गाने लगा और उस लड़के से

हारमोनियम बजाने को कहा गया तो वह हारमोनियम के ऊपर अंगुलियां रखकर चलाने लगा, एक मनुष्य धमनी को हिलाता रहा। मैं देखकर चकित हो गया! इस सुन्दर रीति से उसने हारमोनियम बजाया कि सब सुनने वाले प्रसन्न हो गये। गाने वाले ने उसकी परीक्षा के निमित्त बेस्वर गाया तो लड़का क्रोधित होने लगा और हाथो को हारमोनियम पर पटकने लगा। सबने शांत किया और गाना बजाना फिर आरम्भ हुआ, गाने वाले ने ताल की गलती की तो लड़का नेत्र निकाल कर देखने लगा और क्रोधित हो हाथ पटकने लगा। सब को मालूम हुआ कि लड़का स्वर और ताल दोनों जानता है। सब को आनन्द हुआ और मैंने लड़के के पिता से पूछा, क्या लड़के को आप ने हारमोनियम बजाना सिखाया है? उसने कहा, भला विचारिये, इतना छोटा लड़का किस प्रकार सीख सक्ता है? हमको गाने बजाने का शौक नहीं है! हम हारमोनियम बजाते भी नहीं हैं। मैंने कहा, लड़के की माता जानती होगी। उसने कहा, हममे से कोई भी बजाना नहीं जानता। एक दिन पड़ौस के मकान में हारमोनियम बजते देख लड़के ने वहां जाने की आतुरता दिखलाई, हम उसको वहां ले गये तो जिस प्रकार कोई ताल स्वर को समझने वाला सुनता हो इस प्रकार लड़का सुनता मालूम हुआ। तबसे पड़ोस वाले कभी २ लड़के को अपने यहा लेजाते हैं और लड़का हारमोनियम बजाता है। यह शक्ति उसमें स्वाभाविक (कुदरती) है। मैंने कहा, इससे तो यह निश्चय होता है कि यह लड़का पूर्व जन्म में गाने बजाने वाला था। सब लोगों

ने यही निश्चय किया। इस प्रकार के दृष्टांतों से पूर्व जन्म का पता लगता है।

एक बात आगरे शहर की है। बेलनगंज में एक साहूकार का लड़का है। जब तक उसकी दश वर्ष की उमर हुई तब तक वह अपने पिछले जन्म का हाल भली प्रकार जानता था। "मैं अमुक २ वैश्य था, मेरा घर अमुक मुहल्ले में था, मेरी स्त्री का नाम अमुक, पुत्रका नाम अमुक था," इत्यादि बहुत सी बाते बताता था! इतना ही नहीं परन्तु तलाश करने से वे सब बातें ठीक २ मिलीं। जिस समय उस लड़के की उमर कोई २२ वर्ष की होगी, उससे मेरी मुलाकात हुई थी। वह सब बातें कबूल करता था। उसका कहना यह था "लोगों ने पूर्वकी सब बातें भुलाने का प्रबल यत्न किया और अब मुझे वे बातें याद नहीं हैं।" याद न रहना यह स्वाभाविक है। बुद्धि नये जन्म के विशेष भाव वाली होती जाती है इस कारण भूल जाना संभवित है। यदि योग का विशेष अभ्यासी होता और पूर्वकी स्मृति रखने की दृढ़ वासना होती तो वह नहीं भूलता। इस प्रत्यक्ष दृष्टांत से पुनर्जन्म सिद्ध होता है।

मैंने अपने गुरु से एक आश्चर्य जनक वार्ता सुनी थी। गुरु महाराज जब तिब्बत मे विचर रहे थे तब उन्होंने इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव किया था। वहां पर बौद्ध साधु रहते हैं वे अपने को राजयोगी कहते हैं। बाल्यावस्था से ही वे श्वासोश्वास कम चलाने का अभ्यास करते हैं। श्वास कम चलाने के कारण

उनकी उमर वढ़ जाती है। सवा सौ, डेढ़ सौ और कोई कोई साधु दो सौ वर्ष की उमर तक के मिलते हैं। उनमें कोई कोई मरण समय जान जाते हैं। मरण समय आने वाला जानकर अपने पुस्तक आदि जो जो कीमती वस्तु समझते हैं उन सवको वे एकत्र करके किसी विश्वासपात्र के यहां रखवा देते हैं और साथ में एक पत्र भी लिखकर रख देते हैं। उसमें चीजों का वर्णन होता है, लिखने वाले की निशानी होती है और यह लिखा होता है कि १२ या १५ वर्ष पीछे जव मैं दूसरा जन्म लेकर तुम्हारे पास आऊं और सव पता ठीक ठीक वताऊं तव मेरा सामान मेरे स्वाधीन करना।

गुरु महाराज ने कहा कि एक समय में जव एक गृहस्थ के यहां टिका हुआ था तव एक वारह वर्ष का वौद्ध साधु वहां आया और गृहस्थ से अपने पूर्व जन्म का सव पता दे कर सौंपी हुई वस्तुओं को लेगया।

वे लोग जन्म लेकर उमर वढ़ाने का शौक रखते हैं। यह पुनर्जन्म का सवूत है। इस प्रकार अनेक दृष्टांत सुने जाते हैं।

आज कल पाश्चात्य विद्या की वृद्धि से मेस्मिरेजम के नाम को मनुष्य कम नहीं जानते होंगे। मेस्मिरेजम योग विद्या का किंचित् मात्र अंश है। मृतक आत्माओं के वुलाने की क्रिया उसमे होती है और वहुत प्रकार के गुप्त कार्य इसके द्वारा प्रकट किये जाते हैं। जो लोग पुनर्जन्म नहीं मानते थे उन लोगों से भी

उनकी उमर बढ़ जाती हैं। सवा सौ, डेढ़ सौ और कोई कोई साधु दो सौ वर्ष की उमर तक के मिलते हैं। उनमें कोई कोई मरण समय जान जाते हैं। मरण समय आने वाला जानकर अपने पुस्तक आदि जो जो कीमती वस्तु समझते हैं उन सबको वे एकत्र करके किसी विश्वासपात्र के यहां रखवा देते हैं और साथ में एक पत्र भी लिखकर रख देते हैं। उसमें चीजों का वर्णन होता है, लिखने वाले की निशानी होती है और यह लिखा होता है कि १२ या १५ वर्ष पीछे जब मैं दूसरा जन्म लेकर तुम्हारे पास आऊं और सब पता ठीक ठीक बताऊं तब मेरा सामान मेरे स्वाधीन करना।

गुरु महाराज ने कहा कि एक समय मैं जब एक गृहस्थ के यहां टिका हुआ था तब एक बारह वर्ष का बौद्ध साधु वहां आया और गृहस्थ से अपने पूर्व जन्म का सब पता दे कर सोंपी हुई वस्तुओं को लेगया।

वे लोग जन्म लेकर उमर बढ़ाने का शौक रखते हैं। यह पुनर्जन्म का सबूत है। इस प्रकार अनेक दृष्टांत सुने जाते हैं।

आज कल पाश्चात्य विद्या की वृद्धि से मेस्मिरेजम के नाम को मनुष्य कम नहीं जानते होंगे। मेस्मिरेजम योग विद्या का किंचित् मात्र अंश है। मृतक आत्माओं के बुलाने की क्रिया उसमें होती है और बहुत प्रकार के गुप्त कार्य इसके द्वारा प्रकट किये जाते हैं। जो लोग पुनर्जन्म नहीं मानते थे उन लोगों से भी

इस विद्या के द्वारा पुनर्जन्म मानना स्वीकार कराया गया, उसका एक दृष्टान्त सुनो।

एक साहूकार बहुत ही धनाढ्य था, जहाँ वह रहता था उस देश मे उसके समान कोई धनाढ्य न था। वह व्यापार मे बड़ा चतुर था और अर्थ शास्त्र का ज्ञाता था। बहुत से नौकर, चाकर, मुनीम गुमाश्ते होते हुए भी सब व्यापार की लगाम वह अपने ही हाथ मे रखता था। उसके लड़के बड़े, बड़े थे और सब व्यवहार के काम देखने योग्य थे तो भी वह एक विश्वासनीय मुनीम के समान एक एक स्थान का काम उन लड़कों से कराया करता था। वे भी अपना २ काम योग्य रीति से किया करते थे परन्तु साहूकार का पूरा भेद कोई नहीं जानता था। उसके बहुत से मकान, जमीन, जागीर, और बगीचे थे सबकी योग्य व्यवस्था थी। साहूकार के पास कितना धन है यह कोई नहीं जानता था। एक दिन गर्मी के दिनों में साहूकार अपने तिमंजले कमरे में सो रहा था। गर्मी बहुत होने से उसे नींद न आई तब वह कमरे मे से निकल कर बाहर छत पर जाकर सो रहा। छत सपाट थी ठंडी हवा लगने से उसको नींद आगई। जहा वह नित्य सोया करता था वहां एक पेशाब करने का स्थान बना हुआ था और वह रात्रि में एक बार पेशाब करने उठा करता था, पेशाब करके सोजाया करता था। आज वह छत पर सोया था, कुछ तो अंधेरा हो रहा था और कुछ नींद थी, उसको छत पर सोने की याद भूल गई। नित्य नियम के अनुसार जब वह पेशाब करने चला

तो छत से उसने ज्यों ही पैर आगे धरा त्यों ही वह नीचे गिर गया. गिरते ही बेहोश होगया और आध घंटे मे शरीर छूटगया। जब सब मनुष्य जागे तो क्या देखा कि साहूकार दवा दारू मल्हम पट्टी कराने के प्रथम ही इस दुनियां से चल दिया। उसकी उत्तर क्रिया विधिवत् की गई और बड़े लड़के ने व्यापार की सब व्यवस्था संभाली। धन का पता न था। संचित धन कहां रक्खा है, यह कोई नहीं जानता था। उसके जानने के लिये अनेक क्रियायें की गईं:—ज्योतिषी बुलाये गये, मंत्र तंत्र की क्रियायें की गईं, परन्तु किसी से धन का पता न लगा। एक मनुष्य ने आकर कहा "यदि मेस्मिरेजम की रीति से मृतक आत्मा को बुलाया जाय और उससे पूछा जाय तो धन का पूरा पता मिल जाय।" यह सुनकर आत्मा को बुलाने वाले मनुष्य की खोज होने लगी। एक विदेशी जो उस देश में कुछ दिनों से आया हुआ था, इस विद्या में कुशल था। वह बुलाया गया और शान्त स्थान पर रात्रि के समय उसने अपने साथियों सहित अपनी क्रिया का प्रयोग आरम्भ किया। प्रयोग करने वाले कई आदमी थे। वह तीन साहूकार के लड़कों को साथ लेकर प्रयोग में बैठा, एक लम्बी गोलाकृत टेबिल (मेज) बीच में रक्खी, उसके गोलाकार में कई कुर्सियां रक्खी गईं, सब कुर्सी पर बैठ गये, सबने अपने दोनों हाथ टेबिल पर इस प्रकार रक्खे कि एक का बांयां हाथ दूसरे के दहने हाथ के ऊपर था, इस प्रकार पूरा चक्र हुआ। पास ही एक घी की बत्ती जलाई गई, गुलाब जल सब पर छिड़का गया, सुगन्धित धूप जलाया

गया। सब ने एकाग्र चित्त हो मधुर स्वर से ईश्वर भजन गाया और फिर सब एक भावको प्राप्त होगये। जैसे बिजली की बैटरी में से एक दूसरे के संयुक्त होने से बिजली उत्पन्न होती है वैसे ही सब के आत्म भाव में रहने वाली शक्ति एकत्र हुई। सब ने अपना चित्त एकाग्र करके यह भाव किया कि अमुक साहूकार की आत्मा आकर्षित हो चक्र में उतर आवे। पांच चार मिनट पश्चात् साहूकार का बड़ा लड़का बेहोश होता हुआ मालूम दिया। चक्र संचालक ने जान लिया कि आत्मा उतर आई और पूछा "कौन हो?" आई हुई आत्मा ने कहा "साहूकार" संचालक ने कहा "आपके अकाल मृत्यु से सब कुटुम्ब को बड़ा शोक है।" आत्मा:- "क्या किया जाय? भावी अवश्य होता है।" संचालक:-"आपको कुछ कहना हो तो कहिये, इसी कारण आपको बुलाया है।" आत्मा:—"मैं एकाएक मर गया। अपने धन की बातचीत पुत्रों से न कर सका। मेरा धन इस प्रकार रक्खा है कि बिना बताये उन्हें नहीं मिल सक्ता।" सचालक "कृपा करके बताइये!" आत्मा:-"चारों दिशाओं में मेरे चार बगीचे हैं, उन चारों बगीचों मे छुपे हुए तहखाने हैं, बगीचो में कमरे हैं, कमरों के ऊपर जाने की जो सीढ़ी हैं, उनके नीचे एक पत्थर है। प्रथम उत्तर वाले बगीचे के कमरे के ऊपर चढ़ने की सीढ़ी का पत्थर उखाड़ना, उसके नीचे तहखाना है, उस में चाबियां मिलेंगी, उनको लेकर दूसरे कमरे का तहखाना खोलना, उसमें अनेक प्रकार का धन है, धनके नीचे एक चाबी रक्खी है, उस चाबी को लेकर दक्षिण के बगीचे के कमरे की सीढ़ी का पत्थर खोदकर वहां के तहखाने

में जाना, वहां की कोठरी खोलकर धन लेना, धनके नीचे एक चाबी मिलेगी उसको लेकर पूर्व वाले बगीचे के कमरे की सीढ़ी के पत्थर को निकालना, तहखाने में जाकर उस चाबी से कोठरी खोलकर धन ले लेना, वहां से फिर पश्चिम वाले बगीचे मे जाकर इसी प्रकार धन को निकाल लेना, धनका सदुपयोग करना, मैंने महान् परिश्रम से धन कमाया है, धन सात करोड़ रुपये से कम न होगा।" संचालकः—उस धन मे से आप के नाम पर कुछ खर्च कराना हो तो कहिये।" आत्माः-" वह धन शुभ कार्य में लगता रहे, यदि वह धन मेरे कुटुम्ब के उपयोग में आवेगा तो मैं प्रसन्न हूं।" इस प्रकार यथा योग्य कार्य हो जाने पर संचालक ने आत्मा के विसर्जन की भावना सब के साथ मिलकर की। आत्मा चली गई और बड़े लड़के को सब बात भुलवाकर चेतन कर दिया गया।

जिस प्रकार साहूकार की आत्मा ने कहा था उसी प्रकार करने से उसका सब धन लड़को के हाथ आया। इस प्रकार के अनेक चमत्कार संसार में प्रगट हो रहे हैं, वे सच्चे हैं। यदि संचालक और पात्र शुद्ध भाव के पूर्ण प्रभाव में हो तो ऐसे दृष्टांत मरने के पीछे की सूक्ष्मता को सिद्ध करते हैं। सूक्ष्म में से स्थूल जन्म होता है। इस युक्ति से पूर्व स्थूल जन्म का भी पता लग सक्ता है? पाश्चात्य विद्वानों को इस प्रकार के चमत्कारों ने मुग्ध किया है और वे पूर्व जन्म को मानने लगे हैं।

पुनर्जन्म होता है तो याद क्यों नहीं रहती इसका उत्तर सुनः- प्रथम तो स्मृति क्या वस्तु है यह जानना चाहिये। लौकिक स्मृति

लौकिक बुद्धि का धर्म है। जब बुद्धि स्थूल शरीर के सम्बंध वाली होती है और इन्द्रियों तथा शरीरादिक से पुष्ट होती है तब याद ठीक रहती है। जो बुद्धि बड़े मनुष्य मे होती है वह ही बालक में होती है परन्तु बालक की बुद्धि मनुष्य की बुद्धि के समान कार्य नहीं करती। बालक का स्थूल शरीर पूर्ण रूप से खिला नही होता और सम्बन्ध रखने वाली बुद्धि भी पुष्ट नहीं होती इसलिये बालक की बुद्धि बारीक बुद्धि के विषय की स्मृति वाली नही होती। बूढ़े मनुष्य का भी यही हाल है। उसकी बुद्धि में भूल बहुत हुआ करती है, याद कम रहती है क्योंकि शरीर शिथिल हो जाता है, हड्डियां कमजोर हो जाती हैं, खुराक पूर्ण रीति से हजम नहीं होती। इस कारण बूढ़े मनुष्य की स्मृति बारम्बार भंग होती है। यदि कोई मनुष्य कई दिन तक आहार न खाय तो उसकी स्मृति का नाश हो जाता है। जब शरीर, इन्द्रियां और बुद्धि तीनों अन्न से विकसित होती हैं तब स्मृति होती है। अन्न से शरीर और इन्द्रियो के विकसितपने के साथ बुद्धि का विकसितपना है। जब कोई भारी चोट शरीर मे लगती है तब बुद्धि मूर्छित हो जाती है। मन में भारी चोट लगने से बुद्धि का वही हाल होता है। धन, धाम और शरीर छोड़ कर दुनियां से जाने की चोट कोई सामान्य चोट नही है, इतनी चोट मे बुद्धि अपनी स्मृति किस प्रकार रख शके ? मरने के समय स्थूल सम्बन्ध की बुद्धि स्थूल सम्बन्ध न रहने से अत्यन्त सूक्ष्म हो जाती है और सूक्ष्म भाव में जिन कर्मों का प्रारब्ध होकर भोग होने वाला है क्रम क्रम से उसके आकार की हो जाती है। बुद्धि रूपान्तर

वाली है इसलिये सब को पूर्व जन्म की याद रहना नहीं बन सका। पूर्व जन्म की ही नहीं छोटपन से बड़े होने तक का हाल भी तो याद नहीं रहता। कोई कोई तीव्र भाव वाली बात ही मात्र याद रहती है तो जिसके बीच के अंतर का कोई ठीक नहीं हो, सब संयोग बदल जांय तब पूर्व जन्म की याद किस प्रकार रह सक्ती है? कई कई बातें ऐसी होती हैं जो सुबह की शाम को याद नहीं रहतीं तो पूर्व जन्म की याद किस प्रकार रहे? सुबह शाम में अंतःकरण, इन्द्रियां, शरीर और देश आदिक बदलते नहीं हैं परन्तु फिर भी याद नही रहती तो फिर जब अंतःकरणादि सब बदल जांय तो कैसे याद रह सके?

सामान्य भाव से बुद्धि ही अन्तःकरण है, अंत करण अज्ञान का कार्य है, अज्ञान वासना के अनुसार होता है, वासना कर्म के अनुसार होती है, कर्म बदलते रहते हैं, इसलिये बुद्धि का भाव भी बदलता रहता है। विचार पूर्वक देखा जाय तो बुद्धि एक वस्तु नहीं है, अनेक वासनाओं से उत्पन्न होने वाली एक शक्ति है। जिस प्रकार वासनायें बदलती रहती हैं उसी प्रकार बुद्धि भी अपने रूप रंग में अंतर किया करती है।

जैसे एक साहूकार लेन देन आदिक अनेक प्रकार का धन्धा करता है, किसी को रुपया, किसी को माल देता लेता है। जब तक वह लेन देन करता है तब तक काल आदिक की स्मृति मुख से, वहीखाते से अथवा और किसी रीति से रखता है। जब तक लेन देन का कार्य समाप्त न हो तब तक उसको याद रखने की

जरूरत है परन्तु जव हिसाय अथवा लेन देन पूर्ण हो जाय तव उसके याद रखने की आवश्यकता नहीं रहती। उसके पश्चात् जो जो कार्य होता है केवल उसी को याद रखता है। इसी प्रकार बुद्धि जिस प्रकार के लेन देन के भाव वाली होती है जब तक वह कार्य समाप्त नहीं होता तव तक वह उसकी याद रखती है और जव वह कार्य समाप्त हो जाता है तव उसकी याद रखने की आवश्यकता नहीं रहती, दूसरे जिस कार्य की भाव वाली वह होती है, उसको याद रखती है। जिसकी शादी होती है उसी का गीत गाया जावा है।

जैसे शतरंज की एक बाजी पूर्ण होने पर दूसरी बाजी में सब मोहरे अन्य स्थानों को लेते हैं इसी प्रकार जीवन रूप बाजी में मन बुद्धि, चित्त, अहंकार, शुभाशुभ कर्म, वर्ण, जाति, संबंध, काल, आयु, भाव, अभाव, स्नेहिमित्र, शत्रु आदिक सब मोहरों की व्यवस्था फिर जाती है। प्रथम जन्म में कर्म करने और भोगने में बुद्धि जिस भाव की थी वह भाव दूसरे जन्म में नहीं रहता और ही प्रकार का भाव हो जाता है तब पूर्व की स्मृति बुद्धि में किस प्रकार रहे ?

जैसे एक स्वप्न में जो जो दृश्य और क्रियायें होती हैं वे दूसरे स्वप्न में याद नहीं रहतीं इसी प्रकार एक जन्म में जो २ संबंध और क्रियाये होती हैं वे दूसरे जन्म मे याद नहीं रहतीं। स्वप्न और जगत् मे अन्तर न होने. से स्वप्न में होने वाली सब

हालतों के साथ में जाग्रत् को भी मिलाया जाय तो उस प्रकार पूर्व जन्म की याद न रहना हो सक्ता है।

जैसे एक मनुष्य ने एक प्रकार का नशा किया और उसके कारण वह कुछ का कुछ बकने लगा, समय पाकर वह नशा उतर गया तब उसने दूसरी बार फिर दूसरा नशा कर लिया। प्रथम नशे की तरंग और थी दूसरे की और थी। प्रथम नशे की तरंग मे की हुई बकवाद की स्मृति दूसरे तरीके के तरंग में नहीं रहती। इसी प्रकार एक प्रकार के अज्ञान के कर्मों से बना हुआ शरीर और बुद्धि दूसरे प्रकार के अज्ञान के कर्मों से बने हुए शरीर और बुद्धि समान नहीं होते। इस भिन्नता के कारण वर्तमान जन्म में पूर्व जन्म की याद नहीं रहती।

मेस्मिरेज्मस के दृष्टांत मे स्मृति रहना दिखलाया है, इसका कारण इस प्रकार है:-जिन कर्मों के फल भोगने के निमित्त जन्म होता है उनका सूक्ष्म भाव मे अदृष्ट बनता है। जो कोई मनुष्य "अन्य जन्म में मुझे इस जन्म की स्मृति बनी रहे" इस प्रकार के तीव्र संस्कारों को धारण करे और वे कर्म अति तीव्रता के कारण अदृष्ट में शामिल हो जांय तो पूर्व की स्मृति भी कर्म रूप होने से रह सक्ती है। साहूकार का पुत्र को धन दिखलाने का तीव्र भाव था। लामा गुरु के दृष्टांत मे भी इसी प्रकार का कुछ तत्व मिला हुआ है। जो स्मृति रहने के संस्कार को दृढ़ करता है उसे स्मृति रह भी सकती है।

लामा गुरुओं को सिद्ध योगी होने के कारण भविष्य जन्म का मालूम होना हो सक्ता है। यदि योगी पूर्व जन्म जानना चाहे तो सूक्ष्म संस्कारों के ऊपर संयम करने से पूर्व के स्थूल दृश्य को खेंचकर जान सकता है। यदि वह दूसरे को पूर्व जन्म जानना चाहे तो उसको भी जान सक्ता है। मेस्मिरेज़म का दृष्टांत किंचित् भाग में योग क्रिया से मिलता है। कुछ याद रहने के तीव्र संस्कार प्रारब्ध में दाखिल होने से बाल्यावस्था में स्मृति का रहना संभवित है परन्तु बुद्धि ज्यों ज्यों संस्कारों से भरती चली जाती है त्यों त्यो पूर्व की याद भूलती जाती है। गाने वाले और चित्रकार लड़के के दृष्टांत में उन दोनों को पूर्वकी स्मृति न थी परन्तु पूर्वका कुछ अभ्यास था।

प्रश्न का सारांश उत्तर यह हुआ:—अनेक दृष्टांतों से प्रत्यक्ष अनुभव मे आया है जिससे पूर्व जन्म की युक्ति द्वारा सिद्धि होती है (शास्त्र से तो सिद्ध है ही) बुद्धि स्थूल से संबंध वाली होने से, रूपान्तर वाली होने के कारण विशेष तीव्र प्रयोजन सिवाय स्मृति को नहीं रखती। यदि खास याद रहने के तीव्र संस्कार कर्म स्वरूप से अदृष्ट में दाखिल करें तो याद रहना असम्भवित भी नहीं है। सामान्य भाव से तो बुद्धि परिवर्तन वाली होने से पुनर्जन्म की याद नहीं रहती।

९ कर्म का फल।

प्रश्नः—पूर्व जन्म में किये हुए कर्मों का फल इस जन्म मे भोगा जाता है, पाप कर्म का फल दुःख भोग होता है, पूर्व जन्म की याद नहीं, किये हुए कर्मों की खबर नहीं, पाप जाने विना पापका फल भोगना यह अन्याय क्यों है ?

उत्तर—पूर्व जन्म मे किये हुए समग्र कर्मों का फल इस जन्म में भोगा जाता हो, ऐसा नहीं है और इस जन्म में जितने फल का भोग होता है वह पूर्व जन्म का ही हो ऐसा भी नहीं है। कर्म की सूक्ष्मता गहन है, सूक्ष्म बुद्धि वाले सज्जनों से ही उसका मार्मिक भाव ग्रहण होता है। कर्मों का फल भोग नहीं है परन्तु जो कर्म अज्ञान से किये जाते हैं और कर्मों के सम्बन्ध से जो अज्ञान का भाव दृढीभूत होता है उसी अज्ञान का भाव फल रूप होता है। यद्यपि कर्म की मीमांसा वेदान्त का विपय नहीं है तो भी वेदान्त का किसी शास्त्र से समूल विरोध भी नहीं है। जितने कर्म हैं, वे सब ही अज्ञान स्वरूप हैं, ऐसा जानकर अज्ञान के हटाने के लिये उसका विवेचन भी मुमुक्षुओ को उपयोगी है।

शास्त्र में कर्म का विवेचन दो प्रकार से किया है, आरब्ध और अनारब्ध। दूसरी रीति से इन कर्मों के तीन भेद किये जाते हैं। आरब्ध कर्म को प्रारब्ध कर्म कहते हैं, अनारब्ध के संचित और क्रियमाण दो भेद हैं। क्रियमाण का दूसरा नाम आगामी है। जो कर्म फल देने को प्रवृत्त हो चुके हैं उनका नाम

प्रारब्ध कर्म है और जो फल देने को तैयार नहीं है उनका नाम अनारब्ध कर्म है। जो कर्म फल देने को तैयार नहीं हैं वे कर्म दो प्रकार के हैं एक संचित जो पूर्व के एकत्र हैं और उनमें से भोग देने के लिये कोई तैयार नहीं हैं, दूसरे आगामी अथवा क्रियमान हैं, वे भी पके हुए नहीं हैं और इसीसे फल देने को तैयार नहीं हैं। जन्म के आरम्भ में संचित कर्मों मे से जो पक होकर फल देने को तैयार होते हैं और जिन के अनुसार शरीर वनता है वे प्रारब्ध कर्म कहे जाते हैं। पूर्व जन्म शरीर का होता है, शरीर कर्म के अनुसार है, कर्म वदलते रहते हैं, इसी कारण शरीर भी वदलते रहते हैं, शरीर वदलना ही जन्म है। कर्मानुसार जव एक शरीर छूटकर दूसरा शरीर प्राप्त होता है तव उसको पुनर्जन्म कहते हैं। शरीर का परिवर्तन होना मृत्यु और जन्म है। जिन पुण्य पाप के योग से शरीर का परिवर्तन होता है विशेष करके उन्हीं पुण्य पाप का भोग उस शरीर से होता है, किंचित् आगामी कर्म जो तीव्र वेग वाले हों, यदि तुरन्त पक जांय और देश, काल, संयोग और शरीर उन कर्मों के फल भोगने के अनुकूल हो और फल के भोग होने में प्रारब्ध कर्मों में से कोई प्रवलता से रोकने वाला न हो तो ऐसे आगामी कर्म भी इसी शरीर में प्रारब्ध भाव को प्राप्त होकर फल दे सक्ते हैं। ऐसे ही आगमी तीव्र कर्म मंदता वाले प्रारब्ध का क्षय करने में समर्थ होते हैं। आगामी कितने ही तीव्र क्यो न हों, पूर्ण वेग वाले प्रारब्ध कर्म का नाश नहीं कर सक्ते। मध्यमप्रारब्ध का भी वे नाश नहीं करते परन्तु फल में वदली कर देने को समर्थ हैं।

एक आम बेचने वाले ने दुकान की है। बेचने का माल वह दुकान में रखता है और कच्चे आम रखने के लिये एक गोदाम रखा है, आसपास के ग्रामों में से आम ले आता है और उन्हें गोदाम में रखता है, उनमें से जैसे जैसे पकते जाते हैं, उन्हें बेचने वाली दुकान पर लाकर बेचता है। गोदाम में जो कच्चा माल है वह संचित है, पके हुए आमों में से जिनको निकाल कर वह दुकान पर लाकर रखता है वह प्रारब्ध है, और नया माल जो लाता है वह आगामी है। जैसे नये लाये हुए आमों में जो पके होते हैं वे गोदाम में न रख कर बेचने के लिये दुकान पर रक्खे जाते हैं वैसे ही तीव्र आगामी कर्म भी संचित में न जमा होकर प्रारब्ध रूप बन सक्ते हैं।

प्रारब्ध कर्म तीन प्रकार के होते हैं, पूर्ण, मध्यम और मन्द। जैसे किसी ने किसी का खून (वध) किया तो उसे न्यायाधीश खून के बदले खून ही की सजा देता है ऐसे ही पूर्ण प्रारब्ध अनिवार्य है। किसी ने किसी का माल चुराया, माल तो उसके पास न निकला परन्तु चोरी करने का सुबूत होगया तो माल लौटानेके बदले उसे जेलखाने मे सजा भुगतनी पड़ेगी, यह मध्यम प्रारब्ध है। एक मनुष्य ने दूसरे को बोल चाल होने में अपमान करके गालियां दीं, दूसरे ने सरकार में नालिश की, गाली देने वाले ने माफी मांग ली और वह अपराध से मुक्त हो गया, यह मन्द प्रारब्ध हुई। इस प्रकार पुण्य और पाप दोनों का कई अंश में तीव्र आगामी से कटना संभव है। इसी प्रकार पुत्रेष्टि यज्ञ, काम्य योग और प्रायश्चित्त सफल होते हैं।

पाप का फल दुःख है और पुण्य का फल सुख है। बहुत अंश में पूर्व कर्मों के अनुसार इस जन्म में भोग होता है। पूर्व जन्मों मे किये हुए कर्म का दुःख रूप फल भोगते हुए भी यह दुःख रूप भोग पूर्व में किये किन कर्मों का फल है, यह याद नहीं होती। याद क्यों नहीं रहती? यह पूर्व प्रश्न में समझा चुका हूँ, फिर भी सुनः—याद-स्मृति बुद्धि से सम्बंध रखने वाली है और सब बातों की स्मृति अवश्य रहे यह नियम नही है। बुद्धि स्थूल शरीर से सम्बंध रखने वाली है बहुत सी बातें एक शरीर मे भी याद नहीं रहतीं। वृद्धावस्था में तथा विशेष उपवास करने से स्मृति बिगड़ जाती है। जब पूर्व जन्म, कर्म, शरीर और उसके अनुसार बनी हुई बुद्धि ये सभी बदल जांय तब याद रहना कैसे सम्भव है? सब कुछ बदलते हुए भी कर्म फल का सूक्ष्म अनुसन्धान है वह सूक्ष्म अनुसन्धान बुद्धि में याद नहीं रह सकता। जिस प्रकार एक स्वप्न की याद दूसरे दिन के स्वप्न मे नहीं रहती वैसे ही स्थूल शरीर भी स्वप्न के समान है, जन्म से मरने तक शरीर का एक स्वप्न है, इससे पूर्व जन्म रूप स्वप्न की याद इस जन्म में नहीं रहती।

पाप को जाने बिना पाप का फल भोगने को जो तू अन्याय बताता है वह अन्याय नहीं है। बुद्धि में याद न रहते हुए भी शास्त्र और अनुमान द्वारा सामान्य रीति से दोष जान सक्ते हैं। मनुष्यों को सामान्य रीति से दोष जानना ही पर्याप्त है। केवल एक एक कर्म का फल भिन्न २ नहीं होता परन्तु एक प्रकार के

बहुत से सजातीय कर्मों का फल एक होता है और उन कर्मों मे देश, काल, योग्यता और संयोग इन सब का संमिलन होता है। ऐसा होने से अमुक कर्म का अमुक फल निर्णय होकर स्मृति में रहना असम्भवित है। कर्म की सूक्ष्म गति का जब तक अध्ययन न किया जाय तब तक कर्म रहस्य का समझ में आना अशक्य है।

जो कर्म जिस जाति के होते हैं वे अपनी उसी जाति में जा कर मिलते हैं। इस प्रकार अनेक कर्म एकत्र होकर पक जाते हैं अर्थात् रहने के स्थान में भर जाते हैं और उनका समय आजाने पर निकाल आते हैं। पूर्व के कर्म पूर्व फल दें और पीछे के पीछे फल दें ऐसा नियम नहीं है। इसको इस प्रकार समझो कि दिल्ली से डाकगाड़ी में डाक चली, जो जो स्टेशन आते जाते हैं वहां की डाक का थेला उतार दिया जाता है, वहां की डाक ली जाती है उसे खोलकर जिस ग्राम का जो पत्र होता है उसे सोरटर उस ग्राम के खाने में (एक तखता इस प्रकार बना होता है जिसमें क्रम २ से ग्राम के खाने होते हैं) डालता जाता है, इस प्रकार सब पत्रों को बांट देता है, जब स्टेशन समीप आने को होता है तब उस स्टेशन के खाने के पत्रों को लेकर, थेले में भर स्टेशन पर उतार देता है। चाहे बहुत समय का पड़ा हुआ होय चाहे पिछले स्टेशन का ही पड़ा हो। कर्म में भी इसी प्रकार वर्ग वार अनेक खाने हैं जिस खाने के कर्म पक जाते हैं, वे निकाल दिये जाते हैं और प्रारब्ध होकर फल देते हैं। इन समग्र एक प्रकार के

कर्मों के साथ मिले हुए होने से सामान्यता से ही अमुक प्रकार के कर्मों का अमुक फल जाना जाता है। एक सज्जन है, लोग उसे मान प्रतिष्ठा देते हैं, और अन्य प्रकार से भी सहायता करते हैं। उस सज्जन की प्रतिष्ठा आदि अमुक सद्गुण का फल है ऐसा निर्णय नहीं हो सक्ता परंतु सम्मिलित सद्गुणों का फल समझा जाता है इसलिये अलग २ याद रहने की कुछ आवश्यकता नहीं है।

एक मनुष्य ने वहुत प्रकार के पाप किये हैं तो एक एक पाप का एक एक दण्ड भिन्न २ प्रकार से नही दिया जाता परन्तु सब पापों का सामान्य फल रूप एक दण्ड दिया जाता है। यदि एक दो ही पाप हों तो भिन्न दण्ड होना वन सक्ता है अनेक पापो का क्रमवार दण्ड नहीं दिया जाता। जीव के एक दो कर्म तो हैं नहीं, अनेक हैं फिर एक एक जाति के अनेक हैं तब अमुक कर्म का अमुक फल किस रीति से विभक्त होवे ?

याद न रहने के कारण ऊपर दर्शाये गये हैं और भी सुन, संसार भूल का वना है, भूल ही उसका मूल है तब भूल जाना-याद न रहना इसमें आश्चर्य ही क्या है ? यदि स्वरूप की स्मृति ही रहती तो अनेक प्रकार के दुःखमय संसार की प्राप्ति क्यो होती ? भूल के खेत में भूल के ही सब वृक्ष उत्पन्न होते हैं। तूने जो कहा था कि पाप को जाने विना सजा देना अन्याय है सो ऐसा नहीं है। वर्ग वार नहीं जानते हुए भी सामान्य रीति से सब ससार जानता है। जब अनिष्ट फल भोगना पड़ता है तब

पूर्व का यह फल है ऐसा लोग मानते हैं और ऐसा मानना ही पाप कर्म समझने वालों को पाप से बचते रहने का उपाय है। यदि गदहे के समान लाठियां पड़ते हुए भी लाठियां पड़ने का ही कर्म करे ऐसे अज्ञानी के लिये शास्त्र भी उपदेश करते २ थक गया है। भले और बुरे कर्मों का अनुभव पृथक् २ भाव से बुद्धि को याद नहीं रहता तो भी शुद्ध बुद्धि (Conscience) कार्य करने में जता देती है। बुद्धि का यह जता देना पूर्व का सूक्ष्म प्रभाव है।

बुद्धि बदल जाने के कारण एक शरीर होते हुए भी याद नहीं रहती इसका एक दृष्टांत सुनिये:—

पाश्चात् देश मे जब अपनी आर्य योग विद्या का किंचित् अंश मेस्मिरेजम की विद्या का आरम्भ हुआ तब इस विद्या के एक अभ्यासी ने उसके द्वारा धन प्राप्त करने का यत्न किया। वह युवा था, उसने एक अधिक उमर के मनुष्य के ऊपर प्रयोग करना आरम्भ किया जब उसे निश्चय होगया कि उसके प्रयोग का असर उस पर हो जाता है तब बूढ़े को आधी आमदनी देने का निश्चय करके नाटक घर में तमाशा करने का विचार किया। इश्तहार छपवाकर बांटे गये, नवीन आश्चर्य जनक तमाशा देखने को लोगों की बहुत भीड़ हुई और नाटक घर तमाशा देखने वालों से भर गया। जवान मनुष्य ने अपने मन अर्थात् चैतन्य संयुक्त बुद्धि का बूढ़े में प्रवेश करना आरम्भ किया, बूढ़ा भी बहुत धन प्राप्त करने के आनंन्द में था उसने भी अपना मन

जवान मनुष्य के मन से मिलाने का यत्न किया। थोड़ी देर पश्चात् तमाशे का प्रयोग तो रक्खा ही रहा एक और ही तमाशा होगया। बूढ़े के शरीर मे जवान मनुष्य का अभिमान और बुद्धि घुस गई और जवान के शरीर में बूढ़े का अभिमान और बुद्धि प्रवेश कर गई। बूढ़ा अपने को जवान जानने लगा! जवान अपने को बूढ़ा समझने लगा। तमाशा न होने से लोग दंगा करने लगे, पुलिस ने सब समाधान किया। अब बूढ़े का शरीर जवान के घर की तरफ चला और जवान का शरीर बूढ़े के घर की तरफ चला। घर पहुंच कर दोनो अपने अभिमान के साथ घर वालों से बातं चीत करने लगे। दोनों के घर वाले उनकी बाते सुनकर घबड़ाये कि यह क्या हुआ। जवान के कुटुम्बी उसके शरीर को अपने यहां लाने का यत्न करने लगे, ज्यो त्यों करके थोड़ी दूर लावे वह भाग कर बूढ़े के घर पहुंच जाय! बूढ़े के कुटुम्बी उसे घर लाने का यत्न करें और वह भाग भाग कर जवान के घर पहुँच जाय। इस प्रकार बहुत देर तक होता रहा, किसी की समझ में न आवे कि यह क्या बात है। इस विद्या का एक मर्मज्ञ था। कई दिन पीछे जब उसे यह समाचार मिला तो उसने सब बात जानकर दोनों को शान्त किया। एक दूसरे मे प्रत्येक का चित्त ठहरा कर अपने २ शरीरों में बुद्धियों को प्रवेश करा के दोनों को सावधान किया। तमाशा करने के समय जो अदल बदल होगये थे अब ठीक हुए अर्थात् बूढ़े के शरीर मे बूढ़े की बुद्धि और अभिमान आगया इसी प्रकार जवान के शरीर मे जवान की बुद्धि और अभिमान आगया।

एक शरीर के होते हुए भी बुद्धि वदल जाने से शरीर की कुछ स्मृति नहीं रही परन्तु बुद्धि को दृढ़ हुए शरीर का ही भाव रहा। जब बुद्धि मात्र वदलने मे यह हाल है तब जहां शरीर और बुद्धि दोनो बदल जांय वहां पूर्व जन्म की याद किस प्रकार रहे ? विशेष यत्न किये विना याद नही रहती है। शास्त्र में सूक्ष्म भाव से इतना ही लिखा है कि जगत् की हवा (वैष्णव वायु) लगने से पूर्व की स्मृति चली जाती है। ऐसा होते हुए बुद्धि का पूर्व कर्मों के साथ सूक्ष्म संस्कार है—सामान्य ज्ञान है इसलिये पाप का फल भोगना अन्याय नहीं है।

जो आधुनिक जीववाद वाले पूर्वजन्म को नहीं मानते हैं और न मानने का कारण पूर्वकी स्मृति न रहना ही बताते हैं वे स्थूल बुद्धि से ही समझना चाहते हैं। बुद्धि पूर्वकी स्थूलता को छोड़कर सूक्ष्म भावको प्राप्त होकर नवीन स्थूलता जिस प्रकार धारण करती है यह बात उनकी बुद्धि से बाहर है। बुद्धि, स्मृति, स्थूलता की प्राप्ति, स्थूल से सूक्ष्म भाव में आना, स्थूल से छूटकर सूक्ष्म रहना और उसमें से बुद्धि स्थूल दशा को किस प्रकार प्राप्त होती है ये सब बातें जाने विना और अभ्यास किये विना समझ में आना असम्भव है। ऐसे जड़ बुद्धि वाले, ईश्वर में अन्याय का आरोप करे, उनसे क्या कहा जाय ? मूर्ख ! अज्ञान के कारण तुम अपने को ही अन्यायी वनाते हो ! यही तुम्हारे अज्ञान का संपूर्ण सार्टीफिकेट है।

जिस प्रकार कानून का जानने वाला न्याय और अन्याय को यथार्थ रीति से समझ सक्ता है, साधारण गंवार इस विषय में

नहीं समझ सक्ता। इसी प्रकार महान राजा के न्यायालय का न्याय और अन्याय समझने के लिये उस न्यायालय का कानून-शास्त्री बनना पड़ेगा। "हमारी बुद्धि में नहीं आता इसलिये तुम्हारा कहना झूंठ है" ऐसे कहकर सत्य बात को असत्य ठहराने वाले आप ही झूठे हैं यह ही सिद्ध करते हैं। एक सामान्य मनुष्य जिसको रत्न की पहचान नहीं है उसे जौहरी के बताये हुए दाम समझ मे नहीं आते इसलिये जौहरी झूंठा है, जिस प्रकार यह कहना है उसी प्रकार वह है।

जन्म, मृत्यु, पाप, पुण्य, सब जगत् क्रम से (सिलसिलेवार) होते हुए भी अनिर्वचनीय है। माया की रचना भ्रमात्मक, काल्पनिक और विनाशी है, उसको माया स्वरूप समझकर मुमुक्षुओं को सत्यता का भाव न करना चाहिये। संसार में सब कुछ ठीक है तो भी आत्म में संसार को मानना बंधन करने वाला है। ऊपर जो समझाया गया है वह जगत् की तरफ के भाव को हटाने के निमिंत्त है, उसमें बंधायमान होने के लिये नहीं है। मुमुक्षुओ को जगत् का मिथ्यात्व भाव ही आगे ले जाने वाला है। ज्ञान होने के पश्चात् यह और वह किस प्रकार का मालूम होता है यह नहीं कह सक्ते परन्तु जिस ज्ञानी को उसका अनुभव होता है वह ही उसे यथार्थ रीति से जानता है।

आर्य धर्म के ऊपर निष्ठा रखने वाले सब पुनर्जन्म को मानते हैं। मीमांसकों का पुनर्जन्म मुख्य फल-सिद्धान्त है न्याय, वैशेषिक, सांख्य और योग सभी उसको मानते हैं। इसी प्रकार

वेदान्त भी व्यवहार में मानता हैं। इसके सिवाय आर्य धर्म रहित मनुष्य उसको मानें या न मानें, उनके लिये हमें कुछ कहना नहीं है।

अन्तिम सारांश—कर्म की गति अत्यन्त सूक्ष्म है और गहन है। किसी अंश मे वह समझाई गई है। मरने के समय में स्थूल बुद्धि सूक्ष्म होती है और फिर स्थूल परिणाम को प्राप्त होती है वह प्रारब्ध कर्म के समान वनी हुई होती है। पूर्वजन्म की स्थूल बुद्धि पूर्व के प्रारब्ध अनुसार वनी थी। पूर्वजन्म में जो बुद्धि थी वह इस जन्म में नहीं रहती जैसे बुद्धि वदलती है उसी प्रकार शरीर भी वदलता है इसलिये पूर्वजन्म की याद नहीं रहती तो भी शुद्ध सूक्ष्म बुद्धि (Conscience) भले बुरे दोनों को जता देती है। शास्त्र और अनुमान से पाप कर्म का फल दुष्ट–दुःख समझा जाता है। अनेक जाति के वहुत कर्मों के मेल से दुःख का भोग होता है तव अमुक पाप का अमुक फल भिन्न २ किस प्रकार कहा जाय? इसलिये पूर्ण याद न रहते हुए भी पाप का फल भोगना अन्याय नहीं है। सामान्य भाव से पाप का फल दुःख सवको विदित है।

१० कर्ता भोक्ता।

प्रश्नः—एक शरीर के किये हुए शुभ अशुभ कर्मों का फल दूसरे शरीर में भोगना यह अन्याय क्यों ?

उत्तरः—प्रथम स्थूल शरीर को जानना चाहिये, जो स्थूल शरीर देखने में आता है वह कर्मों का कर्ता भोक्ता नहीं है। जो कर्ता होता है वह भोक्ता भी होता है, यह नियम है। जो स्थूल शरीर ही कर्ता हो तो मरने के पश्चात् भी वह रहता है, उसके रहते हुए कार्य क्यों नहीं होता ? मरने के पश्चात् कार्य न होने से सिद्ध होता है कि कर्ता कोई और है, जब तक वह शरीर में रहता है तब तक क्रिया होती है। कर्ता भोक्ता और कर्तृत्व भोक्तृत्व के अभिमान वाला सूक्ष्म शरीर समझो। सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर की अपेक्षा भीतर होता है। सूक्ष्म शरीर के टिकने का स्थान स्थूल शरीर है इसलिये वह आयतन—घर कहा जाता है। जैसे एक व्यापारी एक दुकान पर बैठ कर धंधा करके धन कमावे, और संयोगवश दुकान उसे छोड़नी पड़े और दूसरे स्थान पर उसे जाना पड़े, वहां जाकर पूर्व दुकान पर कमाये धन का उपयोग करने लगे; इसी प्रकार व्यापारी रूप जीव एक स्थूल शरीर रूपी दुकान से धर्माधर्म रूप कमाई करके दूसरे स्थूल शरीर रूप स्थान में जाकर पूर्व शरीर से उपार्जन की हुई कमाई को भोगता है, इस में अन्याय क्या हुआ ? दुकान कमाई करने वाली न थी ! दुकान पर बैठकर धंधा करनेवाला व्यापारी कमाई

करने वाला था, वहही व्यापारी दूसरे स्थान में जाकर पहले कमाये हुए धन का भोग करता है तो यह न्याय ही है। जैसे दुकान—स्थान जड़ है ऐसे ही स्थूल शरीर भी जड़ है। जड़ वस्तु न तो कर्ता हो सक्ती है न भोक्ता ही हो सक्ती है। कोई राजा एक तलवार से शत्रु को वश मे करके समृद्धि प्राप्त करे और तलवार पुरानी होने पर यदि वह उसे छोड़ दे और राज समृद्धि के उपभोग समय दूसरी नई तलवार अपनी कमर में बांधले, तब कोई कहे प्रथम तलवार ने राज्य प्राप्त किया था, राजा के साथ सुख भोगने में दूसरी तलवार क्यों है ? इसी प्रकार कर्ता कौन है और भोक्ता कौन है ? यह न समझने से बालक के समान तू यह प्रश्न करता है। तलवार शत्रु को वश नही कर सक्ती। राजा शत्रु को वश करता है। तलवार कार्य करने के लिये केवल एक औजार है इसलिये कर्ता भोक्ता दोनों ही राजा है।

जिस स्थूल शरीर को सब मनुष्य देखते हैं वह शरीर पंचीकरण किये हुए पंच भूतों का है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इनको पंच भूत कहते हैं। संसार में ये पांच अलग २ दीखते हुए भी उन में से प्रत्येक तत्त्व मात्र एक ही तत्त्व नहीं है, प्रत्येक एक दूसरे से न्यूनाधिक प्रमाण मे मिला हुआ है, मिलावट को पंचीकरण कहते हैं। जो स्थूल पृथ्वी दीखती है, उसमें पृथ्वी तत्त्व का आधा अंश है और आधे में शेष रहे हुए चारों तत्त्व मिले हुए हैं। पांचो तत्त्वो मे पृथ्वी अंश की विशेषता होने से पृथ्वी कहलाती है इसी प्रकार अपना २ अंश

विशेष होने से जल, तेज, वायु और आकाश कहलाते हैं। पंचीकरण विना किये स्थूल तत्त्व नहीं होता। यह स्थूल शरीर इन्हीं स्थूल तत्त्वों का बना हुआ है। तत्त्व जड़ है इसलिये उनका कार्य शरीर भी जड़ है। इसमें टिका हुआ कर्ता भोक्ता इससे कोई भिन्न है और इसी से स्थूल शरीर को मेरा शरीर इस प्रकार कहते हैं। स्थूल शरीर के भीतर एक और शरीर है उसको सूक्ष्म शरीर कहते हैं। उसकी सत्ता से स्थूल शरीर चेष्टा करता है, वह शरीर भी पंच भूतों का बना हुआ है परन्तु स्थूल शरीर, जिस प्रकार पंच भूतों का पंचीकरण किया हुआ है वैसे पंचीकरण किए हुए भूतो से सूक्ष्म शरीर नहीं बना है, वह अपंचीकृत पंच तत्त्वों का बना हुआ है। कर्ता भोक्ता का अभिमान इसी शरीर में रहता है इसलिये वह ही कर्ता भोक्ता है। सामान्य भाव से इसी को जीव कहते हैं। वास्तविक तो सूक्ष्म शरीर भी जड़ है परन्तु कारण शरीर और उसमें पड़े हुए चैतन्य के प्रकाश से वह चैतन्य के समान क्रिया करता है। स्थूल शरीर मरता है और जन्मता है। सूक्ष्म शरीर जो जीव कहलाता है, जन्म मरण से रहित है; वह ही कर्ता भोक्ता है।

तेरी योग्यता समझ कर यदि कोई राजा तुझे अपने देश में न्यायाधीश बनादे, न्याय करना न्यायाधीश का काम है। तेरे पास यह मुकदमा आवे कि एक मनुष्य ने कुदाल से शत्रु का शिर कुचल डाला। जब अपराधी तेरे सामने आवे तब तू उससे पूछे कि तूने इस मनुष्य को मारा है या नहीं। इस पर अपराधी

उत्तर दे कि नहीं मैंने नहीं मारा है परन्तु इस कुदाल ने उसका शिर कुचला है, मेरे शरीर में कुदाल के समान शिर कुचलने की कोई वस्तु नहीं है, मैं किस प्रकार से कुचल सक्ता था। अपराधी कुदाल है, आप न्याय कीजिये और कुदाल को दंड दीजिये, पुलिस ने मुझे विना अपराध पकड़ लिया है। तव तू उससे कहे कि कुदाल जड़ है, वह अपने आप किसी को नहीं कुचल सक्ती, तू ने हाथ में कुदाल ली, अपनी शक्ति हाथ को दी, वह शक्ति कुदाल में आने से तूने अपने शत्रु को मार डाला है-कुचल डाला है इसलिये कुदाल अपराधी नहीं है, अपराधी तुही है। ऐसा कह कर तू उसे शूली पर लटका देगा—न्याय करेगा, कुदाल को दण्ड न देगा। इसी प्रकार शरीर को समझ। शरीर कुदाल के समान है और जड़ है, अपने आप कुछ नहीं कर सक्ता, शरीर के भीतर वैठा हुआ जो कुछ कराता है वह ही शरीर करता हैं, कराने वाल देखने में नहीं आता तो भी करता वही है इसी से भोक्ता भी उसे ही वनना पड़ता है। जिसने कराया है, शरीर मरने पर वह नहीं मरता, दूसरे शरीर के सहारे पूर्व किये हुए कर्मों का फल भोगता है। जो स्थूल शरीर को आत्मा अथवा कर्ता भोक्ता जीव मानते हैं उनकी भूल है। यह मत चार्वाक—नास्तिकों का है। तेरे वताये हुए अन्याय को कोई आस्तिक नहीं मानता। पुनर्जन्म न मानने वाले अन्य देश वासी भी पुण्य पाप के फल को अंगीकार करते हैं। वे भी शरीर से भिन्न शरीर में रहने वाला कर्ता भोक्ता मानते हैं।

प्रश्नः—आप मुझे न्यायाधीश बना कर न्याय करने का उपदेश देते हैं। आप के उपदेश अनुसार मैं उसके शरीर को शूली पर कैसे चढ़ा सक्ता हूँ ? जिस प्रकार कुदाल निर्दोष है। इसी प्रकार उसका शरीर और हाथ भी तो निर्दोष है। अपराधी जीव है, उसको ही दंड मिलना चाहिये। जीव मरता नहीं, उस को किस प्रकार दंड देकर न्याय किया जाय ?

संतः—यह तेरा कहना यथार्थ है, दण्ड जीव को ही देना चाहिये, स्थूल शरीर के साथ जीव का सम्बन्ध है, शरीर का आत्मिक भाव से जीव उपयोग करता है। जैसे उस के सहारे से वह अपराधी बना था वैसे ही उसीके सहारे दण्ड मिलता है, शरीर को दण्ड देने से जीव अपना दण्ड मानता है। इसलिये न्यायालय में शरीर को दण्ड देने से जीव को ही दण्ड मिलता है। जड़ शरीर दण्ड को नहीं मान सक्ता ! जिस ने शरीर में 'मैं' और 'मैं पना' मान रक्खा है वह ही दण्ड भुगतता है।

एक साहूकार बहुत सीधा था, लोगों में वह उदार भी प्रसिद्ध था। उसको बहुत सीधा सादा देखकर अपने स्वार्थ सिद्ध करने की इच्छा से एक बदमाश मार्ग में आते जाते उसको 'राम राम' करने लगा। इस प्रकार कुछ दिनों में 'राम राम' का व्यवहार दृढ़ हो गया। एक दिन बदमाश एक बहुत सुन्दर सुवर्णजटित और कारीगरी से बनाई हुई लाठी ले आया और साहूकार को 'राम राम' करके वह लाठी उसने दे दी। इसके पश्चात् साहूकार और बदमाश में यह बातचीत हुई। साहूकारः—

यह लाठी कैसी है ? बदमाश.-यह लाठी आप की है, आप उसे ले लीजिये। साहूकार:-मेरी लाठी कहां से आई ? यह मेरी लाठी नहीं है, मेरे पास ऐसी लाठी है ही नहीं, और मेरी लाठी तेरे पास कैसे आ गई ? बदमाश:—आप धर्मात्मा हैं, मैं प्रातः-काल जब सोते से उठता हूँ तब आप का नाम लेता हूँ, ऐसा करने से मेरे दिन आनन्द पूर्वक व्यतीत होते हैं, आपके नाम और दर्शन से मेरा कल्याण होता है। जब कोई चिन्ता आ जाती है तब मैं आपका स्मरण करता हूँ, स्मरण मात्र से ही मेरी चिन्ता मिट जाती है। आप साक्षात् ईश्वरावतार हैं! (अपनी चुपड़ी २ बातों से साहूकार को प्रसन्न होता देखकर जी में खुश होकर) शहर में एक परदेशी व्यापारी आया है, उसके पास अनेक सुन्दर वस्तुये थीं, उसी के पास मैंने यह लाठी देखी, मैंने विचार किया कि आपके हाथ में यह पूर्ण शोभा देगी। मेरा यह सामर्थ्य न था कि उसे मोल लेकर आपके भेट करूं परन्तु मेरी भक्ति आपको देने की थी। उस व्यापारी ने मुझे कहा "मेरे पास अनेक वस्तुयें हैं, उनका लेने वाला शहर में कोई न कोई निकल आवेगा परन्तु एक वस्तु मेरे पास ऐसी है जिसको लेकर मैं कई शहरो मे फिर आया उसका खरीदने वाला नहीं मिला और इस शहर में भी उसका लेने वाला कोई नहीं दीखता।" मैंने कहा, जिस वस्तु के बिकने की तुमको आशा नहीं है वह आज ही बिक जायगी। परदेशी ने कहा, यह असम्भव है। मैंने आपके नाम का स्मरण करके और उसके प्रभाव से निश्चय

करके कि उसकी वस्तु आज ही बिक जायगी व्यापारी से कहा "भला ! आज ही जो तुम्हारी वह वस्तु बिक जाय तो लाठी मैं जीत जाऊंगा ।" व्यापारी ने मान लिया । मैं वहां ही खड़ा था कि एक व्यापारी ने आकर व्यापारी की वह वस्तु खरीद ली, मैं दाव जीत गया । इस प्रकार आपके नाम से, आपके प्रारब्ध से और आपके ध्यान से जीती हुई लाठी मुझे मिली है, मैं उसे ले कर आपके पास आया हूँ । आप उसे रखिये । साहूकारः—भले मानस ! तू ने लाठी जीती है, तू ही अपने पास रख । बदमाशः-आपके प्रारब्ध से जीती है, मैं किस प्रकार रख सक्ता हूँ ? मेरी भक्ति भी ऐसी ही थी । साहूकार सोचने लगा "लाठी देता है, लेता कुछ है नहीं, रखने में क्या हानि है ?" यह विचार कर लाठी उसने रख ली । बदमाश प्रसन्न होकर अपने घर चला गया । दश दिन पीछे दो सौ रुपये ले कर फिर आया और रुपये साहूकार के सामने रख कर कहने लगा "यह रुपये आप रख लीजिये ।" साहूकारः—रुपये कैसे ? बदमाशः—रुपये आपके हैं, लाठी के समान आपके नाम और आपके प्रारब्ध से जीत लाया हूं । साहूकार था भोला, बदमाश के छल को न समझकर रुपये भी रख लिये । इसके दश दिन पीछे बदमाश दो मनुष्यों को साथ लेकर फिर साहूकार के पास आया और हाथ जोड़कर उदासीन चेष्टा बना कर खड़ा होगया । साहूकारः—क्या है ? बदमाशः—सेठजी, क्या कहूं जब जब मैं आपके नाम से काम करता था तब तब कैसा भी कठिन काम क्यो न हो, अवश्य हो जाता था । आज दिन भर आपका नाम लेते लेते थक गया तो

भी काम उलटा ही हुआ ! आपके नाम से, आपके स्मरण से, और आपके प्रारब्ध से आज मैंने एक बाजी लगाई थी, मुझे निश्चय था कि मैं अवश्य जीत जाऊंगा परन्तु हार गया और इन दोनों मनुष्यों को पच्चीस हजार रुपये देने हैं। जो जो आपके नाम से मैं जीतता था वह आपको दे दिया करता था, आज आपके नाम से हार गया हूँ ! आप ही रुपया देकर मुझे छुड़ाइये। साहूकारः—(चोककर) हारा तू है, मैं क्यों दूं ? मैं ने तुझसे बाजी लगाने को नहीं कहा था। बदमाशः—जब जब मैं जीतता था और जीती हुई वस्तु आपको लाकर देता था, तब भी आपने आज्ञा नहीं दी थी, विना आज्ञा दिये जीत अंगीकार की तो हार भी अंगीकार करिये। साहूकारः—मैं अंगीकार नहीं कर सक्ता। वदमाशः—आप अंगीकार नहीं करते तो मैं न्याय कराऊंगा और आपको रुपया देना पड़ेगा। साहूकार के पास जो और लोग बैठे थे वे भी कहने लगे कि यदि जैसा यह कहता है उसी प्रकार है तो रुपया आपको देना होगा। अन्त में साहूकार को रुपया देना पड़ा और वदमाश अपना काम बनाकर चल दिया। असंग आत्मा कर्ता भाव में इस प्रकार आता है।

साहूकार शुद्ध आत्मा है, अज्ञान में पड़ा हुआ अज्ञान सहित चिदाभास वदमाश समझो। लेन देन का धंधा वह करता है। आत्मा साहूकार उन गुणो को ग्रहण करता है—उनमें संयुक्त होता है। अकर्ता होते हुए भी अज्ञान के भाव से वह कर्ता वनता है। इसी प्रकार शरीर की चेष्टाओं को जीव ग्रहण करता है इस-लिये जीव ही कर्ता भोक्ता है, शरीर कर्ता भोक्ता नहीं है।

अन्तिम सारांशः—कर्म शरीर से होता है परन्तु कर्म का करने वाला शरीर नहीं है। कर्म कर्ता और कर्म का अभिमान करने वाला जीव है। शरीर जीव के रहने का स्थान है इसलिये एक शरीर रूप स्थान में बैठकर जो शुभाशुभ कर्म किये जाते हैं उनका फल मरण रहित जीव दूसरे शरीर में भोगता है, उसमें अन्याय कुछ नहीं है।

११ जीव सर्वज्ञ क्यों नहीं ?

प्रश्नः—आत्मा शुद्ध है तो सब बातो को क्यो नहीं जानता ?

उत्तरः—आत्मा शब्द से तू किस को कहता है ? शास्त्र में आत्मा शब्द का भिन्न भिन्न स्थानो पर भिन्न भिन्न अर्थ में उपयोग किया गया है। स्थूल शरीर को आत्मा कहा है, मनको आत्मा कहा है, जीव को आत्मा कहा है और शुद्ध कूटस्थ परम तत्त्व (परमात्मा) को आत्मा कहा है। स्थूल शरीर विकारी, रूपांतर वाला और पंच भौतिक होने से शुद्ध नहीं है, मन त्रिगुणात्मक विकार वाला होने से शुद्ध नहीं है। जीव अज्ञान के भाव सहित कल्पित है, अब रहा कूटस्थ, वह व्यापक, चैतन्य परमात्मा है और एक वह ही शुद्ध है। शुद्ध विकार रहित और स्वच्छ को कहते हैं। ऐसा शुद्ध आत्मा सब बाते, भूत भविष्य, ऊपर नीचे, और सब जगत् को क्यों नही जानता ? यदि ऐसा तेरा प्रश्न हो तो श्रवण कर:—जो कुछ जानने को है वह सब मायिक प्रपंच है, जो कुछ प्रपंच है वह वस्तुतः है नहीं, इससे एक अद्वैत तत्त्व मे माया की भिन्न २ वस्तुओ का ज्ञान नही है। ज्ञान जानने को कहते हैं, त्रिपुटी मे जानना होता है, शुद्ध तत्त्व मे त्रिपुटी है नहीं, तो उसमे जानना किस प्रकार बन सके ? आत्मा ज्ञान गुण वाला नहीं है परन्तु ज्ञान स्वरूप है, अद्वैत है। गुण और गुणी का भेद होता है, आत्मा गुण और गुणी के भेद वाला नहीं है, जहां भेद नहीं होता वहां भेद ज्ञान नहीं होता। जहां जगत् नहीं है वहां पृथक

भाव से जानने वाला कौन होवे ? किसे जाने ? क्या जाने ? किससे किसको जाने ? किस प्रकार जाने ? किस निमित्त जाने ? जहां भेद का अभाव है, वहां किसी प्रकार की कल्पना होना असम्भव है।

शुद्धात्मा अतीन्द्रिय है और इन्द्रियों से उत्पन्न होने वाला ज्ञान उसका विषय नहीं है। इसलिये, इन्द्रिय रहित होने से, इन्द्रियों से होने वाले विविध प्रकार के, प्रपंच ज्ञान को वह ग्रहण नहीं करता। शुद्ध शुद्ध का विषय होता है। अशुद्ध अशुद्ध का विषय होता है। आत्म स्थिति में आत्मा के समान अन्य कोई शुद्ध नही है। जब धर्मी और प्रतियोगी का भेद होता है तभी भेद ज्ञान होता है, इसके विना भेद ज्ञान नहीं होसक्ता, इसलिये शुद्धात्मा में धर्मी और प्रतियोगी का अभाव होने से प्रपंच का ज्ञान नहीं होता।

'सब' शब्द से तू जगत् प्रपंच की विविधता को, ऐहिक और पारलौकिक पदार्थों को, भूत भविष्य और वर्तमान काल को व्यवहित (आड़ वाले) और अव्यवहित (आड़ रहित) प्रपंच को कहता है। सबका ज्ञान अन्तःकरण से होता है। अन्तःकरण स्वयं जड़ होने से चैतन्य के आभास से प्रपंच को जानता है। वह परिच्छिन्न और रूपांतर वाला है, उससे जो कुछ जाना जाता है वह अल्प है, वही प्रपंच है। प्रपंच को जानने वाला प्रपंच का अन्तःकरण है, जिसमें जितना सामर्थ्य है वह उतना ही जान सक्ता है, जो ज्ञान चिदाभास सहित अन्त करण का है वह विशेष

चैतन्य कहा जाता है। यह विशेष चैतन्य जिस अवस्था में होता है उसी अवस्था का न्यून अथवा अधिक ज्ञाता होता है। अद्वैत और प्रपंच एक दूसरे से विरुद्ध हैं। अद्वैत में पृथक् का जानना नहीं हो सक्ता। शुद्धात्मा कहते हुए तू शुद्धात्मा को समझता नही है, शुद्धात्मा और प्रपंच की सब बातों को एक ही रेखा में ले जाता है इसलिये ऐसा प्रश्न करता है। जब तू शुद्धात्मा के स्वरूप को समझेगा तभी उसे यथार्थ जान सकेगा। अनेक प्रकार के तर्क वितर्क से आत्मा का बोध नहीं होता। आत्मबल वाला ही आत्मबोध को प्राप्त होता है इसलिये उसको समझने के लिये यत्न करना उचित है। आत्मा से आत्मा जाना जाता है। आत्मा के किञ्चित् शाब्दिक श्रवण के साथ प्रपंच के दृश्य को एकमेक करके प्रश्न करते रहने से प्रश्नो का अन्त कभी नहीं आवेगा। जितनी विशेष तर्क करेगा उतना ही अज्ञान के कारण आत्मा से दूर होता चला जायगा।

अधिष्ठान स्वरूप आत्मा में प्रपंच अध्यस्त है। अध्यस्त वस्तु वास्तविक नहीं होती। सत्य स्वरूप अधिष्ठान में अवास्तविक दीखती है। अवास्तविकका अधिष्ठानसे संबंध नहीं होता, न वह अधिष्ठान को दूषित कर सक्ता है। अधिष्ठान आत्मा में अध्यस्त प्रपंच का विकार, आंख, कान, मुख, आदि किस प्रकार हो और किस प्रकार उनका ज्ञान हो ? अज्ञान से वस्तु अध्यस्त है। अज्ञान, पात्र भेद से विविध कल्पना वाला है जो मात्र अज्ञान की दृष्टि का ही विषय है। रस्सी रूप अधिष्ठान में सर्प रूप अध्यस्त प्रतीत

होता है। सर्प की जाति, आंख, पूंछ और रंग रस्सी में मालूम होते हुए भी रस्सी में कुछ नही है। इसी प्रकार उसमें अनेक प्रकार के सर्प, जल धारा, लकड़ी, दरार मालूम होने से एक वस्तु मे अनेक प्रकार के जितने भेद हों, उन सब अज्ञान कल्पित भेद से रस्सी का क्या सम्बन्ध ? जितने भेद हैं वे सब अज्ञान में हैं। अज्ञान से ही भेद ज्ञान है, अधिष्ठान मे भेद ज्ञान नहीं। स्वप्न पदार्थ का जाग्रत् से क्या सम्बन्ध ? स्वप्न की धन प्राप्ति से आज तक कोई श्रीमान् नही हुआ। स्वप्न की तो स्मृति भी होसक्ती है परन्तु अधिष्ठान में वह भी नहीं। स्वप्न और जाग्रत् दोनों ही काल्पनिक हैं, एक सूक्ष्म और दूसरी स्थूल है। इसलिये स्वप्न की स्मृति जाग्रत् मे रहती है क्योंकि दोनो की दिशा एक है परन्तु कूटस्थ तत्त्व ज्ञान स्वरूप और प्रपंच अज्ञान स्वरूप इन दोनों मे कुछ भी साम्यता नहीं है।

मै, तू और सब लोग आकाश को निर्मल कहते हैं। जो किसी को अवकाश देता है उसे आकाश कहते हैं। आकाश विना मेरा, तेरा अथवा और किसी का शरीर कहां रहे ? जगत् आकाश विना नहीं रह सक्ता। मेरी और तेरी जो वार्ता हो रही है वह भी आकाश के प्रताप से हो रही है। वाक् कर्म इन्द्रिय जिससे मैं कह रहा हूँ आकाश तत्त्व की है और तू जिस इन्द्रिय से श्रवण कर रहा है वह भी आकाश तत्त्व की ज्ञानेन्द्रिय है। जैसे मैं तू श्रोता वक्ता कार्य करते हैं वैसे ही संसार मे सब मनुष्यों का व्यवहार इन तत्त्वों से होते हुए भी वे आकाशादि उसे क्यो नहीं जानते ?

शिष्यः—आकाश आदि जड़ हैं इसलिये उनमें जानने की बुद्धि नहीं है। शुद्धात्मा जड़ नहीं है, चैतन्य है इसलिये जितने व्यवहार उसमें होते हैं वे सब उसको जानने चाहियें।

संतः—तू कहता है जड़ में बुद्धि नहीं है इसलिये वह नहीं जान सक्ता, अब तू बता कि शुद्धात्मा मे प्रपंच के जानने की बुद्धि है अथवा नही है। बुद्धि का होना प्रपंच—अज्ञान है, शुद्धात्मा मे उसका अभाव है।

शिष्य (जी मे):—शुद्ध तत्त्व तो इन्द्रियातीत है, बुद्धि से अगम्य है, बुद्धि वाला नहीं है परन्तु बोध स्वरूप है। जब प्रपंच की बुद्धि होती है तब वह प्रपंच को जानती है और प्रपंच वाली बुद्धि जब प्रपंच में दब जाती है तब प्रपंच अज्ञान रहते हुए भी नही जाना जाता। (संत से) महाराज, कुछ समझ मे आने लगा है। ऐसा समझ में आता है कि जानना बुद्धि द्वारा होता है, बुद्धि अज्ञान का कार्य है, इससे शुद्ध आत्मा में न तो अज्ञान है और न अज्ञान का कार्य बुद्धि है। जैसे लौकिक प्रपंच का जानना बुद्धि द्वारा होता है वैसा जानना आत्मा में नहीं होता।

संतः—देख, सूर्य चैतन्य है, प्रकाश द्वारा व्यापक है, परिच्छिन्न है और इन्द्रियों से जाना जाता है इसलिये आत्मा के साथ उसका दृष्टान्त देना युक्त नही है परन्तु सूक्ष्म बुद्धि से दृष्टांत का एक अंश ग्रहण करके देख। सूर्य से सब जगत् का व्यवहार होता है। मनुष्य का जीवन आधार जो प्राण है उस प्राण का

आधार सूर्य है, इसलिये सूर्य का प्रकाश ही संसार के सब व्यवहार का हेतु है, तो भी सूर्य का प्रकाश अथवा सूर्य प्रपंच के व्यवहार का भिन्न भिन्न ज्ञान वाला नहीं है। सूर्य को अज्ञान के काल्पनिक प्रपंच के जानने का कुछ प्रयोजन नहीं है। जब राग द्वेष सहित वृत्ति बहिर्मुख होती है तब बुद्धि जानती है, सूर्य मे वह न होने से वह नहीं जानता। इसी प्रकार आत्मा अपनी महिमा में स्थित है, बुद्धि वाला नहीं है, बोध स्वरूप है और शुद्ध है। व्यवहार अशुद्ध भाव का है इसलिये मुमुक्षुओ को लक्ष पहुंचाने के लिये आत्मा को शास्त्रकारों ने शुद्ध कहा है। वास्तविक वह व्यवहार की शुद्धता और अशुद्धता से विलक्षण है।

श्रुति में शिष्य का प्रश्न है "एक को जानने से सबको जाना जाय वह तत्त्व कौनसा है ?" इस प्रश्न का यह अर्थ नहीं है कि आत्मा को जानने से काल्पनिक भ्रमात्मक प्रपंच को भिन्न भिन्न भाव से जाना जाय। आत्म वस्तु का प्रपंच में भान होना नहीं बनता परन्तु सबकी आद्य धातु वही है। उसको जानने से सब प्रपंच भी वास्तविक एक ब्रह्म स्वरूप है ऐसा जानना ही एक के जानने से सब जाने गये समझना। प्रपंच को प्रपंच के भाव से पृथक् २ जानना ऐसा अर्थ नहीं है। एक मृत्तिका के जानने से जैसे मृत्तिका के सब पात्र वस्तुता से जाने जाते हैं, खांड के खिलोने में खांड के जानने से जैसे सब खिलोने वस्तुता खांड है ऐसा जाना जाता है ऐसे ही एक आत्मा के जानने से सब ब्रह्मांड आत्म स्वरूप है इस प्रकार अर्थ है।

यदि कोई कहे कि "जब परम तत्त्व शुद्धात्मा प्रपंच को नहीं जानता तब तो जिस प्रकार जड़ वस्तुये अन्य वस्तुओं को नहीं जानतीं इसी प्रकार वह भी हुआ," यह बात नही है, जड़ और चैतन्य दो प्रकार की प्रपंच की वस्तुयें हैं, इन दोनों से आत्मा विलक्षण है, उसको प्रापंचिक जड़ अथवा चैतन्य के समान नही कह सक्ते। प्रापंचिक जड़ और चैतन्य का भास उस अधिष्ठान चैतन्य में होता है। वास्तविक आत्मा किस प्रकार का है, यह समझने के लिये आत्म (अपनी) कृपा, ईश्वर कृपा और गुरु कृपा जब तीनों का संयोग होता है तब बोध होता है। आत्मा बोध स्वरूप है, अनुभव से होने वाला ज्ञान अनुभव की अपेक्षा करता है, प्रापंचिक बुद्धि उसे नहीं समझ सक्ती।

यदि कोई कहे कि शुद्ध आत्मा वह ही होना चाहिये जो प्रपंच के सब भिन्न भिन्न भेदों को भिन्न भिन्न भाव से जाने, जो इस प्रकार न जाने तो शुद्धात्मा की विशेषता ही क्या है? इसका यह उत्तर है कि कुंए का मेंढक समुद्र का लक्ष पहुंचाने को असमर्थ हो तो भी समुद्र कूप के समान छोटा नहीं होता। प्रपंच में फंसे, डूबे मनुष्य विशेष करके प्रपंच को ही जनाते हैं। योगी लोग अनेक प्रकार के संयम करके सामान्य मनुष्यों से प्रपंच की विशेष बातों को जान सक्ते हैं। जिसका संयम जितना दृढ़ होता है उतना ही उसमें सिद्धि का विशेष सामर्थ्य होता है। यह विशेषता संयम और अन्त करण की है, ज्ञान का इस विशेषता से कुछ सम्बन्ध नहीं है। विशेषता होते हुए भी सिद्धियां माया—अज्ञान ही हैं,

परिच्छिन्न होने से दुःख का हेतु हैं। योग सिद्धियां प्रपंच का चमत्कार हैं और ज्ञान मार्ग में मुमुक्षुओ को बाधक हैं।

अन्तिम सारांशः-अद्वैत तत्त्व ही शुद्ध आत्मा है, उसमें भेद नहीं है। भेद बुद्धि से जाना जाता है। जानने में ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय रूप त्रिपुटी की आवश्यकता है। जानने मे प्रतियोगी राग द्वेष होता है, बहिर्दृष्टि होती है, इन सब सामग्री से प्रपंच जाना जाता है यह सब सामग्री अद्वैत में अध्यस्त है, अध्यस्त की मिथ्या कल्पना को सत्य अधिष्ठान किस प्रकार और किस प्रयोजन से जाने ?

१२ प्रारब्ध ।

प्रश्नः—प्रारब्ध का ही भोग होता है तो शास्त्र और गुरु उपदेश व्यर्थ हैं, प्रारब्ध से परतंत्र हुआ मनुष्य क्या कर सक्ता है?

उत्तरः—प्रारब्ध भोग, शास्त्र, गुरु उपदेश और परतंत्रता क्या वस्तु है इसको समझ। कर्म तीन प्रकार के होते हैं, संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण। अनेक जन्म के किये हुए कर्मों का फल देने वाले सूक्ष्म संस्कार जो अपक्व होने से वर्तमान समय मे भोग नहीं दे सक्ते उनको सचित कर्म कहते हैं। एक व्यापारी ने धंधा करके बहुत धन एकत्र किया है, उस विशेष धन को उपयोग में लाने की इस समय आवश्यकता नहीं है, तव वह व्यापारी धन को तहखाने मे बंद कर रखता है, उस धन को संचित कहते हैं, इसी प्रकार संचित कर्म हैं। संचित कर्म में से जो संस्कार पक्क होकर बाहर निकल आये हैं और वर्तमान में फल देना आरम्भ कर चुके हैं वे प्रारब्ध कर्म हैं, अथवा सूक्ष्म संचित मे से जो पक्क होकर स्थूल शरीर के भोग का हेतु हुए हैं, वे प्रारब्ध कर्म हैं। व्यापारी ने तहखाने मे से कुछ धन खर्च करने के लिये निकाल लिया है, यह प्रारब्ध है। प्रारब्ध स्थूल शरीर का भोग है, विशेष करके स्थूल शरीर के अन्त के साथ समाप्त होजाता है। तीसरी प्रकार के कर्म क्रियमाण हैं, उनको आगामी भी कहते हैं। प्रारब्ध कर्म के भोग करते समय जो नये मानसिक सूक्ष्म संस्कार

उत्पन्न होते हैं उनको आगामी कहते हैं। संचित और आगामी अपक्क होने से सूक्ष्म हैं और प्रारब्ध पक्क होने से स्थूल भोग वाला है। स्थूल के सम्बन्ध के साथ सुख दुःख का जो भान होता है वह भोग कहलाता है। भोग अन्तःकरण में होता है तो भी स्थूल सम्बन्ध होने के कारण भोग स्थूल कहा जाता है, वह भोग ही प्रारब्ध हैं कर्म की विधि निपेध वताने वाले, उपासना की विधि निपेध दर्शाने वाले और ज्ञान के प्रकाशक ऐसे तीन प्रकार के शास्त्र वाक्य हैं। कर्म और उपासना में क्रिया का सम्बन्ध है। उपदेश भी उसीमें है। उपदेश सूक्ष्म है। प्रारब्ध स्थूल होने से मानसिक सूक्ष्म उपदेश का वाधक नही है इसलिये गुरु शास्त्र का उपदेश सार्थक है। वह उपदेश क्रियमाण-आगामी के लिये है, भोग के लिये नहीं है। अज्ञानावस्था में मनुष्य प्रारब्ध और आगामी का भली प्रकार निर्णय नहीं कर सक्ता। प्रारब्ध की खवर न होने से विना जाने हुए कर्म के सहारे आलसी होकर पड़े रहने से लोग दुष्ट आगामी को उत्पन्न करते हैं। अनेक प्रकार के कर्मों के भाव की कल्पना करना ही आगामी को उत्पन्न करना है। आगामी प्रत्यक्ष हैं, और प्रारब्ध, भोग के प्रथम अप्रत्यक्ष हैं, प्रत्यक्ष को छोड़ अप्रत्यक्ष ग्रहण करना मूर्खता है। "दैव, दैव, आलसी पुकारे" जिसको दैव कहते हैं वह प्रारब्ध है। प्रारब्ध अनिवार्य है। स्वाभाविक रीति से सूक्ष्म से स्थूल रूप में प्रवाहित होने वाला कर्म प्रारब्ध है। सामान्यता से प्रारब्ध का भोग निर्लेपता से होने देना चाहिये, उसमें विशेषता सम्मिलित करने से

अथवा विरुद्धता से नया आगामी उत्पन्न होजाता है। इस प्रकार नया दुष्ट आगामी उत्पन्न न हो और शुभ आगामी उत्पन्न हो इसलिये शास्त्र का उपदेश है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् का अर्जुन प्रति जो उपदेश है उसको विचारना चाहिये। भगवान् को अर्जुन का प्रारब्ध विदित था। जब अर्जुन अपने प्रारब्ध से विरुद्ध प्रकार के भाव को करने लगा तब भगवान् को उपदेश देने का अवसर मिला। अर्जुन को प्रारब्ध बताते हुए भगवान् कहते हैं, गीता अध्याय १८ श्लोक ५९-६० "तू अहंकार को प्राप्त होकर 'मैं नहीं लड़ूंगा' ऐसा मानता है, यह तेरा विचार व्यर्थ है क्योंकि तेरी प्रकृति-प्रारब्ध तुझको युद्ध में प्रवृत्त करेगी, हे अर्जुन, अपने कर्मों के स्वभाव (प्रारब्ध) से बंधा हुआ तू अज्ञान से जो कर्म करना नहीं चाहता वह परवश होकर तुझे करना पड़ेगा।" प्रारब्ध के भोग की क्रिया मे रोक न करना और उसमे अहंकृति-आसक्ति न करना यह कर्मयोग है, इसी का उपदेश अर्जुन को किया गया था। भोग स्थूल है, उपदेश सूक्ष्म है, इसलिये प्रारब्ध भोगते हुए उसमें से शुभ आगामी उत्पन्न होने के लिये शास्त्र का उपदेश है। प्रारब्ध को हटाकर आगामी का उपदेश नहीं है। प्रारब्ध भोगते हुए मन किस भाव में रखना यह शास्त्र का उपदेश है। ऐसा उपदेश ग्रहण करने में अर्जुन परतंत्र न था, प्रारब्ध भोग में ही उसकी परतंत्रता थी। मनुष्य की परतंत्रता प्रारब्ध भोग में होती है, आगामी में नहीं। यदि आगामी में भी परतंत्रता मानी जाय तो जन्म, मरण, संसार-संसार के चक्र का अभाव होना चाहिये, ऐसा होने से गुरु शास्त्र व्यर्थ हो जायंगे।

आगामी जिसमें स्वतंत्रता है उसका सदुपयोग करने से संसारी मनुष्य मोक्ष को प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार आयुर्वेद का सिद्धान्त है कि औषधि रोग की है, मृत्यु की नहीं है। मृत्यु की खबर न होने से औषधि अवश्य करनी चाहिये, औषधि का फल प्रत्यक्ष दीखता है परन्तु वही प्राणांत में निष्फल होती है। इसी प्रकार प्रारब्ध विदित न होने से उपदेश रूप औषधि अवश्य करना चाहिये क्योंकि उसके अनुसार वर्तने से यदि प्रारब्ध का कोई विरुद्ध संस्कार बीच में न हो तो वह अवश्य सार्थक होगा। अपने कर्तव्य से हमको न चूकना चाहिये। उपदेश व्यर्थ नहीं है। यदि विरुद्ध रुकावट के कारण उपदेश का फल तत्क्षण न हो तो भी उसके संस्कार व्यर्थ नही जाते। तीव्रता के अभाव से संस्कार पक न होंय तो भी वे सूक्ष्म में रहते हैं और समय पर बलिष्ट होकर अवश्य फल देते हैं।

तीव्र प्रारब्ध के विरुद्ध जो उपदेश और स्थूल क्रिया होती है वह सिद्ध नहीं होती परन्तु उलटे भाव से वह प्रारब्ध को ही सिद्ध करती है, इसका दृष्टान्त सुनियेः—एक वार देवर्षि घूमते २ यमराज के यहां पहुंचे। यमराज ने आदर सहित उनको अपने पास बैठाया। कुशल समाचार पूछने के पश्चात् उन दोनों में यह बात चीत हुईः—देवर्षि.-हे यमराज! मुझे एक शंका हुई है इसलिये मैं आपके पास आया हूं। आपका व्यवहार बहुत ही विस्तीर्ण है, एक महान् व्यापारी के दुकान की समान है। ब्रह्मांड भर के जीवों के कर्म का लेख आपके यहां रहता है। कर्म के अनुकूल

फल मिलता है। इतना भारी काम होने से कभी २ भूल अवश्य होती होगी! यमराजः—नहीं, भूल कभी नहीं होती। यह दैवी कार्यालय है। जिस प्रकार मनुष्यों के काम मे भूल होती है इस प्रकार यहां के काम में भूल नहीं होती। भूल अज्ञान से होती है। जहां अज्ञान निवृत्त हुआ है वहां भूल नहीं होती। यह तो आप जानते ही हैं कि मैं जीवन्मुक्त अधिकारी हूँ। देवर्षि.—जब तक शरीर का प्रादुर्भाव है तब तक भूल होना सम्भव है। मैं आप से पूछता हूं, आप बहुत समय से यम पद पर आरूढ़ हैं। कभी आपको किसी बात में मोह होने का प्रसंग आया है या नहीं? यमराजः—हां, जब मैं प्रथम ही इस पद पर आया था तब थोड़े दिन पश्चात् मैं जीवो के मरण की वही देख रहा था उसमें एक असम्भवित मरण होने का प्रसंग मेरे देखने में आया। कैलाश पर्वत के ऊपर जहां सदाशिव विराजते हैं उसके पास एक पहाड़ की गुफा में एक अंधा बिलाव रहता है उसकी मृत्यु आ पहुंची है। बीस घंटे के भीतर मृत्यु है और एक लंगड़े रीछ से उसका मृत्यु होना है, वह रीछ वहां से पच्चीस हजार कोस दूर है, इतने थोड़े समय मे लगड़ा रीछ उसके पास नहीं पहुंच सक्ता और अन्धा बिलाव भी रीछ के पास किसी प्रकार नहीं जा सक्ता। यह प्रसंग देख कर मुझे मोह उत्पन्न हुआ कि बिलाव को शंकर ने अमर तो नही कर दिया है, इसकी तलाश करना चाहिये। मैं नया ही यम बना था इसलिये ठीक कार्य न होने से मुझे पद भ्रष्ट होने का डर था इसलिये मैं वहां से चल कर कैलाश पर शंकर के पास पहुँचा. और प्रणाम करके बोला "हे महेश, मैं आप से

यह पूछने आया हूँ कि आपके स्थान के पास जो एक गुफा है, वहां एक अंधा विलाव रहता है वह आपकी प्रसादी खाकर जी रहा है, उसका मृत्यु कल दोपहर बाद है, संयोग विकट है, मृत्यु होना असम्भव है। आपने इस विलाव को अमर तो नहीं कर दिया है?" महादेव स्मित वचन से बोले "अरे यम, तू क्यों भूलता है? मैं किसको अमर करता हूँ? किसको मारता हूँ? जीवों को जो फल प्राप्त होता है वह उनके कर्मों के अनुसार प्राप्त होता है। तू क्यों घबड़ाता है? संयोग होने वाले कार्य को करता है, तू मोह को मत प्राप्त हो। तू यमराज के पद पर होकर भी कार्य करने वाला नहीं है! कार्य करने और कराने वाले सब संस्कारों के फल हैं। अज्ञानी यथार्थ न समझने से मोह को प्राप्त होता है, तू ज्ञानी होकर मुझसे पूछने आया है यह देखकर मुझे आश्चर्य होता है!" मैंने कहा "महाराज, आपके वचनों से मुझे शान्ति प्राप्त हुई।" ऐसा कहकर और आज्ञा लेकर मैं अपने स्थान पर लौट आया। हे देवर्षि, अब जैसा प्रसंग हुआ सो सुन; मेरी और महादेवजी की जो वार्ता हुई वह विलाव ने सुनली और अपना मरण सुनकर वह दुःखी हुआ। कभी २ विष्णु कैलाश पर शिवजी से मिलने आया करते थे, जब विष्णुजी महादेवजी के पास बैठा करते थे। तब गरुड़जी विलाव के पास बैठा करते थे। इस प्रकार गरुड़जी और विलाव में मित्रता होगई थी। मेरे चले आने के पश्चात् थोड़ी देर में वहां विष्णुजी आये। गरुड़ विष्णुजी को महादेवजी के पास बैठा कर विलाव के पास जाकर बैठे।

बिलाव को उदास देखकर गरुड़जी ने कहा "मित्र! आज उदास क्यों है ?" बिलाव ने कहा "मित्र! कल मेरा मृत्यु होने वाला है! यमराज और महादेवजी मे वार्ता हुई थी उससे मुझे मालूम हो गया है।" गरुड़जी ने कहा "मित्र! मैं तेरी मृत्यु नहीं होने दूंगा।" बिलाव ने कहा "आप समर्थ हो परन्तु मुझे ऐसा मालूम होता है कि आज मेरा और आपका अन्तिम सम्मिलन है।" गरुड़जी ने कहा "मित्र! दुखी मत हो, कल दोपहर को मैं विष्णुजी को लेकर आऊंगा, उनको महादेवजी के पास बैठाकर तुझको अपने तीव्र वेग से पच्चीस हजार मील दूर पर ऐसी गुफा में रख आऊंगा जहां तुझे मारने वाला कोई न होगा।" ऐसा कहकर गरुड़जी चले गये और दूसरे दिन आकर बहुत दूर दूसरे द्वीप में जाकर बिलाव को एक गुफा में रख आये। उसी गुफा के भीतर वह लंगड़ा रीछ रहता था, ज्यों ही गरुड़ पहुंचे और बिलाव होने की गंध रीछ को मालूम हुई त्यों ही वह बाहर आया और बिलाव को उसने मार डाला। सच कहा है, दोहाः—होवे जस भवतव्यता, तैसी मिले सहाय। आप न आवे ताहि पे ताहि तहां ले जाय॥ हे देवर्षि, इस प्रकार एक वार मुझे शंका हुई थी; इसके पश्चात् फिर मुझे शंका न हुई। बहुत काम होने पर भी सब काम ठीक होता रहता है।

ऊपर के दृष्टान्त में प्रारब्ध विरुद्ध विचार-प्रयत्न क्रिया की गई, वह सार्थक न हुई। शास्त्रकारो का इस प्रकार की क्रियाके लिये उपदेश नहीं है उपदेश आगामी सूक्ष्म कर्म रूप है और स्थूल

शरीर के सहारे से होता है। शास्त्रकारो को यह विदित है कि हमारे उपदेश का प्रभाव सूक्ष्म भाव रूप अन्तःकरण में होता है। अज्ञानी मनुष्य सूक्ष्म भावको समझ नहीं सक्ते, इसलिये स्थूल क्रिया सहित उपदेश करना उन लोगों को हितकारक होगा। ऐसा समझकर स्थूल क्रिया सहित उपदेश किया गया है। यदि स्थूल क्रिया प्रारब्ध विरुद्ध होगी तो न हो सकेगी परन्तु शुभ सूक्ष्म भाव में स्थूल प्रारब्ध बाधक न होगा। विशेष करके उपदेश सूक्ष्म के लिये ही होता है। कदाचित् वह उपदेश तीव्र वेग सहित ग्रहण किया जाय और प्रारब्ध रूप स्थूल और सूक्ष्म किसी कर्म की भी उसे रोकने की सामर्थ्य न हो और उपदेश के अनुकूल संचित में से सूक्ष्म कर्म मिल जाय तो वह कर्म तत्क्षण पक होकर स्थूल भाव मे प्रारब्ध वन जाता है इस कारण से भी शास्त्रकारो का यह कथन नही है कि हमारा उपदेश मात्र सूक्ष्म के लिये अथवा स्थूल के लिये ही है। इससे सिद्ध होता है कि स्थूल प्रारब्ध सामान्यता से उपदेश रूप सूक्ष्म के विरुद्ध नहीं है।

स्वरूप के प्रकाशक शास्त्र की वात ही और है। स्वरूप का प्रकाश ज्ञान स्वरूप है, उसमे स्थूल, सूक्ष्म की गम नहीं है इसलिये उसका विरोधी कोई नहीं है। ज्ञान प्राप्ति के लिये प्रत्येक को स्वंतत्रता है। कर्म ज्ञान का विरोधी नहीं है इसलिये यह ज्ञान मे रुकावट नहीं कर सक्ता। यदि प्रारब्ध कर्म ज्ञान का विरोधी होता तो अनेक जीवन्मुक्त महात्मा जो हुए हैं, अब हैं और होते हैं वे न होते। प्रारब्ध कर्म के भोग के कारण किसी को भी ज्ञान प्राप्ति के निमित्त शिथिल नहीं होना चाहिये,

पूर्ण उत्साह से वैराग्य विवेक में लग जाना चाहिये। किसी प्रकार के भी कर्म ज्ञान में वाधक नहीं हैं। ज्ञान अंतःकरण मे होता है, यदि कर्मों के कारण अंतःकरण मलिन हो तो ज्ञान प्राप्ति असम्भवित है इससे सिद्ध होता है कि कर्म ज्ञान मे वाधक नही है परन्तु अंतःकरण की अशुद्धि वाधक है और वह पूर्व योग से होती है जिसकी मनुष्यों को खवर नही हो सक्ती, जिसकी खवर नही है उसके भरोसे वैठकर ज्ञान प्राप्ति के उद्यम से नहीं हटना चाहिये किन्तु प्रवलता के साथ पूर्ण वैराग्य सहित परमपद की प्राप्ति का यत्न करना चाहिये। यदि पूर्ण तीव्रता से यत्न किया जाय तो अंतःकरण मे चाहे जितनी मलिनता हो सव दूर हो जायगी। प्रयत्न करने मे यह मंत्र याद रखना चाहिये "कर्मभोग ज्ञान का विरोधी नहीं है, मैं पुरुषार्थ-प्रयत्न करके अवश्य ज्ञान प्राप्त करलूँगा।"

कर्म की गहनता—सूक्ष्मता वहुत है। अभ्यासियों को प्रारब्ध के भोग का विचार न करना चाहिये। शास्त्र का उपदेश वहुत सूक्ष्म होने से सीधा-बिना सद्गुरु ग्रहण करने से पूर्ण फल नहीं देता। कदाचित् योग्यता न होने से, अथवा विरुद्धाचरण होने से विरुद्ध फल देता है। इसलिये सद्गुरु द्वारा ग्रहण करना चाहिये। सद्गुरु योग्यता और संयोग के अनुसार जो उपदेश देते हैं वह कल्याण कारक होता है।

जीव पूर्ण परतंत्र नहीं है और पूर्ण स्वतंत्र भी नहीं है। जिस अंश में जीव की परतंत्रता है उसमे किया हुआ वर्ताव

सफल नहीं होता। सृष्टि भोग पुत्र धन स्त्री और शरीरादि में जीवों का भाव होता है उन मे से जो पक होकर घन भाव को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् जीव सृष्टि मे से निकल कर ईश्वर सृष्टि में आ जाते हैं उन में जीव की परतंत्रता हैं, जिस से यह सिद्ध होता है कि तीन कर्मों में से दो जो सचित और आगामी सूक्ष्म हैं उन मे जीव की स्वतंत्रता है और मात्र स्थूल प्रारब्ध भोगादिक में जीव की परतंत्रता है। इसीलिये ज्ञानियों को ज्ञान होने के पश्चात् भी शरीर का भोग संसारी मनुष्यों के समान ही देखने मे आता है। शास्त्र डंके की चोट कहते हैं "आगामी-परम पुरुषार्थ में जीव की संपूर्ण स्वतंत्रता है, हे मनुष्यो! तुमको जो योग्यता और स्वतंत्रता मिली है उसके सदुपयोग द्वारा अपना परम कल्याण करलो।"

प्रारब्ध के अविरोध वाली क्रिया भी किस प्रकार कर सक्ते हैं इसके समझने के लिये एक दृष्टांत सुनिये। इस दृष्टान्त में प्रारब्ध का विदित होना मुख्य बात है और प्रारब्ध में हानि न होते हुए उपदेश से किस प्रकार कार्य लेते हैं यह देखना है।

एक मनुष्य बहुत ही गरीब था। वह स्वभाव से शान्त और सामान्य नीति वाला था, अधर्म की तरफ उसकी रुचि नहीं थी, ऐसा होने पर भी निर्धन होने के कारण वह बहुत दुखी था। जैसे आज कल देखने मे आता है कि नीति वाले को भूखा मरना पड़ता है और अधर्मी मौज उड़ाते हैं इसी प्रकार नीतिवान् होकर भी वह दुःख भोगता था। उसके कुटुम्बी भी धन के

अभाव के कारण उसको तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे। कोई उसका सहायक न था। विचारा न तो कुछ पढ़ने लिखने पाया और न उसका विवाह हुआ, खुरपी के सहारे खेत में मजदूरी करके दिन व्यतीत किया करता था, कर्महीन होने से कभी २ मजदूरी भी नहीं मिलती थी। अंत में मजदूरी से उदास होकर उसने विचार किया कि संसारिक सुख मिलता नहीं और दुःख भोगना पड़ता है, क्या करूं? सब छोड़कर साधु हो जाऊं तो अच्छा हो। इस प्रकार सोचकर उसने अपनी सर्व समृद्धि जो मात्र खुरपी थी, ब्राह्मण को दान करदी और वह साधु बन गया। वह तो साधु बन गया परन्तु उसका प्रारब्ध साधु न बना! मांग कर खाने से खाने की आपत्ति पहले से कुछ कम हो गई। एक दिन उसने विचार किया, इस प्रकार भटकना और खाने के लिये आयुष्य खोना ठीक नहीं है, कुछ तपश्चर्या करनी चाहिये। वस्ती से मांगकर खाना छोड़कर वह वन में एक बेड़ के नीचे जा आसन लगा कर बैठ गया और सच्चा झूठा जैसा कुछ आता था वैसा राम नाम का जाप करने लगा। जप में उसे श्रद्धा थी, दो चार दिन खाने का कष्ट सहन करना पड़ा, पीछे ईश्वराज्ञा से वहां के जिमींदार के यहां से दो रोटी और नमक आने लगा। दुपहर को जिमींदार का आदमी आकर रोटी और नमक नित्य प्रति देजाया करता था। इस प्रकार बारह वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन एक राजा जो अपना राज पाट छोड़कर साधु हुआ था, वहां आया। उसने खुरपी वाले

साधु के पास आसन जमाना चाहा तब उन दोनों की यह बात चीत हुई:-खुरपी वाला साधु:-तू कब साधु हुआ है ? राजा:-कल। साधु:-तब तू मेरे पास बैठने के योग्य नहीं है। मैं बारह वर्ष का साधु हूं। तू अपना स्थान किसी और स्थान पर जमाले। राजा वहां से चल के थोड़ी दूर पर पेड़ की योग्य छाया देखकर बैठ गया। राजा के शरीर मे भभूति लगी हुई थी तो भी राजतेज छुपता न था। जब जिमीदार को खबर हुई कि एक राजा राज-पाट छोड़कर साधु बना है तब उसने उसके भोजन के लिये चांदी के थाल में अनेक प्रकार की मिठाई भेजी ? खुरपी वाले साधु ने विचार किया "उसे कौन भोजन देगा। मैं बहुत वर्षों से यहा हूँ, तब मेरे लिये मात्र दो रोटी आती हैं! नया साधु क्या खायगा ? देखना चाहिये।" ऐसा विचार कर वह टहलता हुआ उसके पास पहुंचा और उसे चांदी के थाल मे अनेक प्रकार के मिष्टान्न खाते हुए देखकर उस पर ईर्षा हुई। जिस जिमीदार के यहां से उसे दो रोटी रोज मिलती थीं उसीके यहां से नये साधु के लिये भोजन आता था। ईर्षा से जलता हुआ वह अपने स्थान पर पहुँचा तो वहां नित्य नियम के अनुसार दो रोटी और नमक लेकर मनुष्य आया हुआ देखकर उसने क्रोधित होकर कहा "मैं रोटी नहीं लूँगा। कल के बने हुए साधु को मिष्टान्न और बारह वर्ष के साधु को दो रोटी।" रोटी लाने वाले ने कहा, महाराज, मालिक की यही आज्ञा है। साधु ने कहा रोटी लौटा लेजा। मनुष्य रोटी लेकर लौट गया।

सायंकाल को जिमींदार वहां आया और साधु के साथ यह वार्ता हुई—जिमींदार:—आज रोटी क्यो फेर दी ? साधु:—कल के बने हुए साधु को मिठाई और मुझको रोटी ! जिमींदार:—ऐसा ही है, तुम एक खुरपी छोड़कर साधु हुए हो, वह राज छोड़कर साधु हुआ है। तुम्हारा प्रारब्ध कंगाली का है, उसका राज का है। साधु को यह बात बुरी मालूम हुई जिमींदार की रोटी लेना उसने छोड़ दिया और उग्र तपश्चर्य्या करना आरम्भ किया, सात दिन तक कुछ न खाया। अन्त में इष्ट ने प्रसन्न होकर दर्शन दिये और दोनो में यह बात चीत हुई—इष्टदेव:—तू ऐसी कठिन तपश्चर्य्या किस लिये करता है ? साधु:—मुझे खाने पीने की आपत्ति होती है। जन्म से दु ख भोगता रहा हूँ, साधु हुआ तब भी कुछ सुख न मिला ! इष्टदेव:—मनुष्य मात्र अपने पूर्व कर्मानुसार भोग प्राप्त करते हैं, प्रारब्ध के निश्चित भोग में कोई वृद्धि नहीं कर सक्ता। साधु:—क्या मेरा प्रारब्ध ऐसा ही है ? इष्टदेव:—तेरी आयु बहुत है और आयुष्यभर के भोग के निमित्त १००) रु० है विशेष भोग तुझे कहां से मिले ? यदि अच्छा २ भोजन तुझे खाने का दे दिया जाय तो आगे क्या दिया जाय ? साधु:—(चकित होकर) मुझे एक साथ सौ रुपये दे दीजिये। इष्टदेव:—अच्छा, ऐसा हो जायगा परन्तु फिर तुझे एक धेला भी नहीं मिलेगा। साधु:—कुछ चिन्ता नही। इष्टदेव:—(प्रसन्न होकर) सौ रुपये तुझे मिल जांयगे, एक बात और सुन, सौ रुपये लेकर तू राजा साधु के पास जाकर सब बात कहना, जैसी युक्ति वह बतावे उस प्रकार काम करना।

इष्टदेव ने जिमींदार को प्रेरणा किया, उसने सौ रुपये खुरपी वाले साधु के पास भेज दिये। साधु प्रसन्न होकर राजा साधु के पास गया और सब वृत्तांत सुनाया। राजा साधु ने कहा, तू सौ रुपये का क्या करेगा? खुरपी वाले साधु ने कहा, आप कहो वैसे करूं? राजा ने कहा, तू बाजार जाकर सब रुपयों का खाने पीने का सामान ले आ और सबको भोजनों का नौता दे आ। भोजन बनाकर सबको खिला दे, सबके साथ तू भी भोजन कर, जो कुछ बचे उसको भी सबको बांट दे। रात्रि को न तो भोजन बचा कर रखना न एक पैसा रखना। खुरपी वाले साधु ने शिक्षा मानकर इसी प्रकार किया। ऐसा करने से आसपास के ग्रामों में उसकी बड़ी वाह वाह हुई। दूसरे दिन एक दूसरे जिमींदार ने आकर सौ रुपये दिये। उनका भी दूसरे दिन भंडारा हुआ। तीसरे दिन तीसरे ने सौ रुपये दिये इसी प्रकार लोग सौ रुपये रोज दे जाया करें और भंडारा होजाया करे। शुद्ध भाव से भंडारा करते हुए खुरपी वाले साधु की सम्पूर्ण आयु बीत गई। प्रारब्ध के सौ रुपये केवल साधु के भोग के लिये थे, दूसरों की मजदूरी में वह भोजन पाता रहा और सौ रुपये ज्यों के त्यों बने रहे। राजा साधु और इष्टदेव की कृपा से इस प्रकार वह सुखी हुआ।

इस दृष्टांत से देखा जाता है कि प्रारब्ध मे बाधक न होते हुए युक्ति पूर्वक जो कार्य कर सक्ते हैं वही पुरुषार्थ है। उस पुरुषार्थ को जब आत्मिक भाव में लगाते हैं तब परम पुरुषार्थ कहा जाता है।

आज कल मनुष्य प्रारब्ध और पुरुषार्थ को उलटे हिसाब से समझ रहे हैं इसीसे दोनो ही ठीक नहीं होते। प्रारब्ध मे पुरुषार्थ समझकर दौड़ते हैं और पुरुषार्थ को प्रारब्ध पर छोड़ देते हैं। सद्‌गुरु की सहायता से उन दोनों को ठीक २ समझकर वर्तना चाहिये।

अन्तिम सारांशः—प्रारब्ध का वेग स्थूल है। शास्त्र और गुरु के उपदेश सूक्ष्म हैं। प्रारब्ध मे जीव परतन्त्र है, उपदेश ग्रहण करने में स्वतंत्र है। जिस अंश में प्रारब्ध अविरोधी उपदेश होसक्ता है उसमें शास्त्र और गुरु का उपदेश सार्थक है।

१३—जीवका शरीर से निकलना ।

प्रश्नः—जीव मरने के समय किस प्रकार जाता है ?

उत्तरः—प्रथम यह विचार करना चाहिये कि मरने वाला कौन है ? तेरे प्रश्न से यह विदित होता है कि जीव निकलने वाला है, मरने वाला नहीं है। शरीर की तीन अवस्था हैं १ जाग्रत् २ स्वप्न और ३ सुषुप्ति। ये तीनों अवस्थाये क्रम से १ स्थूल, २ सूक्ष्म और ३ कारण शरीर की हैं। उन तीनों शरीरो में से स्थूल शरीर नाशवान् है, सूक्ष्म और कारण शरीर का नाश नहीं होता, वे अत्यन्त सूक्ष्म और सूक्ष्म तर होने से स्थूल दृष्टि का विषय नहीं हैं। पंचीकृत पंच महाभूत उनका नाश नहीं कर सक्ते। उन दोनो शरीरो का नाश ज्ञान के सिवाय किसी प्रकार नहीं होता। जन्म और मरण मात्र स्थूल शरीर का हुआ करता है। कारण शरीर आवरण का है और सूक्ष्म शरीर वासनामय है। जो २ वासना स्थूल होती जाती हैं उनके भोग निमित्त स्थूल शरीर होता है। सूक्ष्म शरीर की वासनायें बदला करती हैं किन्तु स्थूल शरीर के साथ उसका नाश नहीं होता। चौदह लोक में भूत प्राणियों का शरीर पंच भूतो का बना हुआ एक ही प्रकार का होता है। सब के स्थूल शरीरों में तत्त्वों की न्यूनाधिकता होती है। सूक्ष्म शरीर मे स्थूल पदार्थों की आड़ नहीं होती। गमनागमन करने वाला सूक्ष्म शरीर है। स्थूल और सूक्ष्म का कारण कारण शरीर है, वह सूक्ष्म शरीर से कभी भिन्न नहीं

होता। ज्ञान होने पर सूक्ष्म और कारण दोनो शरीरों का नाश हों जाता है क्योकि वे दोनों अज्ञान के हैं।

अब विचार करने से शंका होती है कि सूक्ष्म शरीर माया का जड़ होने के कारण स्वयं गमना गमन नहीं कर सक्ता क्योकि जड़ में गमनागमन की शक्ति नहीं होती। इसका उत्तर यह है:- यद्यपि यह शरीर जड़ है तो भी चैतन्य सब स्थानों में व्यापक होने से उसमें है, उस चैतन्य का विशेष प्रकाश-चिदाभास उसमे पड़ता है और उसकी सत्ता से वह (सूक्ष्म शरीर) गमनागमन करने को समर्थ होता है, वही जीव कहलाता है, उसका ही जाना आना होता है। वेदान्त मे जीव की संज्ञा इस प्रकार हैं- १ व्यापक चैतन्य कूटस्थ, २ उसका आभास-चिदाभास और ३ जिस अज्ञान में आभास पड़ता है वह अज्ञान। अथवा सहज समझने के लिये आत्मा, अंत.करण और अंत.करण मे पड़ा हुआ आभास ये तीनों मिलकर जीव है। जीव मे व्यापक चैतन्य जो उपाधि मे होकर भी शुद्ध है वह कूटस्थ है और जाने आने से रहित है। जैसे मटके में रहा हुआ आकाश, मटके को एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर लेजाकर रखने पर भी मटके वाला आकाश एक स्थान से हटकर दूसरे स्थान मे नहीं जाता। तुच्छ बुद्धि वालों को आकाश मटके के साथ जाता हुआ जान पड़ता है परन्तु आकाश सब स्थान में भरा हुआ होने से उसका आना जाना नहीं हो सक्ता।

स्थूल शरीर भोग भोगने का स्थान है, जीवात्मा उसमे टिक कर भोग भोगता है। जिस प्रकार एक मनुष्य एक मकान

में रहकर अपना धंधा रोजगार करता है और जब मकान पुराना होकर टूट जाता है अथता और किसी कारण से रहने योग्य नहीं रहता तब उस मकान में रहने वाला मनुष्य उस मकान को खाली करके दूसरे मकान में चला जाता है इसी प्रकार जब स्थूल शरीर जीर्ण हो जाता है अथवा और किसी कारण से रहने योग्य नहीं रहता तब जीव उस शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में जाता है। पूर्व शरीर का छोड़ना मरण है और नवीन शरीर धारण करना जन्म है। जिस क्रम से स्थूल शरीर प्राप्त हुआ है उसके उलटे क्रम से शरीर छोड़ा जाता है और सूक्ष्म-कारण शरीर को प्राप्त होकर उनमें से फिर स्थूल शरीर की उत्पत्ति होती है।

मरने वाले मनुष्य चार प्रकार के समझो:—१ मोक्ष को को प्राप्त होने वाले २ उत्तरायण (देव यान) मार्ग से ब्रह्म लोक में पहुँचने वाले ३ दक्षिणायण (पितृ यान) मार्ग से स्वर्ग लोक मे जाने वाले ४ यमयातना (नरक) मे जाने वाले। इन चारों में से मोक्ष को प्राप्त होने वालो की गति (गमन) असम्भवित है क्योंकि इधर से उधर ले जाने वाली कर्म की वासना है, जो अज्ञान से होती है। जिसका अज्ञान समूल कार्य सहित, निवृत्त हो गया है उसका ले जाने वाला कोई नहीं रहता। जाने आने वाले सूक्ष्म शरीर का ज्ञान की प्रचंड अग्नि से नाश हो जाता है इसलिये मोक्ष को प्राप्त होने वाले का कहीं आना जाना नहीं होता। जीव में जितना उपाधि अंश है, और जिस कारण से वह जगत्

में जीवित बना रहता है जब वे सब उपाधियां निवृत्त हो जाती हैं और वह अपने आद्य स्वरूप सर्वव्यापक में लय हो जाती हैं तब जीव का जाना आना कहीं नहीं होता।

ब्रह्मलोक में जाने वालों के कर्म शुभ होते हैं और शुभ कर्मों के साथ ज्ञान के संस्कार भी होते हैं इसलिये उनके शुभ कर्म उन्हें ब्रह्मलोक में ले जाते हैं, वहां ज्ञानके संस्कारों की उपदेश और प्रयत्न बिना पूर्ति होकर वे मोक्ष को प्राप्त होते हैं और फिर उन्हे जन्म धारण करने की आवश्यकता नहीं रहती।

तीसरे स्वर्ग मे जाने वालों का मात्र शुभ कर्म होता है वे अपने शुभ कर्मों का फल स्वर्ग में जाकर भोगते हैं और भोग समाप्त होने पर वहां से गिरकर जिस क्रम से गये थे उसी क्रमसे अथवा अन्य क्रम से पृथ्वी लोक मे आकर जन्म धारण करते हैं। वे अज्ञान के कारण संसार चक्र से नहीं निकल सक्ते, कभी ऊपर और कभी नीचे जाते रहते हैं।

चौथे नीच कर्म करने वाले हैं, शुभ कर्म न करने से उच्च अर्थात् दिव्य लोक उनको प्राप्त नहीं होता इसीलिये गीता आदिक शास्त्रों और उपनिषदो में उनकी गति का वर्णन नहीं है। ऐसे लोग यमयातना (नरक) मे जाते हैं अर्थात् नीच योनियों को प्राप्त होते हैं। उनमें अशुभ कर्मों की विशेषता होती है। उनमें न तो विशेष शुभ कर्म होते हैं और न ज्ञान ही होता है इसलिये ऊपर गये बिना ही उनका जन्म होता है।

चारों प्रकार के मनुष्यों का शरीर छोडने का क्रम एक ही प्रकार है। जब मनुष्य शरीर छोड़ता है तब प्रथम जितनी स्थूल इन्द्रियां हैं एक मे एक लय होकर स्थूलता को छोड़ती हुई सूक्ष्म मे स्थित होती हैं। सब इन्द्रियों का वाक् इन्द्रिय मे समावेश होता है। जब तक सब इन्द्रियां वाक् इन्द्रिय मे सम्मिलित होकर वाक् इन्द्रिय सूक्ष्मता को प्राप्त नहीं होती तब तक शरीर की सब चेष्टाये निवृत्त होने पर भी मुख बोलता रहता है जब तक इन्द्रियां लय नहीं होती तब तक हाथ पैर आदिक भी चेष्टा करते रहते हैं। मरने के अन्तिम सन्निपात में यदि यथार्थ रीति से देखा जाय तो ऐसा होता है कि किसी २ की थोडी इन्द्रियां लय होजाती हैं और कुछ लय नहीं होतीं और कभी यह नहीं जाना जाता कि कौन २ इन्द्रिय क्रमानुसार लय हुई और कौनसी लय नहीं हुई, जब सब इन्द्रियां स्थूल सम्बन्ध छोडकर सूक्ष्म में एकत्र होजाती हैं तब लोग कहते हैं बेहोश पडा है, अब इसको शरीर आदिक का भान नहीं है। इस अवस्था मे प्राणी स्थूल शरीर के भाव से रहित होकर आंतर-सूक्ष्म में भाव वाला होता है। किसी २ की ऐसी अवस्था विशेष समय तक रहती है और किसी की विशेष नहीं रहती, इस अवस्था में प्राणी सूक्ष्म शरीर में होता है परंतु इस अवस्था का सूक्ष्म शरीर, स्वप्नावस्था के सूक्ष्म शरीर से विलक्षण होता है। स्वप्नावस्था का सूक्ष्म शरीर स्थूल सम्बन्ध होने पर भी स्थूल शरीर के भान रहित होता है और मरणावस्था के सूक्ष्म शरीर का स्थूल शरीर से न तो सम्बन्ध होता है और न उसे स्थूल शरीर का भान

ही होता है। इस समय उसका कारण शरीर भी सुषुप्ति के कारण शरीर से विलक्षण होता है। सुषुप्ति का कारण शरीर स्थूल सूक्ष्म शरीरो से सम्बन्ध होते हुए स्थूल सूक्ष्म के भान रहित होता है परंतु मरणावस्था का कारण शरीर स्थूल शरीर और उसके भाव वाले सूक्ष्म शरीर से सम्बन्ध रहित होता है। शरीर के साथ प्राण भी सूक्ष्म होता जाता है, इसके पश्चात् मरण मूर्छा होती है अर्थात् वह अवस्था मूर्छा के समान होती है। मूर्छा के पीछे होश आता है परन्तु यह होश दूसरे शरीर के सम्बन्ध वाला होता है अर्थात् भावी शरीर के कारण में आता है, फिर सूक्ष्म में आता है, इस समय अनेक जन्मों के संचित और आगामी कर्म सब सामने आते हैं, उनमें से जो विशेष पक गये हैं—जिनमें विशेष आसक्ति हैं वे प्रथम निकलते हैं पश्चात् उनसे हलके, फिर उनसे भी हलके इस प्रकार क्रम क्रम से सामने आते हैं जो प्रथम निकलते हैं, वे बलिष्ट होते हैं। उनको साथ लेकर जीव चल देता है। वे कर्म ईश्वर के नियमानुसार जो जो संयोग जीव को प्राप्त होना चाहिये प्राप्त करा देते हैं, कर्म रूप दूत से प्रेरित जीव कर्म के साथ स्थिति को प्राप्त होता हैं जिस प्रकार के कर्म होते हैं उसी प्रकार के स्थूल शरीर में जन्म होता है। जिस प्रकार नाटक के अनेक परदे दृष्टि के सामने घूमते हैं इसी प्रकार संस्कारों के सब दृश्य दृष्टि के सामने आते हैं। कई जीवात्मा जो अधर्मी और तीव्र अशुभ वासना वाले होते हैं वे शीघ्र जन्म धारण नहीं करते परन्तु शरीर छोड़ने के पश्चात् प्रेत योनियो में कुछ समय तक भटकते फिरते हैं और जब आसक्ति के कारण दुःख भोगते

हुए कुछ काल व्यतीत होने पर आसक्ति कम होती है तब कर्मानुसार शरीर पाते हैं।

जैसे एक मनुष्य बहुत वर्षों से एक मकान में रहता है। किसी समय राज कोप अथवा और किसी आपत्ति से जब उस को वह मकान छोड़ना पड़ता है तब बहुत दिनों से उस मकान में रहने से उस मकान का छोड़ना उसे बुरा मालूम होता है और नये मकान की खबर न होने से घबड़ाता है इसी प्रकार जीव की मूर्छा समझो। अब सोचना चाहिये कि मकान छोड़ने वाला प्रथम कौनसी वस्तु लेगा? जिसको वह बहुत दामों की समझता है अथवा जिसके ऊपर उसको विशेष प्रेम है उसी को प्रथम लेता है और संभाल कर ले जाता है; कोई कम दाम की होते हुए भी जिन वस्तुओ को और से अधिक दाम वाली समझता है उनको अपने भाई बान्धवों को ले जाने को देता है, तिजोरी आदिक भारी वस्तुओं को मजदूरों से उठवाकर आप उनके साथ रहता है। इस प्रकार पुराने मकान से सामान ले जाता है अथवा यों समझो कि पास के दो तीन मकान छोड़कर पीछे के एक मकान में आग लग जाय तो जिस प्रकार एक आदमी अपना सामान निकाल कर के जाता है इसी प्रकार मरने वाला जीव अपने सब संस्कार रूप सामान शरीर छोडने के समय साथ ले जाता है, जो आग लगने पर दूसरे मकान में जाने का अवसर न मिले तो मार्ग में सामान एकत्र करके बैठ जाता है, और जब तक दूसरे मकान का प्रबन्ध न हो तब तक

एक दो दिन तक मार्ग में ही रहना पड़ता है। इस प्रकार मार्ग में रहना प्रेत योनियो में रहना समझो। अथवा यदि कोई कलकत्ते से मकान छोड़कर बम्बई जाय तो मार्ग का समय विशेष होता है। पटना जाने में इतना समय नहीं लगता इसी प्रकार मरने के पश्चात् कभी जन्म होने में विलम्ब होता है और कभी शीघ्र जन्म हो जाता है। यह बात प्रत्यक्ष स्थूल मे मालूम नहीं हो सक्ती इसी कारण से शास्त्रकारों ने श्राद्धादिक क्रिया का समय सामान्यता से एक वर्ष रक्खा है।

जब एक स्थान से दूसरे स्थान की बदली होती है तब सब सामान व्यवस्था पूर्वक रक्खा जाता है। जो सामान नित्य काम में आने वाला होता है वह इस प्रकार रक्खा जाता है कि शीघ्र मिल जाय और दो वर्ष मे काम में आने वाला सामान ऐसे स्थान पर रक्खा जाता है कि कभी २ मालूम भी नहीं रहता कि वह सामान है भी या नही। इसी प्रकार सब कर्मों के दो भाग हो जाते है एक शीघ्र काम में आने वाले और दूसरे देर में काम मे आने वाले; जो शीघ्र ही काम में आने वाले कर्म हैं वे ही प्रारब्ध हैं और गुप्त रूप से रहकर देर में काम में आने वाले कर्म संचित हैं। जब वे पककर फल देने को प्रवृत्त होगे तब उनकी संज्ञा प्रारब्ध हो जायगी। जिस समय शरीर प्राप्त होकर पके हुए कर्मों का भोग होता है उस समय भोग के साथ जो आसक्ति होती है वह ही आगामी कर्म रूप हो जाती है। जब तक शरीर है तब तक वे कर्म आगामी कहलाते हैं और जब

सब कर्म एकत्र हो जाते हैं तब उन में से पके हुए कर्म प्रारब्ध मे परिवर्तन हो जाते हैं और बिना पके हुए संचित होकर पड़े रहते हैं इस प्रकार का कर्म और शरीर का परिवर्तन जन्मने वालों का होता है।

जिसको उत्तरायण मार्ग कहते हैं उसका दूसरा नाम देवयान तथा अर्चिरादि मार्ग भी है। शुभ कर्म और ज्ञान के संस्कार वाले को यह गति प्राप्त होती हैं। इसको मार्ग या संसृति भी कहते हैं। उत्तर की तरफ जाने का मार्ग होने से उत्तरायण कहलाता है। उत्तर शुभ होता है, दक्षिण अशुभ होता है, इसलिये उत्तरायण की अपेक्षा दक्षिणायन हलका है। उत्तरायन में मरने से उत्तर मार्ग को जाय यह नियम विद्वान् के लिये नहीं है यह नियम योगियों के निमित्त है। ब्रह्मलोक मे ले जाने वाली नाडी से योगी ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं, वे अग्नि, ज्योति, दिन, शुक्लपक्ष और उत्तरायण से जाते है। दक्षिणायन से जाकर योगी चन्द्र की ज्योति को प्राप्त होकर कर्मानुसार स्वर्ग का फल भोग कर फिर लौटकर आते हैं। वे अग्नि, धूम्र, रात्रि, कृष्णपक्ष और दक्षिणायन से जाते हैं। वहां जीव पुण्य फल भोगने के निमित्त जाते हैं। देवयान (ब्रह्म सूत्र से निश्चय हुआ)-कार्य ब्रह्म की प्राप्ति है—यह क्रम मुक्ति है जिसका क्रम यह है:—दिन, पक्ष, षट् मास, संवत्सर, देवलोक; वायुलोक, आदित्य, चन्द्र, विद्युत, वरुण, इन्द्र, प्रजा- पति और ब्रह्मलोक।

जिस समय ज्ञान प्राप्त होकर जीवन्मुक्ति प्राप्त होती है तब ज्ञानी पुरुष का देवयान मार्ग समाप्त हो जाता है और विदेह कैवल्य में-सद्योमुक्ति में उसको मार्ग अवशेष नहीं रहता।

श्यामलाल नामी एक मनुष्य एक शहर में रहता था। वह सामान्य रीति में शुभ कर्म करने वाला था। एक वार उसे भारी बीमारी हुई और अनेक वैद्यों का इलाज करने पर भी आराम न हुआ। सब लोगों ने उसकी जीवन की आशा छोड़ दी। थोड़ी देर में उसका प्राण स्तब्ध हो गया। लोगो ने समझा मर गया। गोबर से पृथ्वी लीप कर मृतक शरीर को स्नान करा के उसमें लेटाया गया। सगे सम्बंधी रोने पीटने लगे। मरण का समाचार कहने के लिये जाति विरादरी मे नाई भेजा गया। दो मनुष्य बांस, रस्सी और कफन लेने गये। इस समय किसी को विचार नहीं है कि जिस को मृतक मान रहे हैं वह जीता है या मरा। एक घंटे पीछे जब मुरदनी में जाने वाले सब एकत्र हो गये तब उसने हाथ पैर हिलाये। हाथ पैर हिलते देख कर कायर मनुष्य डर गये! कोई कहने लगा "प्रेत का प्रवेश हो गया!" दृढ़ मनुष्यों ने पृथ्वी पर से उठाकर खाट पर ले लिया। आध घंटे पीछे उसने इशारे से पानी मांगा। पानी पिलाया गया और वह तुरंत बोल उठा "आप लोग ऐसे भेष मे क्यों खड़े हैं?"

एक हाजिर जवाब मनुष्य ने कहा, आप यमराज को जवाब देकर लौट आये हैं! हम सब आपके दर्शन करने आये हैं थोड़ी देर में बीमार बहुत स्वस्थ हो गया, मात्र थोड़ी निर्बलता

रह गई ! उस ने सब को बैठाया और धीरे २ अपना वृत्तान्त इस प्रकार कहना आरम्भ किया "मैं मर गया था, यमराज के दूत मेरे पास आये, दो दूत थे, उनके साथ चार भयंकर कुत्ते थे! मैं देखकर डर गया और बेहोश होगया ! दूतों ने रस्सी से मुझे बांध दिया, थोड़ी देर मे मुझे होश आया। दूत मुझे खैंचने लगे, मैंने कहा आप मुझे मत खेंचो, मैं आप के साथ ही चलता हूँ। कुत्ते मेरे सामने घुरराने लगे, दूत काले काले हबशी समान छोटे कद के बलवान थे। मेरे कहने से उन्होने मुझे खेंचना छोड़ दिया मैं उनके साथ हो लिया। जब मैं चुपचाप चलने लगा तो कुत्तों ने भी भोकना बन्द कर दिया। दूतों के कपड़े काले थे, हाथों मे काले डंडे थे, जिधर जाने को वे कहते थे उधर ही मैं जाता था इसलिये मुझ पर डंडा एक भी न पड़ा ! रात्रि होने पर एक स्थान पर हम टिक गये। मुझे भूख, प्यास दोनों लग रही थीं। जब मैंने उनसे पानी मांगा तो एक दूत घुड़क कर बोला बड़ा पुण्यात्मा है, जो हम तुझे भोजन पानी लाकर देवे। मैं डर कर चुप हो गया, फिर मैंने कुछ न कहा; इस प्रकार पांच दिन में वे मुझे यमराज के दरबार में ले पहुचे। वहां का दृश्य भयंकर था, दुष्ट कर्म करने वाले अनेक आकृतियों से खड़े थे। यमराज ने कई जीवों के न्याय करने के पीछे मेरी तरफ देखा, देखते ही मुझे लाने वाले यमदूतों पर क्रोध करके कहा 'अरे मूर्खो ! यह तुमने क्या किया ? किसको ले आये ? इसका प्रारब्ध अभी समाप्त नहीं हुआ। अभी पृथ्वी पर इसका जीवन सात वर्ष और है।

इसके मकान के पास श्यामलाल नाम का दूसरा मनुष्य है उसको लाने की तुमको आज्ञा दी थी यह पुरुष इतना पापी नहीं है; जाओ इसको ले जाओ और उसको ले आओ।" यह सुन कर दोनों दूत मुझे लेकर वाहर आये। पश्चात् मुझे कुछ खबर नहीं कि क्या हुआ। तुम्हारे शरीर का मेरे शरीर से स्पर्श होने से मैं जाग गया। आप लोग हंसी खुशी अपने २ घर जाइये। मुझे तो सात वर्ष जीने का परवाना मिल चुका है। उसी समय उसके पड़ोस मे जहां दूसरा श्यामलाल रहता था वहां रोना पीटना होने लगा और माळूम हुआ कि जिस समय प्रथम श्यामलाल होश में आया था उसी समय दूसरे श्यामलाल का देहान्त होगया। सब मनुष्य यह आश्चर्य युक्त दृश्य देखकर सच्चा सबूत पाकर आनन्द से वातें करते हुए अपने २ घर लौट गये, तब से प्रथम श्यामलाल का नाम लोगो ने मरके जीने वाला रख दिया।

इस प्रकार की अनेक कथायें लोक प्रचलित हैं और सच्ची होंय ऐसा भास होता है परन्तु ऐसी सब कथाये सच्ची नहीं होतीं। मरने वाला क्रम २ से तीनों शरीरो को छोड़कर फिर उन शरीरों में कभी नहीं आता। कभी २ ऐसा हो जाता है कि मनुष्य का प्राण दब जाता है और आंतर में स्वप्न की समान दृश्य दीख पड़ता है, जब दबा हुआ प्राण ठीक चलने लगता है तब जाग्रत् अवस्था में आकर सूक्ष्म मे देखे हुए भाव को वर्णन करता है। स्वप्न का भविष्य भी कभी २ ठीक मिलता है इसी प्रकार दूसरे श्यामलाल का उसी समय मरण होना स्वप्न का सच्चा भविष्य था

जिस प्रकार पृथ्वी पर न्यायालयों मे कभी २ भूल हो जाती है इसी प्रकार की भूल यम-शासन मे भी लोगों ने समझ ली है। समष्टि-ईश्वर का सब व्यवहार विना भूल होता है, वह सर्वज्ञ और आप्तकाम है, उसके किसी नियम मे कभी भी किंचित मात्र भूल होना असम्भवित है। जीव का गमनागमन भाव रूप है जिसका भाव सच्चा हो रहा है, उसके लिये गमनागम भी सच्चा ही है। प्रपंच के भाव मे ठिके हुए, प्रपंच को सच समझने वालो को पाप पुण्य और गमनागमन नहीं है ऐसा कहना-मानना अत्यंत पापिष्ट का लक्षण है, उसके लिये संसार के नियम वज्र लेप समान है।

अंतिम सारांशः—स्थूल शरीर के भाव वाला जीव मरने के समय इन्द्रियों और प्राण सहित सूक्ष्म शरीर में आकर अपने कर्मों के भाव का दृश्य देखता है। वहां सचित और प्रारब्ध का विभाग होता है और प्रारब्धानुसार नये शरीर की प्राप्ति होती है। देवयान और पितृयान में जाने वाले उपरोक्त बताये हुए मार्ग से जाते हैं। ज्ञानी के प्राण ऊपर नहीं जाते, वहीं के वहीं लय हो जाते हैं।
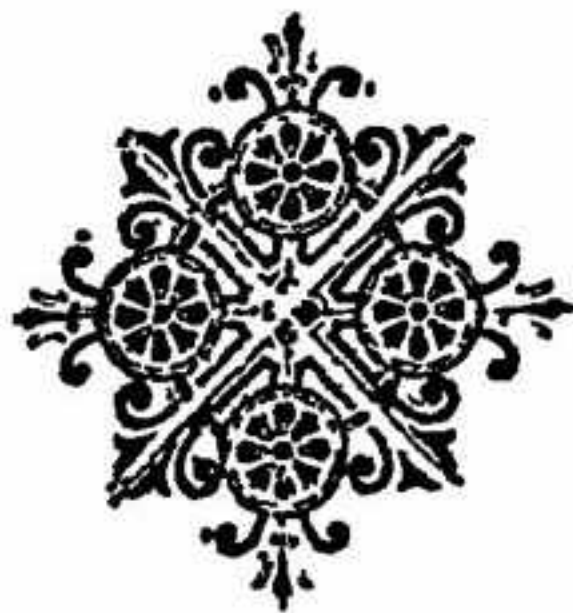
१४—मोक्ष की इच्छा।

प्रश्न—मोक्ष सुख का किसी ने प्रत्यक्ष नहीं किया है, बिना जाने किसी वस्तु की प्राप्ति की इच्छा नहीं होती, तो मोक्ष की इच्छा कौन करेगा ?

उत्तरः—मनुष्य जिन पदार्थों की इच्छा करता है, उन पदार्थों का प्रत्यक्ष अनुभव करके ही उनकी इच्छा हो ऐसा नियम नहीं है। किसी ने किसी देश अथवा वस्तु का वर्णन सुना, तो सुनकर के भी उस देश के देखने अथवा वस्तु के पाने की इच्छा होती है। सामान्य भाव से 'मैं हूं' इस प्रकार आत्मा का प्रत्यक्ष हर एक को है। उसको विशेष जानने की इच्छा हो सक्ती है। तेरे कहे अनुसार इच्छा करने वाले ने पूर्व में मोक्ष का अनुभव कभी नहीं किया है ऐसा स्वीकार किया जाय तो भी शास्त्र वाक्य और संत पुरुष जिन्हो ने मोक्ष स्वरूप का अनुभव किया है, उन महत् पुरुषों का वाक्य श्रवण करके और संसार में दुःख देखकर मोक्ष प्राप्ति की इच्छा हो सक्ती है। आत्मा का अनुभव अज्ञात भाव से सब को है। माया में जहां २ विषय सहित अथवा विषय रहित सुख की किंचित् छाया पड़ती है वह आत्मा की है। माया के आवरण के कारण से वास्तविक प्रकाश जानने में न आते हुए भी जो कुछ जानने में आता है वह आत्मा-मोक्ष स्वरूप का प्रकाश है। जैसे बादल से ढका हुआ सूर्य देखने में नहीं आता तो भी जिस प्रकाश में व्यवहार होता है वह सूर्य का प्रकाश है इस प्रकार अज्ञानियों को भी अनुभव

होता है, इसलिये अज्ञात भाव से जाने हुए आत्म प्रकाश को यथार्थ रूप से प्राप्त करने की इच्छा संस्कारी जिज्ञासुओं को अवश्य होती है। हर एक जानता हुआ अथवा न जानता हुआ मोक्ष की इच्छा करता है। इस प्रकार मोक्ष की इच्छा स्वाभाविक है। जीव का मुख्य तत्त्व मोक्ष स्वरूप है इसलिये सब को मोक्ष की इच्छा रहती है। मोक्ष का अर्थ मुक्त होना-छुट जाना है। वह जो बन्धन मे पड़ा हुआ है यदि बंधन को बंधन समझे और बंधन के दुःखों को जाने तो अवश्य बंधन से मुक्त होने की इच्छा करेगा। परतंत्रता बंधन है और स्वतंत्रता मोक्ष है। मनुष्य का तो कहना ही क्या है, पशु, पक्षी, जीव जन्तु सभी स्वतंत्र रहना चाहते हैं। तब मनुष्य अनेक प्रकार के माया के दुःखों को जान कर माया के बंधन से मुक्त होना-निवृत्त होना क्यों न चाहे? मोक्ष परम सुख रूप है। सुख की इच्छा प्रत्येक को होती है, सुख की इच्छा न करना असम्भवित है। पाषाण अथवा पाषाण समान अंतःकरण वाले को ही सुख की इच्छा न होती होगी। सुख सब चाहते हैं। इसलिये परम सुख स्वरूप मोक्ष भी सब चाहते हैं। अब कोई ऐसी शंका करे "सुख तो विषयों के संग से होता है और मोक्ष में किसी ने विषय दिखलाये नही हैं, विषय बिना वहां सुख क्या होगा? सुखका भान त्रिपुटी में होता है त्रिपुटी रहित सुख का कहना व्यर्थ है।" इसका उत्तर यह है-त्रिपुटी रहित अवस्था समाधि की है और वहां ज्ञानियों ने परम सुख-परमानन्द का अनुभव किया है, वहां त्रिपुटी नहीं है। समाधि से थोड़े अंश मे मिलती हुई सुषुप्ति अवस्था है वहां

त्रिपुटीका भान न होते हुए भी सुख का जो अनुभव होता है वह विषय रहित ही होता है। अज्ञानियों को भी इसका अनुभव है। यदि कोई ऐसा कहे सुषुप्ति मे सुख कहां है ? वहां तो न सुख है न सुख का भाव है। सुषुप्ति के पश्चात् जाग्रत् अवस्था में आने से स्मरण होता है कि वहां कुछ प्रपंच न था। तो सुनोः—सुख और दुःख दोनो एक दूसरे से विरुद्ध हैं। दुःख का होना सुख का न होना है और सुख का होना दुःखका न होना है। जब किंचित् भी दुःख न हो तब जो रहा सो सुख नही तो और क्या है ? सुषुप्ति का सुख, दुःख भाव रहित भाव से है परन्तु समाधि सुख, सुख दुःख रूप द्वन्द रहित स्वरूप स्थिति परम सुख परमानन्द है जो अनुभवगम्य है। जब तक अज्ञानी अज्ञान से हटकर स्वरूप का स्वयं अनुभव न करे तब तक उनकी समझ में आना कठिन है। विषयों के सम्बन्ध से सुख का भान होता है और विषयों के वियोग से दुःख का भान होता है, विषय सहित सुख, सुख स्वरूप से अल्प और क्षणिक है तो भी वह प्रकाश सुख स्वरूप का ही है। जगत् अज्ञान का कार्य है, अज्ञान ज्ञान से विरुद्ध होने पर भी ज्ञान रहित नहीं है। उलटे भाव से रहने वाले ज्ञान को अज्ञान कहते हैं। यह न जान कर भी सुख सबको प्रिय है। मोक्ष सुख स्वरूप होने से मोक्ष भी सबको प्रिय है।

आत्मा आनन्द स्वरूप है, माया के परदे मे से भी उसका आनन्द बाहर चमकता है। आत्मा आनन्द स्वरूप होने से माया के कारण स्वरूप को भूलकर भी आनन्द की इच्छा करने से नहीं

रुकता। किसी मनुष्य के पास एक पुस्तक आई अभी उसने वह पुस्तक पढ़ी नहीं है, तो उसे उसके पढ़ने की इच्छा न होनी चाहिये, परन्तु ऐसा नहीं है। यदि उसे पुस्तक पढ़ने का प्रेम होता है तो वह उसे उठा लेता है और एक दो पत्ते लौटकर देखता है कि पुस्तक का क्या नाम है? उसका कर्ता कौन है? कहां छपी है? क्या विषय है? जो उसके पढ़ने योग्य पुस्तक होती है तो वह प्रस्तावना को पढ़ डालता है और इस प्रकार पुस्तक का सामान्य ज्ञान प्राप्त करके फिर विशेष ज्ञान के निमित्त संपूर्ण पुस्तक पढ़ता है। अथवा अमुक पुस्तक उत्तम है किसी से ऐसा सुनकर भी वह उसे पढ़ने की इच्छा करता है। इसी प्रकार शास्त्र और संतों से मोक्ष का सामान्य विवेचन सुन कर मोक्ष प्राप्ति की इच्छा होती है।

अब विचारना चाहिये कि सुख-आनन्द किस प्रकार होता है? पदार्थ में सुख—आनन्द नहीं है। आनन्द आत्मा में है। पदार्थ के संयोग वियोग से आत्मा के सुख-आनन्द का भान जो पदाथ मे होता है, वह अज्ञान का कारण है। जैसे नाव में बैठे हुए कम बुद्धि वाले मनुष्य को जब नाव चलती है तब किनारे के वृक्ष चलते मालूम होते हैं इसी प्रकार प्रवृत्ति की चंचलता के कारण आत्मा के आनन्द का भास पदार्थ में होता है। यदि पदार्थ में सुख-आनन्द होय तो हमेशा पदार्थ में रहना चाहिये वह उसमें हमेशा नहीं रहता किन्तु आत्मा में हमेशा रहता है। जिस समय माया का परदा हटकर थोड़ी एकाग्रता होती है तब सुख-आनन्द

प्रतीत होता है। चंचल वृत्ति के कारण आत्मा में रहने वाला सुख-आनन्द प्रतीत नहीं होता। सुख सब चाहते हैं और सुख हमेशा बना रहे यह भी चाहते हैं। ऐसा सुख सिवाय आत्मा के और कहीं नही है। विषय मे जो सुख प्रतीत होता है वह मात्र सुखाभास है और क्षणिक है। इसलिये अखंडित सुख के निमित्त अज्ञान के बंधन का काटना रूप मोक्ष और परमानन्द की प्राप्ति रूप स्वरूप स्थिति की इच्छा सबको होना सम्भव है। इच्छा सब करते हैं परन्तु सबको मोक्ष प्राप्त नहीं होता। इसका कारण सुनो:—मनुष्य चार प्रकार के हैं, पामर, विषयी; मुमुक्षु और मुक्त पामरों की बुद्धि अत्यन्त जड़ होती है, वे दुःख को भी दुःख नही समझते। इसलिये ऐसे पामरो को दुःख से छूटने की तीव्र इच्छा किस प्रकार हो? दूसरे विषयी हैं वे विषय संयोग से सुख मानते हैं, विषयो के सिवाय और कहीं सुख नहीं है, ऐसा वे मानते हैं। दिन रात विषयों मे ही लगे रहते है, कभी २ जब विषय सम्बन्ध से उन्हें हानि उठानी पड़ती है, तब विशेष दुखी होजाते हैं और विषय सुख को धिक्कार ने भी लगते हैं। उनका ऐसा धिक्कारना थोड़ी देर रहता है, अनुकूल विषय प्राप्त होने से फिर धिक्कार को भूल जाते हैं; धिकार के समय कभी त्याग का भाव आता है और वे थोड़ी देर के लिये प्रपंच से मुक्त होने की इच्छा कर लेते हैं। उनकी इच्छा बलहीन और विषय वासना प्रबल होती है। इसलिये वे भी मुमुक्षु होने के योग्य नही हो सक्ते। तीसरे जो मुमुक्षु हैं वे प्रपंच को दुःख रुप समझते हैं। 'विषय आदि मध्य और अंत मे कष्टदायक हैं।' ऐसा जानकर वे तीव्र भाव

से मुमुक्षुता में प्रवेश करते हैं। अधिकारयुक्त होने से उनकी मोक्षेच्छा यथार्थ मोक्ष की इच्छा है। चौथे जो प्रथम मुमुक्षु थे, उन्हों ने आत्म कृपा, ईश कृपा और गुरु कृपा से परम पुरुषार्थ साध्य कर लिया है-मोक्ष को प्राप्त कर लिया है, वे मुक्त हैं, उन्हे अब मोक्ष की इच्छा नहीं हो सक्ती। अपनी तीव्र भावना आत्म कृपा है, पूर्व संस्कार के संवंध से अंतःकरण की सत्वर शुद्धि ईश्वर कृपा है, दोनों कृपा सहित सद्गुरु मिलना और उपदेश देना गुरु कृपा है। त्रिपुटी रूप वंधन की निवृत्ति मे ये तीनों साधन रूप हैं।

प्राचीन समय में चीन देश में एक मनुष्य ने किसी राज-कुटुम्ब के मनुष्य को मार डाला, उस का मुकदमा अदालत में चला, वहां के पुराने नियम के अनुसार उस मारने वाले को अंधेरी कोठरी में वैठकर आयु पूर्ण करने की सजा हुई। जिस समय वह जेलखाने में भेजा गया तव वह युवावस्था के आरम्भ में था। जिस अधेरी कोठरी में वह वंद किया गया वह वहुत छोटी थी, वायु और प्रकाश आने के लिये उसमें कोई जाली अथवा रोशनदान न था, कोठरी के आस पास ऊंचे २ मकान थे, पानी निकलने के लिये एक छोटी सी मोरी थी, ऊपर से एक छिद्र खोलकर उसमें से खाना और पानी गिराया जाता था, कैदी को कोठरी के वाहर कभी न निकालते। विचारा किसी मनुष्य का मुख न देखने पाता और न मनुष्य का शब्द सुनने का ही अवसर पाता। कोठरी में इतना अंधेरा रहता था कि

कैदी को अपना हाथ पैर भी नहीं दीखता था। अंधेरा देखकर प्रथम तो कैदी घबड़ाया परन्तु थोड़े दिनों में उसका चित्त वहाँ रम गया। पेशाब टट्टी छोटी नाली में किया करता, मोरी कभी साफ नहीं की जाती थी इस कारण दुर्गन्ध भी बहुत थी। एक दिन मोरी में होकर एक चूहा भीतर आया और कैदी के खाये हुए चांवलों में से जो दो चार दाने गिर गये थे चुनकर खा गया। कैदी दो वर्ष पीछे एक चूहा देखकर बहुत प्रसन्न हुआ! दूसरे दिन उसने चूहे के खाने के कुछ बचा रक्खा जब चूहा आया तो उसने उसे प्रेम से खिलाया। इसी प्रकार प्रति-दिन करने से कैदी का प्रेम चूहे पर बढ़ता गया! प्रेम के साथ चूहो की संख्या भी बढ़ती गई! कैदी अपने खाने में से आधे से अधिक खाना चूहों को खिला देता था परन्तु चूहों को उतना खाना जल पान समान हो जाता था! चूहो की मित्रता से कैदी अपने दिन सुखपूर्वक व्यतीत करने लगा। पैंतीस वर्ष पीछे नया राजा गद्दी पर बैठा उसके उत्सव में बहुत से पुराने कैदी छोड़े गये, उनमें चूहो का मित्र भी छोड़ दिया गया। कोठरी खोलते ही जो प्रकाश हुआ उसे वह देख न सका! चकाचोंध से मूर्छित हो गया! जब चेत हुआ तब अधिकारियों में से एक ने राजा की आज्ञा सुनाई "तुझ को अंधेरी कोठरी के जेलखाने से मुक्त किया है, अपनी इच्छानुसार जहां चाहे वहां चला जा।" यह आज्ञा सुनकर कैदी बहुत दुखी हुआ। उसका शरीर नग्न, दुर्गन्धयुक्त था और बढ़े हुए बाल और नखों से वह पिशाच की समान दीखता था। पैतीस वर्ष से घूमने का अभ्यास छूट जाने से बिचारा चल फिर भी नही

सक्ता था। मातृभाषा भी ठीक नहीं बोल सक्ता था। वह उस स्थान में जंगली रीछ की आकृति के समान हो गया था। राजा की आज्ञा सुनकर रोने लगा। कोठरी में घुसकर सोचने लगा हाय! अब मैं कहां जाऊं? मेरे सब कुटुम्बी मित्र कोठरी में रह जांयगे। (कितने ही चूहों का उसने नाम भी रख लिया था) हाय मेरा शमशेर बहादुर ऊंदर! हाय मेरी रूप गौरी ऊंदरी! हाय मेरा खिलाड़ी मिश्र का ऊंदर! हाय २ मुझ से इन कुटुम्बियोंका वियोग कैसे सहन होगा? वे ही मेरा बिरादरी भाई, बाप, बेटा और बेटी हैं! उन्हें मैं किस प्रकार छोड़ सकूँ? हाय उनका प्रेम कैसे भूलं? नहीं कभी नहीं! ऐसा विचार कर टूटी हुई भाषा मे रोते रोते उस ने अधिकारियों से कहा, मैं अंधेरी कोठरी छोड़ना नहीं चाहता, अपनी शेष आयु इसी में पूर्ण करूंगा, मेरा संसार मेरी कोठरी है, वह बहुत अन्धेरी है तो भी मेरे लिये प्रकाश वाली है, यदि मुझे इस कोठरी में से निकालोगे तो मैं मर जाऊंगा। अधिकारी यह सुनकर बहुत ही आश्चर्य करने लगे और उन्होने अपने ऊपर के अधिकारी को यह बात सुनाई। अन्त मे यह बात राजा तक पहुंची। राजा ने सब बातो का विचार कर के ऊंदर मित्र कैदी को उसी काली कोठरी में रहने दिया, जहां वह सुखी रहे!

संसार में गर्भवास रूप अन्धेरी और दुर्गंध युक्त जेलखाने की कोठरी छोड़ने की इच्छा न करने वाले मनुष्य बहुत हैं वे वहां

के क्रिमि रूप चूहों का वियोग नहीं चाहते और कहते हैं, हमको यदि निकालोगे तो हम अवश्य प्राण त्याग देंगे ! ये ही पामर मनुष्य हैं, ये ही पामर पशु हैं ! भला उन्हें मोक्ष की इच्छा कैसे होसक्ती हैं ?

राज कुटुम्ब का कोई पुरुष आत्मा है, स्वरूप ज्ञानका न होना जीव की की हुई आत्महत्या है, इस हत्या के कारण वह संसार रूप जेलखाने मे भेजा गया हैं, अन्धेरी कोठरी गर्भवास है, महान् राजा ईश्वर की आज्ञा अन्धेरी कोठरी गर्भवास छोड़ने को हुई वह मनुष्य शरीर का प्राप्त होना है, मनुष्य शरीर प्राप्त करके भी जो अंधेरी कोठरी मे घुसना चाहता है, वह ही पापी नरक का कीड़ा है ! उसको मोक्ष की वात कभी नहीं सुहाती। यदि कोई मोक्षोपदेशक महद् पुरुप मिलता है तो वह उसे शत्रु सम दीखता है। इस प्रकार जो पामर मनुष्य हैं उनको मोक्षकी इच्छा न होना कहे तो ठीक ही है।

दो मनुष्य पास २ रहते थे। दोनों आपसमे मित्र थे। दोनों के स्त्री भी थीं। एक की स्त्री पतिव्रता और दूसरे की कर्कशा थी। वह पति को पति भाव से न मानने वाली, मन मौजी; खाने पीने और कपड़े लत्ते में आनन्द मानने वाली थी। पतिव्रता पति की सेवा ही अपना मुख्य धर्म समझ कर पति की सेवा मे रहती थी और पति घर पर न होता तव घर के काम काज में लगी रहती थी। मुख्य कारण सिवाय वह अपनी पड़ोसिन कर्कशा के यहां नहीं जाती थी। कर्कशा पति की सेवा तो

करे ही कहां से ? वह तो उसको अनेक प्रकार के कष्ट दिया करती । घर का काम भी चित्त लगा कर न करती, कोई वस्तु बिगड़े, टूटे, फूटे इसकी उसे कुछ परवा न थी, अच्छा २ खाना पहनना और इधर उधर बैठे रहना, गप शप मारना, पति को दुःख देना, यह ही उसका आचार था । जब देखो तब उसे अवकाश ही रहता था । इसलिये वह बार २ पतिव्रता सुशीला के घर पर पहुंच जाती और वहां बैठी रहती । सुशीला अपना काम छोड़कर उससे बात न करती, कर्कशा का मन पाषाण के समान कठोर और मलिन था, सुशीला के सहवास से और उसके बार बार उपदेश सुनने से उसके स्वभाव में लेश भी अंतर नहीं हुआ एक दिन दोपहरी के समय सुशीला का पति भोजन कर के आराम करने लगा और सुशीला अवकाश देख कर धान कूटने लगी । जहां उसका पति सो रहा था वहां से धान कूटनेका स्थान थोड़ी दूर था इसलिये धान कूटने का शब्द पतिके सोने के स्थान तक नहीं पहुंचता था । थोडी देर पीछे पति सोकर जागा और उसने स्त्री को पुकार कर पानी लाने की आज्ञा दी । सुशीला ने जिस समय पति का शब्द सुना, उस समय उसने मूशल उठा रक्खा था, वह मूशल को ज्यो का त्यों छोड़कर पति को पानी देने चली गई । मूशल पृथ्वी पर नही गिरा अधर ही रह गया ! कर्कशा वहां बैठी थी उसने मूशल का यह तमाशा देखा तो उसे बडा आश्चर्य हुआ । वह जी में सोचने लगी, मैं तो इस प्रकार नहीं कर सक्ती । सुशीला का पति जल पी, कपड़े पहन कर बाहर चला गया । सुशीला धान कूटने आई तो कर्कशा ने कहा,

सुशीला, यह मूशल अधर कैसे रह गया? सुशीला ने कहा, मैं पति सेवा में रत हूँ, यह पति सेवा का फल-चमत्कार है। मैं सो कर उठे हुए पति को उनकी आज्ञानुसार पानी देने गई थी, पतिव्रताओं में ऐसे बहुत से चमत्कार स्वाभाविक आ जाते हैं, उसके लोक और परलोक दोनों सुधर जाते हैं। इसीलिये मैं तुझे पति की आज्ञा मे रहने का उपदेश दिया करती हूँ। कर्कशा ने कुछ उत्तर न दिया। उसकी बुद्धि मलीन थी उसने यह अर्थ समझा कि जब पति सोकर उठे और पानी मांगे यदि मैं उस समय मूशल छोड़कर पानी देने चली जाऊं तो मूशल अधर रह जायगा! सुशीला को देखकर उसे भी मूशल अधर रखने की इच्छा हुई। कोई भारी लाभ होने वाला हो इस प्रकार आनन्द में कर्कशा घर को चली गई। उसी समय उसका पति बाहर से घर में आया था, उसे कर्कशा की सब बाते माननी पड़ती थीं! न माने तो घर में रहना कठिन होजाय! कर्कशा ने पति से कहा, तू सोजा और थोड़ी देर पीछे उठकर मुझसे पानी मांगना। मैं तुझे पानी का प्याला भरकर पिलाऊंगी। पति सोचने लगा, आज यह क्या कौतुक है? स्त्री को घर मे आये दश वर्ष हुए आज तक पानी का प्याला भरकर कभी नहीं दिया। अच्छा, देखूं यह क्या करती है। यह सोचकर वह खाट पर लेट गया। कर्कशा घर मे से धान निकाल कर कूटने लगी। पति खाट में पड़ा २ सोचने लगा, आज क्या सुवर्ण का सूर्य उदय हुआ है? कभी इसने धान नहीं कूटे! चांवल न हों तो दो २ तीन २ दिन तक रोटी खानी

पड़ी है, आज स्वयं धान कूटने लगी है। इधर पति इस प्रकार के विचार में मग्न था उधर कर्कशा ने धान कभी कूटे न थे, थोड़ी देर में थक गई, पति ने अभी तक पानी लाने को न कहा इसलिये वह क्रोधित होकर उठी और पति के लात मारकर कहने लगी "पानी क्यो नहीं मांगता ? क्या शरीर बहुत भारी होगया है ? क्या डंडे से हलका कराना है ?" पति कुछ न बोला तव फिर कर्कशा ने कहा, मैं धान कूटती हूं, जिस समय मेरा मूशल ऊपर को होय उसी समय पानी मांगना। ऐसा कहकर वह फिर धान कूटने लगी। दो चार बार मूशल धान में लगा होगा, उसके पति ने पानी मांगा। कर्कशा मूशल को अधर छोड़कर पानी देने जाने ही को थी, संयोगवश मूशल की झोंक उसकी तरफ थी, मूशल बड़े जोर से शिर में लगा। बिचारी का शिर फूटकर लोहू लुहान हो गया।

॥ दोहा ॥

सती नारि ठाड्यो कियो, मूशल विनु आधार।
लगी करन वहि कर्कशा, लाग्यो मूंड मंझार॥

सुशीला एक निष्ठा वाली पति प्रेम रत थी इसलिए वह प्रपंचमुक्त समान ही थी, योग्यता सहित होने से प्रपंच रूप मूशल जो हमेशा चोट करने वाला है वह अधर रहा। योग्यता सहित मुक्त होने की इच्छा सफल होती है, वही मुमुक्षुता है। कर्कशा विषय के प्रेम वाली थी उसका प्रेम पति—आत्मा की तरफ न था। सुशीला को देखकर उसे भी इच्छा हुई, योग्यता रहित

इच्छा से उसने अपना शिर फोड़ा ! विषयी मनुष्यों को पूर्ण भाव से मोक्षेच्छा नहीं होती। यदि किसी के देखने से अथवा किसी कष्ट के समय वे इच्छा कर भी लेते हैं तो वह इच्छा प्रवल नहीं होती, विषयों का भाव थोड़ी देर रह कर देखने मे न आवे ऐसा होजाता है परंतु विषय भाव ही प्रवल होता है इसलिये वे मुमुक्षुता को प्राप्त नहीं कर सक्ते।

आगरे में एक विषयासक्त पुरुष मेरे पास आया था, वह कुछ श्रीमान् था। तीस पैंतीस वर्ष की आयु उसने विषयों में व्यतीत की थी, कुछ कष्ट पाने के पीछे मेरे पास आकर उपदेश के लिये प्रार्थना की। वह स्वच्छन्दी, अभिमान की मूर्ति, अनेक प्रकार समझाने पर भी अभिमान के कारण समझ नहीं सक्ता था। मेरे पास आने वाले सब चटाई पर बैठते थे। वह मनुष्य अधिक श्रीमान् न होकर भी श्रीमान्ता के अभिमान से भरा था, उसे चटाई पर बैठना बुरा मालूम हुआ, वह बैठने के लिये गलीचा चाहता था। मैंने उससे कहा, मेरे पास ज्ञानोपदेश के लिये आना क्या है, अपने भावको मिट्टी में मिलाना है। दूसरे दिन वह न आया। कभी किसी के पास, कभी किसी के पास भटकता फिरा। होना हवाना क्या था ? थोड़े दिन पीछे सुना कि वह पूर्व के समान विषय सेवन मे लग गया है। जिस प्रकार पामर मनुष्य मुमुक्षुता प्राप्त करने को अयोग्य है, इसी प्रकार अहंभाव की दृढ़ता वाला, स्वच्छन्दी, विषयी भी अयोग्य है। मात्र अधिकारी के लक्षण-युक्त मुमुक्षु ही ठीक २ फल प्राप्त कर सक्ता है।

स्वर्गादि लोक जो अनेक प्रकार के ऐश्वर्य और भोग से युक्त हैं, वे मोक्ष नहीं हैं, वे भोग हैं और अज्ञानकृत कर्मों का फल हैं। भोग चाहे जितना उच्च अथवा नीच हो वह अज्ञान है। माया का चक्र है। स्वर्ग मे जाने से माया का चक्र नहीं छूटता। माया और माया के कार्य से अनेक प्रकार के संकट भोगने पडते हैं, परतंत्रता रहती है, माया के बंधन से निवृत्त होना और अपने स्वरूपानन्द को प्राप्त होना मोक्ष है। मोक्ष का वास्तविक स्वरूप अनुभवगम्य है, श्रद्धा और आत्म भाव की बुद्धि हुए विना अज्ञानियो को कोई समझा नहीं सक्ता। शास्त्र और सद्गुरु तटस्थ रह कर उसका वर्णन करते हैं। शरीर का छूट जाना मोक्ष नहीं है, संसार व्यवहार छोड़ कर त्यागी रूप में घूमना मोक्ष नहीं है, दंड कमंडल का परित्याग कर नग्न रहना मोक्ष नहीं है, परन्तु अज्ञान रूप जड़—चैतन्य की हृदय ग्रंथि का खुल जाना मोक्ष है। अनादि भूल का निकल जाना—कर्म वासना का निर्मूल हो जाना मोक्ष है।

मगर की मादा समुद्र के किनारे अंडे रखती है, उनमें से बच्चे उत्पन्न होते ही समुद्र की तरफ़ दौड़ते हैं। बच्चे ने समुद्र देखा नहीं है तो भी उसके अंग समुद्र संबंध से बने हुए होने के कारण उसका जीवन—भोजन समुद्र में है। इसी प्रकार अज्ञान के कारण चाहे जितने जन्म धारण किये जांय तो भी शरीर इन्द्रिय आदिक मे अधिष्ठान स्वरूप से चैतन्य आत्मा ही विराजमान है, उत्पत्ति, स्थिति और लय आत्म स्वरूप मे

वाहर नहीं है। इसीलिये सवकी इच्छा आत्म प्राप्ति—मोक्ष की तरफ स्वाभाविक होती है।

जिस प्रकार चुम्बक में लोहे का आकर्षण स्वाभाविक रहता है इसी प्रकार भूल से अंशभाव से मानने वाले जीव का स्वाभाविक आकर्षण आत्मा की तरफ रहता है। आत्मा स्वतंत्र और आनन्द स्वरूप होने से जीव भाव को प्राप्त होकर भी सुख और स्वतंत्रता चाहता है !

इच्छा ही जगत् का जीवन है। सव मनुष्य किसी न किसी प्रकार के पदार्थों की इच्छा किया ही करते हैं, इच्छा करके प्रयत्न में लगते हैं। कार्य इच्छानुसार हो तो भी इच्छा नहीं रुकती और वढ़ती जाती है। यदि इच्छा के विरुद्ध कार्य हो तो दु.ख होता है, अन्य प्रकार की इच्छा होती है। इच्छा की पूर्ति और अपूर्ति में वार वार दुःख होने से वैराग्य होना सम्भव है। वैराग्य से मोक्ष की इच्छा होती है इस प्रकार सद्य अथवा विलम्ब से या क्रम से मोक्ष की तरफ जाता है। अन्त में सव इच्छाओं की निवृत्त करने वाली मोक्ष की इच्छा आ ही जाती है। इस प्रकार मोक्षेच्छा थोड़ी वहुत सव इच्छाओं मे सम्मिलित है।

अन्तिम सारांशः—मोक्ष स्वस्वरूप अपना आत्मा होने से उस का सामान्य अनुभव सव को है। अज्ञान के कारण पूर्ण स्मृति नहीं होती। अज्ञानी का भाव भी आत्मा की तरफ होने से आत्म प्राप्ति-मोक्ष स्वरूपकी इच्छा वह भी कर सक्ता है। सुननेसे इच्छा
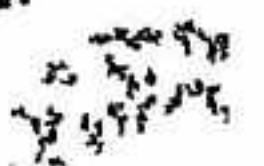
होती है। शास्त्र और संतोके मुखसे परम सुखस्वरूप आनंदस्वरूप आत्माको सुना है और हरएक सुख चाहता है इसलिये मोक्षकी इच्छा होती है। परम सुख विषयों के सम्बन्ध से प्राप्त नहीं होता। विषय रहित अखंडित सुख मोक्ष है। जब योग्यता सहित मोक्ष की तीव्र इच्छा होती है तब श्रवण, मनन और निदिध्यासन से परम पुरुषार्थ सिद्ध होता है।

१५ सत् और असत्।

प्रश्नः—प्रत्यक्ष दीखने वाले संसार को तुम असत्य बताते हो और न दीखने वाले आत्मा को सत्य बताते हो, यह कैसे समझने में आवे ?

उत्तरः—जो पदार्थ दीखते हैं वे सत्य हैं और जो नहीं दीखते वे असत्य हैं ऐसा नहीं है। तू भी इस प्रकार नहीं मानता। वायु देखने में नहीं आता तो भी वायु है ऐसा कहना पड़ता है, वायु नहीं है ऐसा नहीं कह सक्ते। सुगन्ध, दुर्गन्ध नेत्रों का विषय नहीं है इस लिये दीखते नहीं हैं तो भी वे नहीं हैं अथवा मिथ्या हैं ऐसा नहीं कह सक्ते। ऐसे ही जितना दीखता है वह सभी सच्चा है यह भी नियम नहीं है। स्वप्न में देखे हुए अनेक पदार्थ, मरुस्थल का जल और रस्सी में सर्प की भ्रान्ति दीखती हुई भी वस्तु रूप से सत्य नहीं है इससे यह सिद्ध होता है कि दीखने वाले पदार्थ सच्चे और झूठे दोनो ही हो सक्ते हैं वैसे ही न दीखते हुए पदार्थ भी सत्य और असत्य दोनों ही होते हैं। संसार दीखता है इस लिये असत्य न हो ऐसा नहीं है। तू ही रात्रि को जब सोता है—गहरी नींद में पड़ जाता है तब तेरे लिये संसार कहां रहता है ? संसार वाला तेरा शरीर कहां होता है ? संसारी भाववाला स्वयं तू है या नहीं है इसकी भी तुझे खबर नहीं रहती ! तब संसार को सत्य किस प्रकार कह सकते हैं ? वेदान्तानुसार सत्य की व्याख्या इस प्रकार है.—जो पदार्थ अविकारी, उत्पत्ति नाश रहित, तीनों काल में एक सा रहने वाला हो वह सत्य है जो उससे विरुद्ध

स्वभाव वाला हो वह असत्य है। इस व्याख्या के अनुसार जगत् असत्य है और एक अद्वैत परब्रह्म सत्य है। सत्य तीनों काल में अबाधित है, सत्य का कभी लोप नहीं होता, सत्य हर एक का अपना आप है। जैसे अपना न होना किसी के अनुभव में नहीं आता इसी प्रकार परब्रह्म का न होना भी नहीं हो सकता। आत्मा दीखने मे न आवे, समझने में न आवे तो भी कहीं चला नहीं जाता। अनात्म आवरण से आत्मा कभी ढक नहीं सक्ता। अज्ञानी का अज्ञान भाव आत्मा के ज्ञान होने में प्रतिवन्ध है। तेरी समझ में जो नहीं आता वह अज्ञान के प्रभाव से है जो तू अंत-करण की शुद्धि सहित सत्शास्त्र और सद्गुरु के वाक्यों को सुने तो आत्मा का बोध होना असम्भवित नहीं है। जो शुद्ध अंतःकरण वाले और श्रद्धा वाले हैं वे मेरे समझानेसे समझ सक्ते हैं। समझाने की अनेक युक्तिया हैं, उन्हें प्रक्रिया कहते हैं उनमे से एक दो युक्तियो से समझाता हूँः—जगत में अनेक पदार्थ हैं, उन सबका विवेचन करना वुद्धि से वाहर है, सव पदार्थों में दो भेद जड़ और चैतन्य मालूम होते हैं। इस वात को न भूलना चाहिये कि वे दोनो जगत् के हैं जो क्रिया करने वाले नहीं हैं वे जड़ हैं और जो क्रिया करने वाले हैं वे चैतन्य हैं, यह सामान्यता से कहा है। अव यह विचारना चाहिये कि जो क्रिया करने वाले चैतन्य हैं उनमें भी जड़ता का अंश मिला हुआ है जव उन में चैतन्य नहीं रहेता तव वे मृतक माने जाते हैं चैतन्य में भी जीवित और मृतक दो भेद हैं। जड़ पदार्थ इन्द्रियों के विषय हैं

उनसे जाने जाते हैं और चैतन्य इन्द्रियों से नहीं जाना जाता परन्तु सूक्ष्म इन्द्रिय जिसको अंःकरण कहते हैं उस से जाना जाता है। ऊपर जो जड़ और चैतन्य बताये उन्हें माया वाले समझना चाहिये क्योंकि वे रूपान्तर वाले हैं उन दोनों को माया का कार्य समझ। माया के जितने पदार्थ हैं उनमे नाम और रूप हैं, माया का कोई पदार्थ नाम रूप रहित नहीं है। आकाश और वायु का रूप नहीं है तो भी वे अन्य इन्द्रियों के विषय हैं, वे शब्द और स्पर्श वाले हैं उनका समावेश रूप में होता है नाम और रूप में एक अनवच्छिन्न वस्तु रहती है सो नाम रूप के साथ हद वाली मालूम होती है वह वस्तु ब्रह्म है वह तीन चिह्नों से जाना जाता है। तीन चिह्न अस्ति, भाति और प्रिय हैं। अस्ति का अर्थ है है-अमुक नाम वाली अमुक रूप वाली वस्तु है, भातिका अर्थ भासती है-दीखती है, अमुक नाम वाली और अमुक रूप वाली जो वस्तु है सो दीखती है, प्रिय का अर्थ अच्छी लगती है-प्यारी लगती है काम की है इत्यादि, अमुक नाम वाली और रूप वाली वस्तु है, दीखती है और काम की है। इस प्रकार हर एक पदार्थमें अस्ति, भाति, प्रिय, नाम और रूप ये पांचों होते हैं। इन पांचों में अस्ति, भाति और प्रिय जो तीन चिह्न हैं वे सब में एक समान हैं और इन तीनो का भेद नहीं होता किंतु नाम रूप का भेद होता है। जैसे पंखा नाम है, उसकी आकृति रूप है, पंखा नाम वाला पंखे की आकृति वाला पंखा, है, दीखता है और काम का है। इसी प्रकार लाठी नाम है, लम्बी आकृति

रूप है, लाठी है, दीखती है और रक्षण के निमित्त काम की है। नाम और रूप बदल जाते हैं, अस्ति, भाति, प्रिय नहीं बदलते। जिस प्रकार नाम, रूप भिन्न २ नहीं हैं इसी प्रकार अस्ति, भाति, प्रिय ये तीनों भी भिन्न २ नहीं हैं तीनों एक ही पदार्थ के बताने वाले हैं। अस्ति, भाति और प्रिय सब पदार्थों में सामान्य हैं नाम रूप से उनका मेल करके व्यवहार होता है। जितना नाम वाले का रूप है उतना ही वह है उतना ही दीखता है, उतना ही काम का है, ऐसा समझा जाता है। अस्ति भाति और प्रिय सर्व व्यापक हैं, उनके व्यापकपने को वस्तु में मिला देते हैं इसलिये जो वास्तविक अस्ति भाति प्रिय स्वरूप आत्म ब्रह्म है वह समझने मे नहीं आता। यदि कोई प्रश्न करें कि नाम और रूप वाले पदार्थ को हटा लिया जाय तो अस्ति भाति प्रिय कही नहीं दीखेंगे तो सुन वह कहां गये ? उस स्थान में दूसरी वस्तु तैयार है इतना ही नहीं किंतु वस्तु हटा देने के पश्चात् जहा वस्तु थी उस स्थान में भी अस्ति, भाति और प्रिय भर रहे हैं। जैसे एक पत्थर का टुकड़ा पृथ्वी पर पड़ा हुआ है, जब वह पत्थर का टुकडा है तब पत्थर उसका नाम और आकृति उसका रूप है, दीखता है और जीव जन्तु मारने के काम का है, जब उसे उस स्थान से हटा दिया तब उसके स्थान पर पृथ्वी रहने से अस्ति भाति और प्रिय वैसे ही रहे। पृथ्वी नाम और उसकी आकृति रूप है, दीखती है और मनुष्यों के आने जाने के काम की हैं। इस प्रकाप अस्ति

भाति और प्रिय सब स्थानो मे भरे हुए हैं कोई स्थान उनसे खाली नहीं है। अस्ति भाति और प्रिय एक स्थान से उठ कर दूसरे स्थान पर नहीं जाते, जब कोई वस्तु एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाती है तब वे वहां ही रहते हैं। मलिन बुद्धि वालों को अस्ति भाति और प्रिय को व्यापकता जानने मे नही आती, वे उनको नाम और रूप के साथ समझते हैं अर्थात् अस्ति भाति और प्रिय का यथार्थ स्वरूप नहीं जानते। जिसको अस्ति, भाति और प्रिय कहते हैं वह ही शास्त्र में बताया हुआ सच्चिदानन्द है। सच्चिदानन्द में तीन पद सत् चित् और आनन्द हैं। सत् अस्ति, चित भाति, और प्रिय आनन्द है।

जो सच्चिदानन्द है वह ही ॐ है। ॐ तीन मात्रा वाला है, अ, उ और म्। 'अ' सत् रूप है, 'उ' चित् रूप है और 'म्' आनन्द रूप है। ॐ ब्रह्म अस्ति भाति और प्रिय है, वह ही ब्रह्म है, ब्रह्म सर्व व्यापक है इसलिये तुझ मे भी है, वह तेरा आत्मा है, वह ही शुद्ध है, उसीको कूटस्थ कहते हैं, कूटस्थ का ब्रह्म से अभेद है हर एक पदार्थ की हद के भीतर रहने वाले जो अस्ति, भाति और प्रिय हैं वे ही कूटस्थ हैं। अस्ति, भाति और प्रिय के टुकड़े होकर वस्तुतः किसी पदार्थमें नहीं मिलते किंतु अस्ति, भाति और प्रिय सर्वत्र व्यापक हैं अर्थात् एक ही अस्ति, भाति और प्रिय सब स्थानों में हैं। इस प्रकार कूटस्थ की परब्रह्म से एकता है। अब अस्ति, भाति और प्रिय के विवेचन से आत्मा का स्वरूप तेरी समझ में आगया होगा। अब नाम और रूप क्या वस्तु है सो

सुनः—यह तो तुझे मालूम ही है कि तेरा नाम तेरे जन्म के कई दिन पीछे लोगो का रक्खा हुआ है जब तू जन्मा था तब किसी ने ऐसा नहीं कहा कि अमुक नाम वाला जन्मा है, पृथक् व्यक्ति के चिन्ह रूप से समझने के लिये नाम रक्खा गया है इसलिये नाम कोई वस्तु नहीं है। बहुधा एक जन्म में ही कई नाम बदल जाते हैं, प्रथम किसी का नाम कुछ होता है और पीछे और रख दिया जाता है। धंधे के कारण भी नाम बदल जाया करता है। कुटुम्बियों के भिन्न संबंध से भी नाम बदल जाता है, एक ही मनुष्य किसी का पुत्र, किसी का बाप, किसी का भाई और किसी का पति कहलाता है। संबंध मिथ्या होने से नाम भी मिथ्या ही है। जो नाम वास्तविक हो तो सबको नाम मालूम होना चाहिये किंतु ऐसा नहीं होता, जो नाम जानता है वह ही उस नाम से पुकारता है इसलिये नाम सच्चा नहीं है। मनुष्यों का तो कहना ही क्या, ईश्वर के नाम भी ऐसे ही रक्खे गये हैं? यदि ईश्वर का वास्तविक नाम है तो ईश्वर सब जगत्का एक है, सब ईश्वर को एक ही नाम से क्यों नहीं पुकारते? जैसे नाम झूंठा है, बदला करता है वैसे ही रूप भी झूंठा है। जब तेरा जन्म हुआ था तब तेरा यह रूप न था जो अब है। रूप—आकृति माता पिता के अंश से बना है उससे प्रथम का तेरा यह रूप नहीं है। रूप नित्य बदलता रहता है यह तो सबको ही प्रत्यक्ष है जैसे जन्म के प्रथम का यह तेरा रूप नहीं है ऐसे ही मरने के पश्चात् भी तेरा रूप नहीं रहेगा इसलिये रूप भी झूंठा है। यदि तू कहे कि नाम तो समझने में आ गया कि नाम कोई वस्तु नहीं परन्तु

रूप तो वस्तु का ही होता है नाम के समान रूप झूंठा नहीं है तो सुन—रूप भी तो नित्य एक ही नहीं रहता बदलता रहता है जितने पदार्थ बदलते रहते हैं वे माया के हैं । रूप को पकड़ने वाली नेत्र इन्द्रिय है, माया की होने से वह माया की वस्तु को ही पकड़ती है। रूप बदलने वाला है यह तू मानता ही है, तब जिस पदार्थ में रूप की बदली हुआ करती है वह ही पदार्थ सत्य हुआ और उस में बदलने वाला रूप मिथ्या हुआ। तू रूप को वस्तु कहता है सो रूप वस्तु नहीं है वस्तु तो जो न बदलने वाला एक पदार्थ वही है। जैसे मिट्टी का एक घट है उसका नाम घट है—उसकी आकृति रूप है मिट्टी उसमें वस्तु रूप है मिट्टी रूप वस्तु में नाम और रूप मिथ्या हैं। जैसे प्रतीति का विषय रूप मिट्टी ही सत्य है इसी प्रकार अस्ति भाति और प्रिय रूप अथवा सच्चिदानन्द ब्रह्म ही सत्य वस्तु रूप है और उस में जितनी नाम और आकृतियां दीखती हैं वे मिथ्या हैं । जो मिथ्या हैं उनका बाध करके देखें तो एक परब्रह्म शेष रहता है। वह ही आत्मा एक अद्वैत तत्त्व है।

आत्मा सबको प्रसिद्ध है उसको ढांकने वाला कोई पदार्थ है नहीं न वह किसी से ढाका जा सक्ता है। अज्ञान के कारण अविचारी पुरुष नाम रूप में ही सत्यता समझ लेते हैं जिससे सत्य स्वरूप ब्रह्म प्रसिद्ध होते हुए भी जानने मे नहीं आता। अब तू समझ गया होगा कि दीखने वाला संसार—नाम रूप असत्य किस प्रकार है और अज्ञानियों को न दीखता हुआ आत्मा किस प्रकार सत्य है। यदि तू कहे कि आपने तो शब्द में ही सबका

मिलान करके एकता कर दिखलाई परतु शब्द की बनी हुई नाव से आज तक कोई पार नहीं गया तो आपके शब्द के मिलान से हम ससार समुद्र से किस प्रकार पार हो सक्ते हैं ? इसका उत्तर सुनः—केवल प्रश्न करने से प्रश्न का उत्तर कैसे समझ में आवे ? उसको एक प्रक्रिया से समझाया गया कि इस प्रकार समझने में आ सकता है। हमारा काम केवल समझाने का है, उसको श्रवण करने के पश्चात् मनन और निदिध्यासन करने से अनुभव–साक्षात्कार होता है। मात्र इस प्रकार सुनने से, आचार में लाये विना कोई भी मुक्त नहीं होता। तेरी शंका है कि शब्द के जहाज से कोई पार होता नहीं यह ठीक है परन्तु अमुक २ प्रकार का जहाज होना चाहिये, ऐसा सुनकर ही जहाज बनाया जायगा, पश्चात् कीले लगा कर जहाज दृढ़ करना मनन होगा और जल में चलाना रूप निदिध्यासन होगा, तब उसके सहारे से पार पहुँचा जायगा।

वेदान्त शब्द से ही ज्ञान होना बताता है। आत्म ज्ञान में प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण से मुमुक्षु के लिये शब्द प्रमाण की विशेषता है। शब्द से ही आत्मा का स्वत. प्रमाण सिद्ध होता है, आत्मा सब का प्रमाणभूत है, वह सबका अपना आप है, इस लिये उसके जानने के लिये अन्य प्रमाण की अपेक्षा नहीं है जैसे दशवां तू है यह सुनते ही अपने को जान जाता है इसी प्रकार महावाक्यो द्वारा हुआ बोध ही आत्म बोध है।

एक अरण्य में एक चित्रकार (फोटोग्राफर) पहुँचा, वहां के पहाड़ों का चित्र उसने खींचा, एक पशु समान बुद्धि वाले भील

को देख कर उसने उसका भी चित्र खींच लिया। रात्रि भर वह उन्ही भीलों के स्थान पर रहा। प्रातःकाल उसने भील का चित्र तैयार किया। उसने जी में यह सोच कर कि जंगल के रहने वालों ने ऐसे चित्र कभी नहीं देखे हैं जो मैं उन्हे चित्र दिखलाऊगा तो वे प्रसन्न होंगे। ऐसा सोच कर जिस जंगली मनुष्य का चित्र उसने खींचा था उस को चित्र निकाल कर दिखलाया और कहा, देख यह तू है। हाथ, पैर, मुख, नाक कान सब बराबर हैं। कमर पर तीर कमान भी लगी हुई है। जंगली भील आश्चर्य के साथ सब अंग उपांग की आकृति देख कर चित्र हाथ में लेकर चारो तरफ़ से देखता रहा जब बहुत देर हो गई तो चित्रकार ने चित्र मांगा परन्तु भील ने न दिया। जब चित्रकार ने बहुत ही आग्रह किया तो अत में भील ने चित्र उसे दे दिया। चित्रकार ने उसे कागज़ो मे लपेट कर एक संदूक मे जो उस के पास था रख लिया और ताली लगादी। भील सब देखता रहा और एक साथ बोल उठा हाय! मुझे संदूक में क्यो बन्द कर दिया है? मेरा दम घुटेगा, मैं मर जाऊंगा, मुझे निकाल दे। हाय! तू बड़ा चोर है। मुझे बन्द कर के लिये जाता है। चित्रकार ने कहा, क्या कहता है? तू तो मेरे सामने बैठा है। छोटे से संदूक में तू कैसे बंद हो सक्ता है? भील झुंझला कर बोला, वाह! तूने ही तो प्रथम कहा था कि यह तू है। मैंने भी ठीक २ देख लिया कि वह मैं ही हूँ। अब तू क्यों कहता है कि तुझे बन्द नहीं किया। मुझे संदूक में से निकाल दे, मेरा दम घुटता है, अंधेरे

में घबराता हूँ। चित्रकारने कहा, तू तो मेरे सामने खड़ा है मुझसे बातें कर रहा है, तू और है और जिसको मैंने सन्दूक में बंद किया है वह और है। भील ने कहा नहीं, वह ही तो मैं हूँ। मुझ में और उसमे क्या अंतर है? मुझे संदूक में से जल्दी निकाल दे, नही तो मैं सब भीलों को बुलाता हूँ। तेरे सन्दूक को तुड़वा डालूंगा। चित्रकार ने फिर कहा, मैं सच कहता हूँ तू वह नहीं है तेरे समान है, तेरा चित्र है। इस प्रकार चित्रकारने बहुत ही समझाया परन्तु भील ने एक न मानी और वह भीलों को बुला लाया। वे सब संदूक छीनने लगे। चित्रकार ने सोचा, जंगली समझते नही हैं, चित्र और मनुष्य का अंतर नही जानते। यह सोच कर उसने सन्दूक खोल कर चित्र निकाल कर भील को दे दिया। वह अपने को प्राप्त कर के प्रसन्न होता हुआ अपनी स्त्री के पास पहुंचा और चित्र दिखला कर बोला, देख यह मैं हूँ। मुझ को एक जादूगर चोर बक्स में बन्द कर के लिये जाता था, मैं अपने को उससे छुड़ा कर ले आया हूँ। चमकदार कागज़ पर सुन्दर चित्र देख कर स्त्री कहने लगी वाह! कैसा सुन्दर शरीर है। यह ही मेरा मालिक है। मैं उसके साथ रहा करूंगी। भील ने कहा हां! हां! यह मैं ही तो हूँ।

अब विचार कर कि चित्रकार उन जंगली मनुष्यों को मनुष्य और चित्र का अंतर किस प्रकार बता सक्ता था? चित्र चित्र ही है, मनुष्य मनुष्य ही है, अंतर बहुत है। समझने वाले समझ सक्ते हैं। किन्तु जिसकी बुद्धि में जंगली भीलों के समान समझने

की शक्ति न हो वह किस प्रकार समझ सके ? नाम रूप का पुतला फोटोग्राफ़ का चित्र ही तो है ! दोनों में लेश भी अंतर नहीं है किन्तु मनुष्य की बुद्धि पर ऐसा अज्ञान का परदा पड़ गया है कि चित्र-छाया-आभास को अपना मानने लगा है, जैसे जंगली भील चित्र को संदूक में वन्द करने से अपने को वन्द किया हुआ मानता था इसी प्रकार चित्र रूप, नाम रूप शरीर संसार में वन्द होने से अज्ञानी अपने (आत्मा) को शरीर से पृथक् होने पर भी वन्धन में पड़ा मानते हैं। रजोगुण और तमोगुण की विशेषता वाले अज्ञानियों के समझने का विषय आत्मा नहीं है और समझाने से वे समझ भी नही सक्ते।

जब किसी प्रकार का भाव उत्पन्न होकर दृढ़ हो जाता है तब भावना करने वाला अपने स्वरूप को भूलकर भावना को ही अपना स्वरूप मानने लगता है। थोड़े दिन हुए एक राजा मुम्बई में नेपियनसी रोड के ऊपर एक वंगले में ठहरा हुआ था। दो राज कुमार, एक राज कुमारी और कई नौकर चाकर उसके साथ थे। एक दिन वड़ा राज कुमार जिसकी उमर उस समय आठ वर्ष की थी वंगले के वगीचे मे टहल रहा था, वह एक अंग्रेज को वंगलेमे आता हुआ देखकर घवड़ाता हुआ अपने पिता राजा के पास पहुंचा और कहने लगा, पिता जी, उठो ! साहव आते हैं। राजा ने कहा, बेटा, साहव आते हैं तो क्या हुआ ? राजकुमार ने कहा पिता जी वे बड़े राजा हैं, हमारे ऊपर उनका अधिकार है, उनको आदर सत्कार करके लाना चाहिये। इतने

में एक नौकर ने आकर कहा, महाराज, एक साहब आपसे मिलना चाहते हैं, क्या आज्ञा है ? राजा ने आने की आज्ञा दी और नौकर चला गया। थोड़ी देर में अंग्रेज ने आकर अपना टोप उतार कर राजा को सलाम किया और खड़े २ दो चार बातें करके वह चला गया। राजकुमार ने कहा पिता जी, आपने उस से बैठने को क्यों न कहा ? वह तो साहब था। राजा को हंसी आई, कुंवर को गोदी में लेकर वे कहने लगे, बेटा, अभी तू बच्चा है, तू क्या जाने ? किसी ने तुझसे साहब की बड़ाई कर दी है, वह साहब है तो मैं भी राजा हूँ, तुझे साहब को देख कर इस प्रकार घबड़ाना योग्य नहीं है। जिसको तू बड़ा राजा समझ कर घबराता था वह हमारा गाड़ी बनाने वाला है, नौकर है ! क्या जब तेरा कोई नौकर तेरे पास आवेगा तो तू उठकर उससे हाथ मिलावेगा ? जो हाथ मिलाने (प्रतिष्ठा पाने) योग्य होता है उसी से हाथ मिलाया जाता है प्रतिष्ठा दी जाती है। सफेद चमड़ी हुई तो क्या हुआ ? क्या सफेद चमड़ी होने से हमारा अन्नदाता हो गया ? ऐसा न समझना चाहिये।

राजकुमार ने नौकर चाकरों से अंग्रेजों की बड़ाई सुन रक्खी थी, उस बड़ाई का भाव इतना दृढ़ हो गया कि हम राजा हैं यह भाव तक राजकुमार भूल गया। इसी प्रकार जगत् के प्रपंच के भाव वाला होने से अपने आत्म स्वरूप को प्राणी भूल जाता है। जब तक बुद्धि शुद्ध और संस्कार वाली नहीं होती तब तक काग़ज़ का बना हुआ बाघ नहीं मिटता, और समझाने वाला कितना ही समझावे, कभी समझ में नहीं आता।

तू मेले तमाशे देखने का प्रेमी है, कई प्रकार के नाटक के तमाशे देख चुका होगा परन्तु तूने पूर्ण रीति से कभी उनका विचार नहीं किया है। जो तू यथार्थ रीति से विचार करे तो तुझे विदित हो जाय कि देखने में आने वाली वस्तु किस प्रकार झूंठी है और मंद बुद्धि वालों को देखने में न आती हुई वस्तु किस प्रकार सच्ची है। तेरी समान प्रश्न करने वाला एक मनुष्य एक वार मुझे मिला था। जब मैंने देखा कि बातों से समझाने से यह न समझेगा तो मैंने एक नाटकशाला के मालिक को जो मुझे जानता था लिखकर चार बजे गाड़ी मंगवाई और मैं और प्रश्नकर्ता दोनों नाटकशाला में गये। वहां जाकर देखा कि सब वस्तुयें अस्त व्यस्त पड़ी हुई हैं। ऐक्टरों के कद्रूपे चहरे और फटे टूटे वस्त्रादिक देखने में आये। हम सब स्थानों पर घूमे परन्तु मोह उत्पन्न करने वाला एक भी पदार्थ न देखा। सब भयंकर ग्लानि रूप थे। मेरा साथी कहने लगा, महाराज ये तमाशा करन वाले लड़के रात में तो बहुत सुंदर दीखते हैं इस समय तो देखने को भी जो नहीं चाहता। मैंनें कहा, तू सब बातें याद करले, मैं उनके सम्बन्ध में तुझ से वात चीत करूंगा। नाटकशाला का मालिक हम दोनों को अपने स्थान पर ले गया जैसे किसी सभ्य गृहस्थ की बैठक हो ऐसा उसका स्थान था। मालिक ने भली प्रकार से हमारा सत्कार किया और विशेष प्रार्थना की, आज रात को तमाशा करके हम लोग मुम्बई से जाने वाले हैं, आज का तमाशा ही अन्तिम तमाशा है, आज आप अवश्य तमाशा देखने पधारिये। मैंने कहा, हम लोग त्यागी

हैं, हमको तमाशों से क्या प्रयोजन है ? ऐसे तमाशे देखना हमें योग्य नहीं है । मालिक ने कहा, महाराज, आपको विधि निषेध् कहां है ? हम पर कृपा करने के निमित्त और प्रेक्षकों के दर्शन देनेके निमित्त आप अवश्य पधारिये । हमारा यह ही धंधा है, धंधे के समय आपके दर्शन होना मैं महाभाग्य की बात समझता हूँ । यह कह कर उसने एक आदमी को दो फर्स्ट क्लास टिकट लाने की आज्ञा दी वह दो टिकट ले आया । स्थान रिजर्व कर दिया गया । फिर उसने हमको गाड़ी में बैठा कर फूलों के हार पहनाए और गुलदस्ता भेट करके रवाना किया ।

रात को वही गाड़ी हम को लेने आई और हम दोनों नाटक शाला में जाकर नियत स्थान पर बैठ गये । राजा हरिश्चंद्र का तमाशा था । वहां का दृश्य आश्चर्यजनक था । इन्द्र की सभा का आना, वसिष्ठ और विश्वामित्र की बात चीत होना, विश्वामित्र का हरिश्चन्द्र को अनेक प्रकार के कष्ट देना, हरिश्चन्द्र का अपनी प्रतिज्ञा का भंग न करना, राजा रानी का विक्रय, पुत्र की मृत्यु, रानी का पुत्र जलाने जाना इत्यादिक करुणाजनक था। तमाशे का सब दृश्य और प्रयोग याद रखने को मैंने अपने साथी से कह रक्खा था । उसने ऐसा ही किया और हम दोनों तमाशा देख कर लौट आये । उसके आठ दिन पीछे मैं और वह घूमने को निकले और जिस स्थान पर नाटक हुआ था वहां आये, वहां इस समय कुछ न था क्योंकि कम्पनी ने काम चलाऊं नाटक घर अपनी तरफ से बना लिया था, जब कम्पनी

चली गई तब सामान हटा लिया गया और वहां साफ मैदान रह गया। मैंने अपने साथी से कहा, हम लोगों ने तमाशा देखा था, क्या यह वही स्थान है ? उसने कहा हां। मैं ने कहा, उस दिन तो यह स्थान बहुत शोभायमान था, आज उसका क्या हो गया है ? अब तो सफाचट मैदान पड़ा है। उसने कहा, वह सब सामान और शोभा नाटक वालोंकी थी वे लोग अपना सब सामान और परदे अपने साथ ले गये, अब यहां क्या है। मैंने कहा, क्या है क्यो ? जो है सो तो गया नहीं। जिसके ऊपर शोभा होरही थी, वह तो कहीं नहीं गया। उसने विचार कर कहा, नहीं जिस पृथ्वी पर शोभा होरही थी वह पृथ्वी तो अब भी है। तब मैंने कहा, फिर गया क्या ? उसने कहा, जो लोग आये थे वे चले गये। मैंने कहा, अच्छा, यह तो तुझे निश्चय हो गया कि जो आया वह गया, जो आता है सो जाता है। उसने कहा, हां, मैंने कहा जो आता नहीं है, स्थिर है, वह जाता भी नहीं है। पृथ्वी आई नहीं है, स्थिर है इस लिये वह जाती भी नहीं है। उसने यह बात स्वीकार करली तब मैंने फिर कहा, जिस दिन हम दिन में गये थे तब वस्तु और पात्रों (ऐक्टरों) का क्या हाल था ? उसने कहा, सब अस्त व्यस्त थे। मैंने कहा, फिर रात्रिमे क्या हुआ ? उसने कहा, सब शोभा को प्राप्त हो रहे थे। मैंने कहा फिर क्या हुआ ? उसने कहा सब शोभा बिगड़ गई। मैंने कहा, प्रथम दृश्य क्या था ? उसने कहा, इन्द्र की सभा, हरिश्चन्द्र का राज स्थान, जंगल, हरिश्चन्द्र की दुर्दशा के अनेक दृश्य। मैंने कहा रानी

एक पैसे के लिये रो रही थी। राजा पैसा देकर उसका दुःख दूर नहीं कर सक्ता था, इतना ही नहीं तमाशा देखने वालों में से भी किसी ने एक पैसा दे कर रानी का दुःख दूर न किया। राजा भंगी के समान कार्य कर रहा था, रानी दासी हुई इस प्रकार पात्र बदलते गये। जिसमें बदली हुई वह न बदला। हरिश्चन्द्र बनने वाला जो लड़का था वह राजा बना था तो क्या वह यथार्थ राजा बन गया था ? वह तो पात्र ही रहा। जब वह भंगी का काम करने लगा तब क्या वह भंगी होगया ? जब भी वह पात्र ही रहा। उसने कहा, वह तो पात्र का पात्र ही रहा। ऊपर के कपड़ों और दृश्य में ही अन्तर हो गया था, वह दिखावा झूंठा था झूंठे में सच्चे पैसे की सहायता से क्या होता ? झूंठ बदला किया। मैंने कहा जब यह लडका राजा हरिश्चन्द्र बन कर आया था तब तेरा ऐसा लच्च नहीं हुआ था कि यह लड़का इस प्रकार है जिस समय इन्द्र की सभा का दृश्य देखने में आया था। तब नीचे की पृथ्वी होते हुए भी तुझे पृथ्वी का लच्च नहीं था। पृथ्वी सच्ची थी। ऊपर के सब आडम्बर देखने मात्र थोड़ी देर के थे इस लिये झूंठे थे। इसी प्रकार ब्रह्म को सब का अधिष्ठान स्वरूप पृथ्वी समझ, ऊपर के आडम्बर नाम रूप की उपाधियों के हैं, वे आते हैं, और चले भी जाते हैं विकारी और नाशवंत हैं, उनमें कुछ भी हुआ करे, उससे अधिष्ठान स्वरूप ब्रह्म की किंचित् हानि नहीं है। सब स्थानों में इसी प्रकार परब्रह्म भरा हुआ है, जब उपाधियों को देखते हैं तब अधिष्ठान के लच्चण नहीं दीखते और अज्ञान के कारण से 'वह

अधिष्ठान होता हुआ भी दिखाई नहीं देता। न दीखनेवाला आत्मा ही सत्य है और दीखने वाला सब जगत इस प्रकार झूठा है जैसे नाटक के आडम्बर झूठे थे। इस मेरे समझाने से वह मनुष्य आत्म तत्त्व को समझ गया। तू भी समझ गया होगा।

अंतिम सारांश:—अध्यस्त (सत्य में बनावटी दीखने वाला) अधिष्ठान (सच्ची वस्तु) को दूषित नहीं करता, परब्रह्म अधिष्ठान स्वरूप है और जगत् उसमें अध्यस्त है। जब अज्ञानी अध्यस्त पदार्थ को सच्चा समझ लेता है तब अधिष्ठान को नहीं जानता। जिन उपाधियों करके जगत् सत्य दीख रहा है उन उपाधियों को हटा कर जब अधिष्ठान को देखा जाय तब प्रसिद्ध सत्य दीखता जगत् असत्य है और अज्ञानियों को प्रसिद्ध न दीखता हुआ परब्रह्म सत्य है ऐसा समझ में आजाता है। अस्ति, भाति और प्रिय रूप परब्रह्म और नाम रूप जगत् का स्वरूप पृथ्वी और नाटक के दृष्टांत से समझाया है जिससे संस्कारी बुद्धि वाले समझ सकते हैं।

१६ आत्मा की चैतन्यता ।

प्रश्नः—आत्मा सामान्य प्रकाश वाला है तो प्रकाश करने वाले दीपक की समान जड़ हुआ, सामान्यता में विशेषता नहीं और विशेषता विना चैतन्यता कहां ? शरीर पैदा होता है उसमें जीव के प्रवेश होने का क्या प्रमाण है ?

उत्तरः—आत्मा क्या है, यह समझने से ही सब बात समझ में आजाती है, जब तक आत्मा को न जाने तब तक आत्मा को अनात्म पदार्थों के साथ मिला लिया जाता है अथवा अनात्म पदार्थों में से किसी एक में आत्मा होने की भ्रांति हो जाती है। अपने आपको आत्मा कहते हैं, सबका जो अपना आप है वह आत्मा है सब का आत्मा समान है इसलिये वह समान कहा जाता है। आत्मा किसी में अधिक अथवा न्यून नहीं है। अपना आत्मा सबको विशेष प्रिय होता है। शूकर को नीच योनि में होने के कारण अपना आत्मा न्यून प्रिय हो ऐसा नहीं है। चींटी से लेकर ब्रह्मा पर्यन्त अपना २ आत्मा सबको एक सा ही प्रिय है। जैसे मनुष्य अपनी बुद्धि के अनुसार समझे हुए अपने आत्मा की रक्षा करते हैं वैसे ही क्षुद्र जन्तु भी अपनी सामर्थ्य अनुसार अपनी रक्षा करते हैं जैसे मनुष्य अपना मूल्य विशेष समझता है और क्षुद्र जंतुओं को तुच्छ समझता है ऐसे ही यदि कोई क्षुद्र जंतुओं से जाकर पूछे तो वे अपना मूल्य विशेष बतावेंगे।

एक समय एक मनुष्य और एक शेर में मित्रता थी मनुष्य जो कुछ कहता था उसे शेर समझ जाता था और वह

अपनी आवश्यकता के अनुसार किसी न किसी चिन्ह से अपना भाव मनुष्य को समझा देता था। एक बार दोनों मित्र एक वन में जा रहे थे, वहां एक मंदिर देखा उसकी दीवारों पर अनेक प्रकार के चित्र बने हुए थे। उनमें से एक चित्र में मनुष्य और शेर की कुश्ती हो रही थी। मनुष्य बहुत तगड़ा पहलवान दीखता था, उसने शेर की गरदन पकड़ रक्खी थी और उसे पछाड़ने ही को था। उसको देख कर मनुष्य ने शेर से कहा, मित्र, देख तेरे जाति भाई की पहलवान क्या दुर्दशा कर रहा है! शेर ने ठंडी सांस लेकर कहा, हां, ठीक है! परन्तु हे मनुष्य मित्र! तू जानता है कि चित्र खींचने वाला मनुष्य है इसलिये मनुष्य ने मनुष्य की शौर्यता दिखाई है। तूने भी मुझ को जो यह चित्र दिखलाया है, यह मनुष्यत्व के अभिमान से ही दिखलाया है यदि चित्रकार शेर होता तो तू इस समय अपने जाति भाई की दुर्दशा देख रहा होता शेर की युक्तिपूर्वक बात सुन कर मनुष्य चुप हो गया।

सब जीवों को अपना आत्मिक भाव एक समान क्यों है? मूर्ख से मूर्ख मनुष्य भी यही समझता है कि उसके बराबर बुद्धि वाला ब्रह्मांड भर मे कोई नही है। निन्नियानवे अंश बुद्धि मुझमें है, एक अंश ब्रह्मांडभर मे है। आत्मा समान होने से सबका भाव भी समान है। किसी में अधिक और किसी में न्यून भाव जो प्रतीत होता है वह माया का विकार है। माया के विकारो को छोड कर सब का आत्मा एक समान प्रतीत होगा। यदि माया का किया हुआ आत्मा का पृथक् भाव निकाल दिया जाय तो

आत्मा एक ही बन जाय, उस समय समान असमान कहने का अवकाश न रहे।

भौतिक प्रकाश सच्चा प्रकाश नहीं है, वह नेत्र इन्द्रिय का विषय है। आत्मा का प्रकाश भौतिक प्रकाश के समान नहीं है। आत्मा का प्रकाश संसार के पदार्थ अपदार्थ सभी को प्रकाशता है। पदार्थ जड अथवा चैतन्य, स्थावर अथवा जंगम, प्रकाश वाला अथवा अंधकार वाला कैसे ही हो जिस प्रकाश से वह जाना जाता है वह आत्मा का प्रकाश है। इन्द्रिय, अंतःकारण, दृश्य और अदृश्य इन सब की सिद्धि जिस प्रकाश से होती है वह आत्मा का प्रकाश है। कई स्थानों पर आत्मा को ज्योति स्वरूप कहा है इससे यह न समझना चाहिये कि आत्मा बहुत भारी भौतिक ज्योति के समान ज्योति है। वह इस प्रकार की ज्योति नहीं है किन्तु वह ऐसी ज्योति है जो ज्योति को ज्योति और अंधेरे को अंधेरा बताती है। आत्मा का प्रकाश बहुत ही सूक्ष्म लक्ष का विषय है, इसलिये शीघ्र समझ में नहीं आता। जैसा सूक्ष्म वह है, वैसा ही सूक्ष्म होकर उस सूक्ष्म को समझा जाता है, लक्ष किया जाता है।

दीपक का प्रकाश कृत्रिम (बनाया हुआ) है, उसे उत्पन्न कर सक्ते हैं और उसका नाश भी कर सक्ते हैं वह प्रकाश दूसरे पदार्थों की अपेक्षा से होता है, तेल बत्ती आदि सब संयोग जब प्राप्त होता है तब दीपक जलता है और जलता हुआ विरोधी प्रसंग प्राप्त होने से बुझ भी जाता है अथवा संयोग में से किसी

एक के क्षय होने पर भी नाश को प्राप्त होता है। तू दीपक के प्रकाश को सामान्य बताता है किन्तु वह सामान्य नहीं है। सामान्य किस को कहते हैं ? सब स्थान पर एकसा प्रकाश होने को सामान्य कहते हैं। दीपक का प्रकाश ऐसा नहीं है। वह समीप के स्थान पर विशेष होता है और दूरी पर न्यून होता है। समीप होने पर भी यदि कोई आड़ बीच में आ जाती है तो दीपक का प्रकाश आगे नहीं जाता। वह न्यूनाधिक प्रकाश वाला है इस लिये सामान्य नही है किन्तु जड़ है। आत्मा का प्रकाश ऐसा नहीं है। प्रथम तो वह अकृत्रिम है, किसी से उत्पन्न नही होता और उसका नाश भी नहीं होता। दीपक का प्रकाश दूसरे की अपेक्षा रखता है आत्मा का प्रकाश किसी की अपेक्षा नहीं रखता। आत्म प्रकाश में संयोग की भी आवश्यकता नहीं है, उसका विरोधी कोई पदार्थ नहीं है, वह न्यूनता अधिकता रहित है। इस प्रकार आत्म प्रकाश दीपक के प्रकाश से अत्यन्त विलक्षण है। ऐसी विलक्षणता वाला आत्म प्रकाश दीपक के समान जड़ परिच्छिन्न कैसे हो सक्ता है ?

दीपक को तू जड़ बताता है बता वह किस प्रकार जड़ है ? क्या जिसमें क्रिया करने की शक्ति न हो, जिसमें बुद्धि देखने में न आती हो, अथवा जो अपने आप कुछ न कर सक्ता हो, उसे ही तू जड़ कहता है या और किसी को ? जो क्रिया करता हो, जिसमें बुद्धि दीखती हो, और जो अपनी इच्छानुसार हिताहित समझ कर चेष्टा करने वाला हो, क्या उसे ही तू चैतन्य

समझता है ? जड़ और चैतन्य को इस प्रकार समझना माया का है और माया में है। घन तमोगुण वाली माया तेरे हिसाब से जड़ है और सतोगुण के अंतःकरण वाली माया चैतन्य है किन्तु वास्तविक ये दोनों ही जड़ हैं। हम जड़ चैतन्य की व्याख्या इस प्रकार करते हैं:-जो स्वयं सत्ता वाला नहीं है, दूसरे की सत्ता से-अधिष्ठान के प्रकाश से प्रकाशित और सत्ता वाला होकर चेष्टा करता अथवा नहीं करता है, जो स्वयं विकार वाला है, उत्पत्ति नाश वाला है, थोड़े देश मे व्यापक है, पंचभूत और तीनों गुण वाला है वह जड़ है। इस प्रकार ब्रह्माण्ड और उसका सब दृश्य माया में आ जाता है। इससे विरुद्ध लक्षण वाला, सबको सत्ता स्फूर्ति देने वाला, अविकारी, उत्पत्ति नाश रहित, सर्व का अधिष्ठान, अपेक्षा रहित व्यापक, तीनो गुणो से रहित, और दृष्टि का अविषय एक परब्रह्म आत्मा चैतन्य है। श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार माया और माया के सब कार्य जड़ हैं, मात्र एक क्षेत्रज्ञ ही चैतन्य है, तेरे जड़ चैतन्य की समान यह चैतन्य नहीं है यदि भ्रांति से तू उस परब्रह्म को अपनी समझ के समान चैतन्य न कहे तो भी कुछ चिन्ता नहीं, वेदान्त में माया के जड़ और चैतन्य से आत्मा का विलक्षणपना दिखलाया है दोनों से विलक्षण होकर जो दोनों को प्रकाशता है वह परब्रह्म है। प्रारम्भ में मंद बुद्धि वालों को समझाने के लिये आत्मा को चैतन्य बताया है यदि ऐसा न करते तो अज्ञानी या तो आत्मा को जड़ मान बैठते अथवा असत्य मान लेवे। ऐसा होने से अर्थ का अनर्थ हो

जाता इसलि येआत्मा चैतन्य, ज्योति आदिक शब्दों से कहा गया है।

दीपक को तू इसलिये जड़ कहता है कि दीपक प्रकाश देता हुआ भी किसी को करने या न करने की प्रेरणा नहीं करता, शुभ अशुभ, पाप, पुण्यादिक सभी को एकसा प्रकाशता है। उसके सामने भला बुरा कैसा ही कार्य हो उसका साक्षी नहीं बनता, प्रकाश वाला है, विशेष बुद्धि रहित है और स्वाभाविक प्रकाश वाला है। आत्मा के लक्षण भी इसी प्रकार तेरे सुनने में आये हैं। "आत्मा भले बुरे दोनों को समान प्रकाश देने वाला है, साक्षी भाव, बुद्धि रहित है" ऐसा सुनकर और ऊपर की समानता समझ कर तुझे भ्रांति हो रही है। ऊपर मैंने आत्मा और दीपक की विरुद्धता दिखलाई है और भी सुनः—आत्मा स्वतः प्रेरणा करने वाला नहीं तो भी वह आभास द्वारा प्रेरणा करने वाला है। यदि तू कहे कि दीपक भी तो ऐसे ही प्रकाश द्वारा प्रेरणा करने वाला है तो ऐसा नहीं है। दीपक का प्रकाश वस्तु के देखने में मदद देता हुआ भी प्रेरक नहीं है और वस्तु के ज्ञान वाला हो ऐसा भी नहीं है। प्रेरणा का ज्ञान जीव में होता है आत्मा मे साक्षी अथवा साक्ष्य की दृष्टि नहीं है। जहां साक्षी और साक्ष्य भाव का संबंध है वहां आत्मा का शुद्ध आभास साक्षी है, दीपक के प्रकाश–आभास में यह गुण नहीं है। आत्मा में बुद्धि नहीं है तो भी बुद्धि में बोधत्व आत्मा से है। दीपक में बुद्धि नहीं है. और बुद्धि में दीपक का बोधत्व भी नहीं है तब आत्मा दीपक के समान

कैसे हो सक्ता है ? ऊपर से दीखती हुई थोड़ी सी समानता से भ्रांति से किया हुआ निर्णय यथार्थ नहीं होता।

एक साहूकार की दो स्त्रियां थी, संतान एक के भी न थी ! साहूकार दोनों को छोड़ कर व्यापार के लिये विदेश चला गया दोनो स्त्रियों मे परस्पर मेल न था छोटी बड़ी से ईर्षा रखती थी, उसको कष्ट दिया करती थी। एक दिन छोटी बड़ी से अपने बाल सफा करा रही थी, संयोगवश उसके हाथ से उसके शिर के कुछ बाल उखड़ गये। छोटी ने समझा कि बड़ी ने मेरे ऊपर कुछ टोना कर दिया है इसलिये वह बड़ी पर बहुत क्रोधित हुई और उठकर बड़ी के माथे के बाल पकड़ कर खेंचने लगी। ऐसा करने से उसके शिर के बाल उखड़ गये और शिर में पीड़ा भी होने लगी। उसने विचार किया; ऐसे दुःख में जीने से मरना अच्छा है। कोई पशु मुझे खाजाय तो अच्छा है। घर में रहकर दुःख भोगना अच्छा नहीं है ! ऐसा विचार कर वह वहां से भागी और एक वन की तरफ चल दी। मार्ग में उसे एक तालाब मिला उसम उसन स्नान किया शरीर का मैल छुटाया तालाब की काई साफ की, फिर तालाब के इधर उधर की पृथ्वी साफ की, वहां से थोड़ी दूर पर उसने एक तुलसी का पेड़ देखा; उसके आस पास पड़े हुए पत्ते बीन लिये तुलसी के आसपास की मिट्टी गोड़ दी, तालाब में से जल लाकर तुलसी पर चढ़ाया पीछे वहां से चल दी। रस्ते में एक बीमार और भूखी मृगी मिली। उसे देखकर वह इधर उधर स घास तोड़ लाई। मृगी के पास की पृथ्वी साफ

करके उसने उसे घास खिलाई और पास के तालाब से जल लाकर पिलाया। फिर आगे बढ़ी तो एक बुढ़िया मिली वह कुटी में अकेली बीमार पड़ी थी। घर में खानें पीने का सब सामान था परन्तु बुढ़िया भोजन नहीं बना सक्ती थी। स्त्री ने प्रथम तो सब घर में झाड़ू लगाई, फिर रोटी बना कर बुढ़िया को खिलाई और आप खाई। फिर बुढ़िया से आज्ञा लेकर आगे चली। थोड़ी दूर जाकर उसे एक शिवालय मिला। पहले उसने सब मंदिर में झाड़ू लगाई और फिर प्रेमपूर्वक शंकर का पूजन किया। वहां से भी आगे चली, एक कुटी मिली। उसमें एक साधु समाधि लगाये बैठा था। स्त्री उसे देखकर खड़ी रह गई, थोड़ी देर में साधु ने आंखें खोलीं। स्त्री ने उसे प्रणाम किया। साधु ने कहा, बाई, तुझे क्या दुःख है ? स्त्री ने कहा, महाराज, आप सर्वज्ञ हैं ! जिस प्रकार मैं दुःख सागर में डूब रही हूँ, आप सब जानते हैं ! मेरा पति मुझे नहीं चाहता है, मेरी सौत मुझे बहुत दुःख देती है, मैं निरपराध हूँ, एक दिन मेरी सौत ने मेरे बाल खेंच लिये तब वहां से भाग कर आपकी शरण आई हूँ, आप मुझ पर कृपा कीजिये ! साधु ने अंगुली से बताकर कहा—देख, सामने तालाब है, उसमें एक गोता लगाकर मेरे पास आ। स्त्री गई और एक डुबकी लगा कर निकल आई। स्नान करने से वह सर्वांग सुन्दर होगई ! शरीर की कांति चमकने लगी ! शिर के टूटे हुए बाल ज्यों के त्यों होगये ! मुख चन्द्रमा की समान शीतलता के साथ प्रकाश देने लगा !

ऐसा स्वरूप देखकर वह बहुत प्रसन्न हुई। साधु के पास आ कर उसने साष्टांग प्रणाम किया। साधु ने कहा, बाई उठ, पास की पर्णकुटी मे जा, वहां एक वस्त्र रक्खा हुआ है उसको पहन ले, पास ही एक संदूक है उसमें आभूषण रक्खे हुए हैं, उनको निकाल कर धारण करके मेरे पास आ। स्त्री ने वैसा ही किया। साधु ने कहा, बाई, इन वस्त्र और आभूषणों का ऐसा प्रभाव है कि इनका धारण करने वाला कभी दुखी नहीं होता, इनको कोई छीन नहीं सक्ता! तू कभी दुखी न रहेगी। स्त्री साधु का उपकार मान कर और प्रणाम कर के वहां से चल दी। शिवालय में आई, प्रणाम करके चली, बुढ़िया से मिली बुढ़िया भी अच्छी होगई थी, उसकी लड़की जो ग्राम चली गई थी आगई थी। स्त्री ने बुढ़िया को प्रणाम किया, बुढ़िया ने भोजनो के लिये आग्रह किया भोजन करके स्त्री आगे चली, मृगी के पास आई। मृगी घास चरने और पानी पीने से कुछ ठीक होगई थी, उसने अपनी प्रसन्नता प्रगट की। स्त्री आगे बढ़ी, तुलसी के वृक्ष के पास आई, वहां एक मनुष्य पूजा करता हुआ देखा, तुलसी के पेड़ ने भी प्रसन्नता प्रगट की, स्त्री प्रणाम करके आगे चली, तालाब के पास आई, उसकी शोभा देखी और जल पीकर वहां आराम किया। थोड़ी देर आराम करके वहां से भी रवाना हुई और अपने घर पहुंच गई। छोटी स्त्री ने उसे देखा परन्तु वह उसे पहचान न सकी और उसे देखकर आश्चर्य करने लगी। यह कौन है? इसी का मकान हो इस प्रकार घुस आई है। जब बड़ी स्त्री बोली तब छोटी ने उसे पहचाना, वस्त्राभूषण धारण किये

हुए देखकर वह उससे कुछ न कह सकी। थोड़ी देर पीछे उसने कहा बहिन- तूने इस प्रकार का ऐश्वर्य कहा से प्राप्त किया है? बड़ी ने कहा, प्रथम मैंने तालाब में स्नान किया, फिर तुलसी के दर्शन किये, आगे एक बीमार मृगी मिली, फिर एक बुढ़िया मिली, एक शिवालय मिला और अंत में एक साधु मिला। उस साधु की कृपा से मुझे सौन्दर्य और ऐश्वर्य दोनों प्राप्त हुए हैं। यह सुनकर छोटी ने भी सौन्दर्य और ऐश्वर्य प्राप्त करना चाहा। एक दिन बड़ी से बिना कहे ही वह घर से चल दी, तालाब के पास आई वहां उसने दो तीन कुल्ले किये, दांतोन चीर कर वहीं किनारे पर पटक दी, फिर मिट्टी लगा कर शिर धोया, मिट्टी शिर में से तालाब मे गिरी, जो बच रही वह वहीं किनारे पर पड़ी रही। तालाब में उसने कुल्ला किया और वहीं थूका भी; इस प्रकार वहां से स्नान करके वह आगे चली, तुलसी के पेड़ के पास आई, उस में से दो चार पत्ते तोड़ कर उसने चबा लिये। पत्ते गले में जाकर टेढ़े हो जाने से खांसी आई, उससे तुलसी की क्यारी में ही खखार गिर पड़ी। वहां से चलकर वह मृगीकी तरफ आई। मृगी पेड़ के नीचे बैठी थी इसने हिंसक पशु समझकर दो चार पत्थर उसके मारे जब मृगी देखी तो आगे चली, बुढ़िया की झोंपड़ी के पास आई डोकरी बुड्ढी थी, उसकी कमर झुक गई थी, उसे देख कर स्त्री को हंसी आई बुढ़िया ने घर में बुला कर उस से भोजन बनाने को कहा। प्रथम तो उस ने मने किया अन्त मे खिचड़ी बनाने लगी। खिचड़ी ऐसी बनाई कि सब जल गई, मुख में रखने योग्य भी न रही, बुढ़िया से खाई न गई इस लिये

फेंकनी पड़ी। वहां से चल कर स्त्री शिवालय में पहुँची यहां उसे टट्टी जानेकी आवश्यकता हुई, मंदिरके पास ही उसने टट्टी फिरी। मंदिर मे बाल खोले तो केई बाल और जुयें वहां गिर गये। वहां से आगे चल कर वह साधु की कुटी पर पहुँची, साधु समाधि मे था। थोड़ी देर मे जाग्रत हो कर उसने कहा, बाई, तू क्यों आई है? स्त्री ने कहा मेरी सौत सुन्दर रूप वाली होगई है, इसलिये मेरा पति अब मुझे प्यार नही करेगा। मैं भी उसीके समान सुन्दर रूप और वस्त्राभूषण वाली होने आई हूँ। साधु ने तालाब बता कर कहा बाई, उसमे डुबकी लगा कर आ जा, एक से अधिक डुबकी मत लगाइयो। स्त्री तालाब पर गई और डुबकी लगा कर शरीर देखने लगी तो शरीर सुन्दर बन गया था उसने जी में बिचार किया, यदि एक और डुबकी लगाई जाय तो विशेष सुन्दर, हो जाऊं। यह विचार कर उसने, दूसरी डुबकी लगाई, उछल कर जो देखा तो शरीर काला कोयला होगया। वह जी मे अत्यन्त दुःखी हो, रोती हुई साधु के पास आई। साधु ने कहा, कर्कशा, तू अपने अभिमान, ईर्षा से आप ही दुःखी होगी! तू स्वरूप वाली, नहीं हो सक्ती। इसी दम तू यहां से चली जा, नहीं तो मै तुझे भस्म कर दूंगा। इस प्रकार फटकार कर साधु ने उसे निकाल दिया। विचारी निराश और लज्जित हो कर जिस मार्ग से आई थी उसी मार्ग से लौट गई। घर पहुँची तो बड़ी ने उसे न पहचाना क्योंकि वह भयंकर रूप वाली काली चुड़ैल सी हो आई थी! उसने रो २ कर अपना सब वृत्तान्त सुनाया। बड़ी आश्चर्य करने लगी। उसी दिन शाम को उनका पति भी

विदेश से आगया। उसने सब वृत्तान्त सुना। उस दिन से बड़ी मान वाली हो गई और छोटी उसकी दासी होकर अपनी आयु विताने लगी।

इस प्रकार ऊपर की सामान्यता देख कर विलक्षण वस्तुओं को एक समझना ऐसा ही है, ऐसा निश्चय कर लेना न चाहिये। दोनों स्त्रियां एक ही मार्ग से गई थीं और आई भी, एक ही से थीं, तो भी एक दूसरी के आन्तरिक भाव मे दिन रात का अंतर था। बड़ी सुशीला थी, छोटी दुष्टा थी। भला दोनो फिर एक प्रकार कैसे हो सकें? इसी प्रकार दीपक परिच्छिन्न तुच्छ है, आत्मा विभु महान् है। दोनो की समानता किस प्रकार हो? वे दोनों समान नहीं हैं किन्तु दोनों में महान् अन्तर है।

इस दृष्टांत का यह भी भावार्थ निकलता है:—साहूकार जीव है, मोक्ष भाव वाली वासना सुशीला बड़ी है, प्रापंचिक भाव वाली वासना दुष्टा छोटी स्त्री है। दोनों का आपस में मेल नहीं होता। प्रपंच का फल शीघ्र देखने में आता है इसलिये जीव छोटी स्त्री से प्रेम करता है। मुमुक्षुता के उच्च भाव से, जब प्रपंच भाव की कुछ हानि हुई तब दुष्टा क्रोधित हुई। सुशीला तीव्र वैराग्य से प्रपंच का स्थान छोड़ कर, चली, प्रथम जिस तालाव मे स्नान किया वह अन्नमय कोश है, उसकी सफाई की, मल दोष नाश किया, फिर तुलशी के पास जो आई वह प्राणमय कोश है, उसकी सफाई कर के विक्षेप दोष निवृत्त किया। फिर मृगी रूप मनोमय कोश मे आई, उसका स्थान साफ करके प्रस-

ञता प्राप्त की, पश्चात् वह जिस बुढ़िया के पास आई, वह बुद्धि का विज्ञानमय कोश है बुढ़िया को प्रसन्न करना उसको साफ करना है। मंदिर आनन्दमय कोश है, उसको प्रणाम किया–उसे साफ़ किया, अन्त में साधु के स्थान तुर्यावस्था मे आई, साधु के बताये हुए ब्रह्म रूप तालाब में डुबकी लगाई, उससे सुशीला ज्ञान स्वरूप प्रसन्नता वाली और ऐश्वर्य वाली हो गई, उसे अलौकिक भाव प्राप्त हुआ देख कर प्रपंच वाली वासना दुष्टा भी ऐश्वर्य प्राप्त करने चली, उसने पांचों कोश साफ नहीं किये इसलिये मल, विक्षेप, आवरण असंभावना और विपरीत भावना बनी रहीं। साधु ने ब्रह्म रूप तालाब में स्नान करने को कहा। स्नान करने से वह सुन्दर तो हो गई परन्तु विशेष सुन्दर होने की कामना–विपरीत भावना ने उसे गिरा दिया इसलिये उसका स्वरूप प्रथम से भी अधिक बिगड़ गया। योग्यता बिना देखा देखी ज्ञान प्राप्त के मार्ग में जाने वाले प्रथम तो जाते ही नहीं, यदि कभी चले भी जांय तो दुष्टा के समान दुर्दशा को ही प्राप्त होते हैं।

सामान्यता मे विशेषता नहीं होती, यह तेरा कहना सत्य है, परन्तु सामान्यता से विशेषता अवश्य होती है, जैसे सूर्य का प्रकाश सामान्य है, उसमें आतिशी शीशे को रखने से जलाने की शक्ति उत्पन्न होती है, वह शक्ति आतिशी शीशे की नहीं है, सूर्य के प्रकाश की ही है। आतिशी शीशा प्रकाश एकत्र करने वाला यंत्र है, एकत्र होने से विशेषता हो जाती है इसलिये पात्र के संबंध से होने वाली विशेषता उत्पत्ति नाश वाली है।

'विशेषता विना चैतन्यता कहाँ' यह तेरा कहना ठीक नहीं है क्योंकि सामान्यता से ही विशेषता होती है, यदि सामान्यता से विशेषता न हो तो किसी प्रकार भी पात्रों में विशेषता न हो! विशेषता विना सामान्य में चैतन्यता न हो ऐसा कोई नियम नही है। सामान्यता ही मुख्य पदार्थ है विशेष और न्यून विकार पात्रके संबन्ध स होता है मुख्य सामान्यता है और वह ही आत्मा है।

तू ने कहा है 'शरीर पैदा होता है' यह तेरा कहना स्थूल शरीर के विषय में है स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर का ही प्रभाव है। स्थूल शरीर की उत्पत्ति नाश देखने में आता है सूक्ष्म शरीर उत्पत्ति रहित है। आत्मा परमात्मा की एकता के दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान विना उस का नाश नहीं होता। नाश रहित होने पर भी वह रूपान्तर वाला है उस के तादात्म्य वाला चैतन्य जो जीव कहलाता है वह ही कर्ता भोक्ता कहलाता है। जब स्थूल शरीर टिकने योग्य नही रहता अथवा जिस भोग के निमित्त वह बना था, उस भोग के समाप्त होने पर उस सूक्ष्म शरीर में से अन्य स्थूल शरीर की रचना होती है। सूक्ष्म शरीर का जो जो भाव फल देने के योग्य पक जाता है, उस के भोग के निमित्त स्थूल शरीर बनता है इसलिये ऐसा नहीं है कि स्थूल शरीर अलग तैयार हो और फिर उस में सूक्ष्म शरीर के भाव वाला जीव प्रवेश करे, भावना के संयोग से सूक्ष्म शरीर ही खिंच कर स्थूल भाव को प्राप्त होता है जब तक स्थूल शरीर अवयव युक्त नही होता-विकाश को प्राप्त नहीं होता तब तक उसमें जीव होना

जानने में नहीं आता। जैसें झोंक एक पैर उठा कर प्रथम एक स्थान पर रखती है वह पैर जब वहां जम जाता है तब दूसरा पैर उठाती है इसी प्रकार जीव जब अन्य शरीर की तरफ पैर को स्थापित कर लेता है तब प्रथम शरीर को छोड़ता है। ऐसा जो कहा है उस का रहस्य यह है कि जीव प्रथम भोगने योग्य कर्मों में अपने भाव को टिकाता है, जब वह भाव टिक जाता है तब वह भोगे हुए शरीर का त्याग करता है, और टिका हुआ भाव क्रम से स्थूल होता जाता है। किसी किसी शास्त्र में ऐसा भी लिखा है कि बच्चे के गर्भ मे आने के कई मास पश्चात् उसमें जीव आता है, यह लिखना स्थूल दृष्टि से है। बात यह है कि सूक्ष्म से स्थूल होता है और स्थूल में सूक्ष्म भावना बनती है। दोनों का संबंध बीजांकुर के समान है। जिस प्रकार वृक्ष के स्थूल भाव का अंश बीज में रहता है, और संयोग प्राप्त होने से जब वृद्धि को प्राप्त होता है तब स्थूल हो जाता है, इसी प्रकार सूक्ष्म से स्थूल होता है इसलिये उसमें पीछेसे जीवका प्रवेश नहीं होता। जब स्थूल शरीर गर्भ में अविकाश वाला होता है तब उसमें क्रिया मालूम नहीं होती, जब वह क्रम से विकसित होता जाता है, और अन्त में जब उसका घूमना मालूम होने लगता है तब स्थूल दृष्टि वाले जीव आना मानते हैं, इससे यह न समझना चाहिये कि प्रथम उसमें जीव न था।

"जिस प्रकार वायु पुष्पादि से सुगंध ले जाता है इसी प्रकार जब जीव स्थूल देह त्याग कर नवीन स्थूल को प्राप्त होता है तब

मन और इन्द्रियों को अपने साथ ले जाता है" । (श्रीमद्भगवद्-गीता अ० १५ श्लो० ९) इससे सिद्ध होता है कि स्थूल इन्द्रियों के सब भाव जाते हैं और स्थूलताको प्राप्त होते हैं । जीव के अभिमान वाला सूक्ष्म देह अपंचीकृत पंच महा भूतों का है, उस में से ही पंचीकृत पंच महाभूतों का स्थूल शरीर बनता है इसलिये जीव का प्रवेश पीछे से नहीं होता । जब उसका प्रवेश ही नहीं होता तब उसका प्रमाण क्या हो ? जीव का गमन भी भ्रांति से है जीव का शुद्ध स्वरूप विभु है जो नित्य सब स्थानों में व्यापक है। व्यापक का जाना आना किस प्रकार बन सके ? जीव की जो अल्पज्ञता है वह माया के पात्र के साथ की एकता के कारण हैं। इसलिये भ्रांति है जैसे सूर्य का प्रकाश विस्तार में फैला हुआ है, प्रकाश में एक स्थान पर एक दर्पण रक्खा है दर्पण के कारण से उसमें पड़ा हुआ सूर्य का प्रकाश विशेष दीखता है। यदि दर्पण को धूप में एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जांय तो लेजाने के समय ऐसा मालूम होगा कि दर्पणमें पड़ा हुआ प्रकाश दर्पण के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा रहा है परंतु ऐसा नहीं है जहां जहां दर्पण जाता है वहां वहां प्रकाश ही उसको प्रकाश देता है। दर्पण में पड़े हुए प्रकाश के टुकड़े नहीं होते, जो दर्पण के साथ जाते हों किन्तु दर्पण के प्रकाश में दीखते हुए टुकड़े दर्पण के कारण से हैं। दर्पण के प्रकाश का जाना आना नहीं होता परन्तु भ्रांति से जाता हुआ दीखता है। ऐसे ही शुद्ध जीव जीवात्मा परब्रह्म रूप है, उसका जाना आना संभव नहीं है।

शरीर जड़ है, उसका जाना आना, उत्पत्ति और वृद्धि चैतन्य जीव की सत्ता रहित किस प्रकार हो सके ?

एक मनुष्य जिसने साधु के कपड़े पहन लिये थे, जहां जाता था वहां अपने को सिद्ध प्रकट करता था और कहा करता था कि मैं सिद्धियों के प्रभाव से कुछ खाता नहीं हूँ एकवार एक स्थान पर जाकर उसने अपना प्रपंच जाल फैलाया। वहुत लोगों ने देखा कि वह दिन मे कुछ नही खाता था रात्रि में भी कुछ मनुष्य उस के पास रहते थे, उन्होंने उसे रात्रि में भी कुछ खाते न देखा ! एक मनुष्य बुद्धिमान् था उसने अनुमान किया कि बिना खाये शरीर इस प्रकार तगड़ा रहना ही असम्भवित नहीं है किंतु भोजन किये बिना मनुष्य जी ही नहीं सक्ता, इस की परीक्षा करनी चाहिये। साधु किसी के देखने मे नहीं खाता था। वह प्रतिदिन पांच सेर हलुआ बनवाकर लड़कों को बांटा करता था। बुद्धिमान् ने छुप २ कर कई वार देखा परन्तु वना हुआ साधु कभी खाता हुआ न दीखा, उसने जी मे विचारा "कैसे आश्चर्य की वात है कि खाता तो कुछ नहीं परन्तु प्रतिदिन पाखाने जाता ही है। छुपकर कहीं टट्टी जाते समय तो खा नहीं लेता !" ऐसा विचार कर वह मनुष्य जव साधु जंगल में टट्टी जाने लगा तव उसके पीछे होलिया साधु ने हाथ में कमंडल लिया, सव के सामने पानी भरा और शरीर पर लंगोटी के सिवाय कुछ न रक्खा। इस प्रकार कमंडल लिये हुए वह एक कोस तक चला गया, वहां जाकर उसने चारो तरफ देखा जव कोई दिखलाई न दिया तव कमंडल

खोला उसका नीचे का भाग परदे वाला अलग था, उस में हलुआ भरा हुआ था उसको निकाल कर भोग लगाना आरम्भ किया ! खाने के पश्चात् कमंडल के ऊपर के भाग मे भरा हुआ जल पी कर वह वहां से चल दिया, थोड़ी दूर पर एक ताल था उस में से जल भर कर टट्टी गया और स्नान करके आकर अपने आसन पर बैठ गया। बुद्धिमान् मनुष्य सब देखता रहा और दूसरी तरफ से घूम कर थोड़ी देर मे साधु के पास आकर कहने लगा "भोजन साधु कभी न करता, टट्टी जंगल जाता। तोंबा में हलुआ भर लेता बन में छुप के खाता" ठग समझ गया मेरी छल विद्या सब प्रगट होगई। यहां अब दाल न गलेगी ! दूसरे दिन चुपके से उठ कर चल दिया। जैसे विना भोजन शरीर नहीं रह सक्ता इसी प्रकार चैतन्य स्वरूप जीव के बिना स्थूल शरीर का रहना भी असम्भवित है तब उसका प्रमाण क्या ? ऐसा प्रश्न ही नहीं हो सकता।

अन्तिम सारांशः—आत्मा के सामान्य प्रकाश और दीपक के प्रकाश की समानता नहीं हो सक्ती। विशेषता बिना चैतन्यता न हो यह नियम नहीं है। भौतिक-मायिक पदार्थों के दृष्टांतों से समझाये हुए जड़ चैतन्य से आत्मा की चैतन्यता विलक्षण है, वह किसी प्रकार जड़ नही हो सक्ता। शरीर के उत्पन्न होने के पश्चात् उस मे जीव का आना नहीं होता किंतु जीव सहित ही स्थूल शरीर उत्पन्न होता है। जब उसमें जीवका प्रवेश है ही नहीं तो प्रवेश होने का प्रमाण क्या हो ?

१७ जन्म किस का ?

प्रश्नः—मरने के बाद जल कर खाक हो गया, कुछ न रहा, फिर जन्म किसका होगा ?

उत्तर—जो मरा सो कौन मरा वह चैतन्य था अथवा जड़ था ? प्रथम तो यह विचारना चाहिये। पंचीकृत पंचभूतों से बना हुआ जो शरीर है वह जड़ है, वह ही जगत में उत्पन्न होता है और मरता है। जो मर गया वह पंच तत्त्व को प्राप्त हो गया ऐसा भी कहते हैं इस का अभिप्राय यही है कि जो ताने बाने के समान पंच महा भूतों से ग्रथित हुआ था वह निवृत्त हो गया और पंचतत्त्व अपने २ तत्त्वों को प्राप्त होगये, इसी का नाम मरना है। स्थूल शरीर को जलाते, जल में प्रवाह करते, पृथ्वी में गाढ़ते अथवा जंगल में फेंक देते हैं इस प्रकार मृतक शरीर की चार गति हैं इन चारों प्रकार से सातों धातु (रस, रुधिर, माँस, मेद, मज्जा, अस्थि और रेत) जिनका स्थूल शरीर बना है, अपने २ तत्त्व में मिलजाती हैं अर्थात शरीर नाश होने से पाँचों तत्त्व पंच महाभूतों मे मिल जाते हैं उन्हीं को तू कहता है कि खाक हो गया और कुछ न रहा ! यह कैसे ? क्या जो कुछ था, शरीर ही था ? जीते और मरे शरीर में कुछ अन्तर है या नहीं ? यदि अन्तर न होय तो तेरे कहे अनुसार कुछ न रहा परन्तु स्थूल शरीर में कोई एक ऐसी वस्तु है कि जिस के रहने ही से अपवित्र वस्तुओं से बना हुआ शरीर पवित्र समझा जाता है जब वह नहीं रहता तब जो कुटुम्बी उसे प्यार करते थे वे ही उसे घर से बाहर निकाल कर

जला देते हैं। जब वह वस्तु नहीं रहती तब किसी प्रकार की क्रिया नहीं होती, यदि उसे जलाया न जाय तो सड़ जाय। विचारना चाहिये कि सड़ने का क्या कारण है जो प्रथम सौन्दर्य वाला दीखता था वह ही भयंकर दीखने लगता है इस से सिद्ध है कि कोई वस्तु उसमे अवश्य थी जिससे वह जीवित था। मरने के समय कोई पदार्थ बाहर जाता हुआ दिखाई नहीं देता इसलिये उसमें कुछ और न था और कुछ निकल कर नही गया ऐसा मूर्ख के सिवाय और कोई नहीं कह सकता। जो था वह स्थूल पदार्थ न था इस लिये स्थूल दृष्टि का विषय नहीं था। फिर किस प्रकार दिखाई दे ? उसी वस्तु से अन्तःकरण काम करने योग्य बना हुआ था, उसी से ज्ञानेन्द्रिय ज्ञान वाली थीं, वह वस्तु ही शरीर में राजा रूप थी। जैसे राजा जब राज्य स्थान छोड़ कर चला जाता है तब उसकी सब प्रजा भी उस के साथ चली जाती है, सब शहर खाली पड़ा रहता है और वहां भूत पिशाच और शेर गीदड़ आदि का वास हो जाता है, इसी प्रकार जब शरीर का अधिपति शरीर को छोड़ कर चला जाता है, तब शरीर का भी वही हाल होता है। बाहर के चिन्हों से तो इतना ही मालूम होता है कि श्वासोश्वास जो पहिले लेता था अब नहीं लेता, जो शरीर पहले गरम था अब ठंडा पड़ा है। उस गरमी के साथ ही प्राकृत जीव रहता था, उसने शरीर रूप स्थान छोड़ दिया है। वह जीव अन्तःकरण संयुक्त और वासनामय होता है इसलिये एक शरीर की भोग रूप वासना को समाप्त करके दूसरे प्रकार

के भोग के निमित्त दूसरे प्रकार के शरीर में संयुक्त होता है यह ही संसार मे जन्म मरण कहलाता है। शरीर में रहने वाला और शरीर से जाने वाला एक ही पदार्थ है जिस से जन्म मरण होता है। शरीर ही है और शरीर के नाश के पश्चात् जन्म धारण करने वाला अन्य नहीं है, ऐसा नहीं है। तेरा प्रश्न नास्तिकों (परलोक न मानने वालों) का सा है जो प्राचीन समय मे चार्वाकों का सिद्धान्त था। उन लोगों का कहना इस प्रकार है "जैसे पेड़ की उत्पत्ति पेड से होती है इसी प्रकार मनुष्य से मनुष्य की उत्पत्ति होती है, विशेषता कुछ नहीं है, न कोई ईश्वर है न कुछ पाप पुन्य है, न कोई उन का देने वाला है, केवल भौतिक संयोगो से शरीर की उत्पत्ति होतो है, जैसे कई पदार्थ मिलने से मादकता (नशीला पन) उत्पन्न हो आती है इसी प्रकार सब सयोग मिलने से शरीर मे चैतन्यता उत्पन्न हो आती है।" नास्तिकों का इस प्रकार का कहना मानने योग्य नहीं है।

(१) उन का कहना है कि पेड़ से पेड़ की उत्पत्ति होती है, ऐसे ही मनुष्य की है यह ठीक है परन्तु ऐसी उत्पत्ति वासना वाले जीव से ही होती है जो वासना न हो तो उत्पत्ति होना संभव नहीं है। वृक्षादिक में भी जीवत्व है, सुख दुःख का उनको भी भान होता है इस लिये उन में भी वासना है किन्तु उनकी वासना तमोगुण की विशेषता वाली होने मे मनुष्यों की वृद्धि की समान नहीं है। हर एक कार्य की उत्पत्ति कारण से होती है, बिना कारण के कोई कार्य उत्पन्न नहीं होता। वृक्षादिक में जीव है और

सुख दुःख भी है ऐसे अपने शास्त्रकार प्राचीन कालसे मानते आये हैं। हाल ही बंगाल के एक पदार्थ विज्ञानी डाक्टर बोस ने वृत्तों को सुख दु:ख होता है यह दर्शाने वाले यंत्र तैयार करके पश्चात् के विद्वानो को झूठा ठहराते हुए अपने ऋषि विज्ञान को सिद्ध किया है। (२) मादक (नशीले) पदार्थों की समान चैतन्य की उत्पत्ति कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि जिन पदार्थों के संयोग से शरीर में मादक पदार्थों की समान चैतन्य की उत्पत्ति कहते हैं वह संयोग मरनेके समय टूटता नहीं है तब चैतन्यता क्यों चली जाती है ? संयोग टूटे बिना नहीं जानी चाहिये। यदि यो समझा ज़ाय कि मादक रूप चैतन्य पुराना होने से नष्ट होजाता है तो यह भी नहीं बन सका क्योंकि छोटे लड़को और युवान पुरुषों पुराने न होते भी चैतन्य नहीं रहता, बालक और युवान भी मर जाते हैं। (३) जब सब की उत्पत्ति किसी मुख्य कारण रहित ही है तब सब को एक समान होना चाहिये था परन्तु ऐसा नहीं है, शरीर के अंग उपांग समान दीखते हुए भी, स्थूल आकृति एक की दूसरे से नहीं मिलती और सूक्ष्म सृष्टि का तो बहुत ही अन्तर है तब कैसे कहा जाय कि सब की उत्पत्ति बिना किसी विशेष कारण के एक समान हुआ करती है, कारण अवश्य मानना पड़ेगा। एक ही माता पिता से उत्पन्न हुए पुत्रो में एक बुद्धि वाला और दूसरा बुद्धहीन देखने में आता है इतना ही नहीं किन्तु दो साथ उत्पन्न हुए में भी आकृति और मानसिक विचार का अन्तर होता है। माता पिता के समान ही पुत्र हो ऐसा भी नियम नहीं है। कई

बातों में माता पिता के अंश मिलते हैं और कई अंशों में नहीं भी मिलता इस लिये यह कहना विरुद्ध है कि इसके सिवाय कोई कारण ही नहीं है। मनुष्य, पशु, पत्ती आदिक में जो भिन्नता देखने में आती है वह भिन्नता किस कारण से है? एक सुखी होता है दूसरा दुःखी, एक श्रीमान् होता है दूसरा कंगाल, इसका क्या कारण है? यदि यह कहा जाय कि विद्या का भेद है तो यह भी ठीक नहीं है क्योंकि एक ऊंचे दर्जे का पढ़ा हुआ (Graduate) प्राय. इतनी कमाई नहीं करता जितनी अपढ़ कर सक्ता है, अपढ़ श्रीमान् होता है, पढ़ा हुआ कंगाल होता है। इन सब भेदो के लिये पूर्व कर्म मानना पड़ेगा।

पंच भौतिक शरीर जन्मने वाला और मरने वाला है क्योंकि मरने के पीछे उस का नाश होजाता है परंतु जिस सूक्ष्म शरीर से अथवा कर्ता भोक्ता के अभिमान वाले जीव से स्थूल शरीर का जन्म होता है वह नाश को प्राप्त नहीं होता, उससे ही जन्मने वाला दूसरा स्थूल शरीर फिर उत्पन्न होता है। नये स्थूल शरीर का प्राप्त होना ही जीव का जन्म माना जाता है। जीवात्मा के रहने और भोग भोगने का स्थान स्थूल शरीर है। एक के नाश होने के पीछे दूसरे को उत्पन्न करके जीव अपना भोग भोगता है। यह ही बात प्रथम प्रश्न के उत्तर में समझाई गई है।

यदि स्थूल शरीर ही आत्मा-जीव माना जाय तो पूर्व, उत्तर जन्मों का अभाव मानना पड़े, उस से ईश्वर, शास्त्र और वनाय में अनेक दोष आते हैं। ईश्वर जो न्यायी कहलाता है अन्यायी हो

जाय, यदि ईश्वर माना ही न जाय तो जब एक छोटे से छोटा कार्य भी कर्ता बिना होना असम्भवित है तो इतने बड़े ब्रह्माण्ड की रचना अनेक नियमों के साथ चलना किस प्रकार सम्भव हो सकेगी ? जिस स्थूल शरीर की रचना वासना के साथ में टिके हुए जीव भाव से होती है उसी जीव भाव में प्रकाश देने वाला ईश्वरत्व है उसी ईश्वर की सृष्टि रचना में सत्ता है। यदि किसी देश में शासन करने वाला राजा न हो तो प्रजा की व्यवस्था नियमानुसार नहीं चले, एक दूसरे से लड़ाई झगड़ा होने लगे और व्यवहार अस्त व्यस्त हो जाय। जब जगत् में सब व्यवहार नियमानुसार देखते हैं तब कैसे कह सक्ते हैं कि भौतिक तत्त्व सिवाय और कोई तत्त्व नियामक और ईश्वर नहीं है। जो ईश्वर से उत्पत्ति न होय और पूर्व, उत्तर जन्म न होय तो भोग की भिन्नता निष्कारण हो और ऐसा होने से अपनी इच्छा अनुसार किसी को सुखी किसी को दुखी बनाने वाला ईश्वर अन्यायी ठहरे और ईश्वर को अन्यायी कहना उचित नहीं है। जो ईश्वर माना ही न जाय तो पाप पुन्य झूठे हो जांय, न कोई पाप रहे, न कोई पुन्य रहे, पाप पुन्य बिना जगत् की व्यवस्था ही नहीं चल सक्ती। पुण्य के कार्य में श्रम और व्यय होता है, जब पुन्य का कुछ फल ही न हो तो संसारी पुन्य करें ही क्यों ? और जो पुन्य ही उठ जाय तो शुभ कर्म ही न हो, तब जगत् ही न हो इसलिये पुण्य पाप अवश्य है। पुण्य पाप का बताने वाला शास्त्र है। पुण्य पाप का करने वाला शरीर से पृथक कोई जीव है और ऐसे जीव जिस की सत्ता में अपना व्यवहार करते हैं, ऐसे उनका पति ईश्वर भी

है। पुन्य पाप का फल होने से ही पूर्व और उत्तर जन्म होते हैं नास्तिकों के विषय गीता में इस प्रकार कहा है:—"वे लोग आसुरी योनियों को प्राप्त हो कर जन्म २ में अधिक मूढ बनते हुए मुझ को प्राप्त नहीं होते और नीच गति को ही प्राप्त होते हैं" (गी० १६।२०) आर्यावर्त वासी मनुष्यों को इस प्रकार अश्रद्धालु बन कर नास्तिक बनना किसी प्रकार भी योग्य नहीं है।

एक बार एक नीतिवान् राजा ने एक पुस्तक में देखा, कि "न्यायाधीश जो न्याय करता है अपनी तरफ़ से नहीं करता उसके हृदय में ईश्वर विराजमान है वह ही ठीक रीति से न्याय कराता है।" यह पढ़ कर उसको शंका हुई कि न्याय तो मैं अपनी बुद्धि से करता हूँ ईश्वर मेरी बुद्धि को न्याय करने में किस प्रकार प्रेरित करता है? ईश्वर देखने में तो आता नहीं, प्रेरणा किस प्रकार करता होगा? यह देखना चाहिये। एक दिन राज अकेला ही मृगया खेलने चल दिया, जब वह मृगया खेल के लौटा तब मार्ग में उसे एक वैश्य मिला, उस समय उसके पास दो सौ रुपये थं जिनको वह किसी ग्राम से लेकर आ रहा था। वह राजा को पहचानता था। उसने उस से राम २ की और दोनो में यह बात चीत ई:-राजा:-सेठ, कहां से आरहे हो? वैश्य—महाराज, पास के ग्राम में आसामियों से रुपया मांगने गया था, वहां से रुपया लेकर घर जा रहा हूँ। राजा:—कितने रुपये लाये हो? वैश्य:—दो सौ रुपये। राजा— क्या मुझे उधार दे सक्ते हो? वैश्य:—आपके लिये रुपये का क्या

टोटा है? राजाः—टोटा नहीं है किन्तु यहीं चाहिये, महल पर पहुंच कर तुम्हारा रुपया भेज दिया जायगा। वैश्यः—बहुत अच्छा, रुपया आप ले लीजिये (राजा घोड़े पर से उतरा और दोनों एक वृक्ष के नीचे गये) वैश्यः—(रुपये निकाल कर) आप राजा है, आपको रुपया देने मे किसी साक्षी की आवश्यकता नहीं है परन्तु हमारा कुल धर्म है कि हम विना साक्षी किसी को रुपया नहीं देते। राजाः—यहां जंगल मे साक्षी कहां? वैश्यः—(पेड़ की तरफ अंगुली करके) यह पेड़ ही रुपये देने का साक्षी है। राजाः—(वैश्य को भोला भाला समझकर मुसकराता हुआ) अच्छा, पेड़ ही साक्षी है। वैश्यः—(दो सौ रुपये गिन कर) लीजिये, दो सौ रुपये पूरे हो गये। राजाः—हां, ठीक दो सौ रुपये हैं। वैश्य रुपये दे कर चल दिया और राजा भी घोड़े पर चढ़कर चक्कर लगाता हुआ महलों में जा पहुंचा। चार दिन हो गये परंतु राजा ने रुपये न भेजे। पांचवें दिन वैश्य जब रुपया मांगने गया तो राजा कहने लगा, रुपया कैसा? क्या कहता है? मैं तुझ से दो सौ रुपये क्यों उधार लेता? मैं ऐसा क्यों करता? क्या मेरे पास रुपये का टोटा है? पागल की सी बातें करता है। वैश्य राजा के ऐसे वचन सुनकर विचारने लगा, राजा धर्मात्मा होकर रुपया लेकर मुकरा जाता है! कैसा बुरा समय आगया है। छोटे की नीयत बिगड़े तो बिगड़े भी, मात्र दो सौ रुपये के लिये इतना बड़ा राजा अधर्मी हुआ जाता है! इस प्रकार सोचता हुआ वैश्य घर को चल दिया। राजा को पुस्तक में पढ़ी हुई बात का निर्णय

करना था, इसलिये वह चुपका हो गया। वैश्य ने घर जाकर पांच साहूकारों को एकत्र करके सब वृत्तांत सुनाया। उनमें से एक चतुर साहूकार ने कहा राजा अधर्मी तो है नहीं, कोई कारण इसमें अवश्य होगा। तू राजा के ऊपर नालिश कर और उसमें लिख कि राजा स्वयं आरोपी होने से इसका न्याय वह न करे किंतु पंच से कराया जाय। अन्य सब साहूकारों ने भी यह ही सम्मति दी वैश्य ने इसी प्रकार किया। राजा ने वैश्य का दावा सिद्ध करने को एक पंचायत नियत की और उसने वैश्य और राजा को बुला कर इस प्रकार न्याय करना आरम्भ किया:—प्रथम वैश्य से पूंछा गया। उसने सब वृत्तांत सुनाया और पेड़ साक्षी बताया। पंच:—अच्छा तू अपने साक्षी पेड़ को ले आ। वैश्य:—पेड़ किस प्रकार आ सक्ता है? वह तो नहीं आ सक्ता। पंच:—अच्छा पेड़ नहीं आ सक्ता तो न सही, उसका एक पत्ता ही ले आ, हम उसको साक्षी समझ लेंगे। वैश्य:—अच्छा मैं पत्ता लेने जाता हूँ। यह कहकर वैश्य पत्ता लेने जाने लगा तब राजा कहने लगा मैं दो घंटे तक यहां कैसे ठहर सक्ता हूँ? पेड़ बहुत दूर है। पंच ने कहा, बस, साक्षी की अब कोई आवश्यकता नहीं है, (वैश्य से) तू पत्ता लेने न जा, हम न्याय इस प्रकार करते हैं:—राजा ने अवश्य रुपया लिया है, यदि न लिया होता तो कैसे उसे मालूम होता कि पेड़ दूर है इसलिये राजा को वैश्य का रुपया व्याज और खर्चे सहित देना चाहिये। राजा पंच के मुख से ये वाक्य सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुआ और वैश्य से कहने लगा, मैंने एक पुस्तक में यह लिखा देखा था कि जब न्याया

धीश न्याय करता है तब वह अपनी तरफ से नहीं करता किंतु परमेश्वर उसके हृदय में विराजमान् होकर न्याय किया करता है, यह निश्चय करने के लिये मैंने यह युक्ति की थी, अब मुझे मालूम होगया कि यथार्थ में ईश्वर ही न्याय कराने वाला है, जहां पंच तहां परमेश्वर यह कहावत ठीक ही है। मैं रुपया लेना कभी अंगीकार करने वाला न था, मेरे मुख से जो शब्द निकल गये वे परमेश्वर की प्रेरणा से ही निकले और पंचो को भी भाव समझने की सामर्थ्य उसने ही दी थी। राजा ने वैश्य का सब रुपया व्याज सहित देकर उसको व्यर्थ परिश्रम देने के बदले और बहुत रुपया दिया और पंच, राजा और वैश्य सब अपने अपने घर चले गये।

इस प्रकार के ईश्वर के प्रेरणा करने के अनेक दृष्टांतो से, अन्तःकरण के शुद्ध भाव से और महात्माओं के अनुभव से पुनर्जन्म सिद्ध है, प्रत्येक कार्य मे मनुष्य स्वतंत्र नहीं है, उसकी परतंत्रता ही पूर्वजन्म और पूर्वजन्म के किये हुए कर्मों का अनुमान कराने वाली है। यदि यह ही जन्म हो और उससे पूर्व और उत्तर का सबन्ध न हो तो मनुष्य का रोकने वाला और कोई नहीं है परन्तु जगत् मे अदृष्ट से कोई रोकने वाला है ऐसा अनुमान किया जाता है इसलिये शरीर में रहने वाला कोई और है जो कर्मानुसार दूसरे शरीर का बनाने वाला और उसमें टिकने वाला है। एक राजा ने अपनी पुत्री का विवाह करने का निश्चय किया था परन्तु राजकुमारी के पूर्व कर्म के भोग किसी और ही प्रकार

के थे जिससे राजा की एक भी युक्ति काम न आई, वह वृत्तांत इस प्रकार है:—

एक राजा की एक ही कुमारी थी, जब वह विवाह के योग्य हुई तब राजा ने विचार किया, मेरे एक कन्या है, वह मुझे बहुत प्यारी है, इसलिये उसके वर की खोज मुझे स्वयं करना चाहिये, किसी और का भरोसा नही है, मेरे तो वह ही कुमारी है, वह ही कुमार है, मेरे राज्य का स्वामी मेरे पीछे, मेरा जामातृ ही होगा, कोई सुन्दर, बुद्धिशाली, राजवंशी ढूंढ़ना चाहिए, अपनी इच्छानुसार योग्य वर मुझे ही खोजना चाहिए। इस प्रकार विचार कर राजा दूसरे दिन राज्य का काज अपने मंत्री के स्वाधीन करके थोड़े मनुष्य साथ लेकर राजकुमारी के वर की खोज करने चल दिया। एक दिन ऐसा हुआ कि राजा के साथ के मनुष्य पीछे रह गये और वह दोपहरी में एक स्थान पर टिक कर अपने मनुष्यों की राह देखने लगा जिस स्थान पर वह ठहरा था, उस स्थान के पास ही एक फूँस की कुटी वनी हुई थी। उसमें एक साधु रहता था, राजा ने साधु के पास जाकर प्रणाम किया और पानी पिया, पीछे राजा और साधु में यह बात चीत हुई—राजा.-महाराज, मैं इस देश का राजा हूँ, मेरी कुमारी वर के योग्य हुई है, उसके लिये मैं राजकुमार की खोज में जा रहा हूं। साधु-(आश्चर्य युक्त होकर) राजा! तू व्यर्थ ही दौड़धूप करता है। राजकुमारी का होने वाला पति तेरी नगरी में ही है। राजा:-महाराज! आप यह कैसे जानते है? साधु:-राजा, हम ईश्वर भक्त हैं, ईश्वर कृपा

से कभी २ भविष्य की बात हम जानते हैं। राजाः—महाराज राजकुमारी का होने वाला पति कौन जाति का है और कह रहता है ? साधु —तेरे राजमहल की दक्षिण दिशा में एक सौदा गर का मकान है, उसके एक ही पुत्र है, जो पिंड रोगी है, उस से तेरी पुत्री का विवाह होगा। राजाः—(बहुत क्रोधित होकर लाल नेत्रों से साधु की तरफ देखकर) जोगटा ! ऐसे शब्द कहते हुए तुझे लाज नहीं आती ? मेरे लिये रोगी जमाई बताने वाल तू कौन है.? मैं तुझे दंड दूंगा। कहां का तू और कहां का तेर ईश्वर ? ईश्वर कहां है जिसकी तू भक्ति करता है ? भविष्य क्या होता है ? जो मनुष्य करता है वही होता है। ईश्वर के नाम से लोगों को ठगने के लिये तूने ढोग बना रक्खा है। साधुः—(शांत मुख से) राजा, तू इतना क्रोध क्यों करता हैं ? तू मुझे मेरे वाक्यो और मेरे ईश्वर को झूंठा बताता है, यदि मेरे कहे अनुसार न हो तो मुझे अवश्य दंड देना। राजकुमारी का ऐसा ही पति मेरे जानने में आया है, मेरा जाना हुआ कभी झूँठ नहीं होता। मैं ऐसी बातें किसी से कहता भी नहीं हूँ, तू राजा है, लड़का ढूँढने में कष्ट उठा रहा है इसीलिये मैंने तुझे तेरा जमाई बता दिया है। राजाः—यह नहीं हो सक्ता, मैं अपनी सुवर्ण समान पुत्री को पिंडरोगी सौदागरके लड़केको कभी नहीं देसकता। विधाताका लेख कुछ भी नहीं है, मैं स्वयं, स्वरूपवान् और योग्य राजकुमार की खोज करके उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह करूंगा। देख मैं ऐसा करता हूँ या नहीं, तेरा कहना झूंठ निकलेगा।- साधुः—(मुसकराकर) राजा इतना कष्ट क्यों उठाता है ? निश्चित हुआ

भविष्य कभी टल नहीं सक्ता। राजाः—कब निश्चित हुआ था? साधुः—जन्म होने के साथ ही। राजाः—ऐसा क्यों निश्चित हुआ? साधुः—पूर्व जन्म के कर्मानुसार। राजाः—मै पूर्व जन्म को नहीं मानता, इसलिये भविष्य का निर्माण भी मैं नहीं देखता, मैं तो अपने विचार के अनुसार कार्य करता हूँ। इतने में पीछे रहे हुए लोग आगये और राजा सहित सब आगे चल दिये, मुकाम करते हुए कई दिन पीछे एक राजा की राजधानी में पहुँचे। जब वे उस राजा की सभा में पहुँचे तो वहां के राजा ने उनका आदर सत्कार किया और पूछा, आप किस निमित्त आये हैं? तब राजा ने कहा, मैंने सुना है कि आपके एक कुमार है, मेरी एक कुमारी है, दोनों योग्य हैं, मेरी इच्छा है कि दोनों का विवाह हो जाय तो अच्छा है। पुत्र वाले राजा ने स्वीकार कर लिया और ज्योतिषियों को बुलाकर विवाह का दिन नियत कर दिया।

राजा अपनी राजधानी मे लौट आया। राजकुमारी के संबंध की बात चीत सुनकर सब लोग हर्ष सहित विवाह की तैयारी करने लगे। साधु की बात राजा ने किसी को नहीं सुनाई परंतु उसके जी में खटका रहा आया। "जो सौदागर का पुत्र किसी दूर स्थान पर भेज दिया जाय तो विवाह निर्विघ्न हो जाय" ऐसा राजा ने अपने जी में विचार कर एक सौदागर को जो परदेश जाने वाला था एकांत में बुलवाकर कहा, अमुक सौदागर का पुत्र जो पिंड रोगी है उसको अपने जहाज पर ले जाकर किसी दूर स्थान में छोड़ दे, यदि तू ऐसा न करेगा तो तेरा घरबार

लुटवा दूंगा और जहाज भी छीन लूंगा। सौदागर ने कहा, महा-राज, जैसी आपकी आज्ञा है वैसा ही करूंगा, उसको ले जाकर किसी निर्जन द्वीप में छोड़ दूंगा, जहां से वह लौटकर न आ सकेगा। इस प्रकार कह कर सौदागर ने एक अपना और एक राजा का आदमी भेजकर सौदागर के लड़के को बुला लिया और राजा के आदमी के सामने उसे अपने जहाज पर बैठा कर जहाज को चला दिया, जहाज के चलने के कई दिन पीछे मार्ग में एक टापू दिखाई दिया सोदागर ने उस लड़के को उस टापू में उतार दिया और जहाज चल दिया।

उधर राजकन्या के विवाह का दिन समीप आया, विवाह की सब तैयारी होगई, बरात सहित दूल्हा आगया, कल विवाह होगा। राज कन्या उत्तम वस्त्राभूषण धारण करके अपनी सखियों के साथ वार्तालाप कर रही थी। बातें करते २ उसे निद्रा आने लगी इस लिये वह पलंग पर सोगई, और सब सखियां भीं वहां से चली गई थोड़ी देर में राजकुमारी पलंग पर चोंक कर जाग्रत हो गई और "हाय! बाप रे, हाय! अम्मारी, मैं मरी जाती हूँ" इस प्रकार चिल्लाने लगी। उसका शब्द सुन कर रानी और सब दासियां दौड़ी आईं तो क्या देखा कि एक तरफ कुमारी चिल्ला रही है और दूसरी तरफ एक काला सर्प दौड़ रहा है। दासियों ने सर्प को मार डाला। राजकुमारी कहने लगी "माता! मेरे शरीर में भारी वेदना हो रही है, सब शरीर में जलन हो रही है, मेरे बायें पैर के अंगठे में सर्प ने काट खाया है। इतना कह

कर वह मूर्छित हो गई। राजा भी आगया, बहुत से वैद्य, मंत्र-शास्त्री आदिक बुलाये गये। अनेक उपाय किये गये परन्तु विष किसी प्रकार न उतरा। सबने निश्चय कर लिया कि राजकुमारी मर गई। उस देश में सर्प के काटने से मरे हुए को जला देने की प्रथा नहीं थी इसलिये राजकुमारी की लाश बांस के आपे पर सुलाकर समुद्र में बहादी गई और राजकुटुम्ब घर पर लौट आये। रात्रि को विवाह की जो शोभा होने वाली थी सब बिगड़ गई, राजमहल में अंधेरा छा गया, राजा अत्यन्त शोकातुर था, रानी बारंबार मूर्छित हो जाती थी सब शहर मे जहां देखो वहां हाय २ हो रही थी। दूल्हा इस समाचार से निराश होकर मनुष्यों सहित अपने शहर को लौट गया।

उधर सौदागर का पिंड रोगी पुत्र निर्जन स्थान में छोड़े जाने के पीछे इधर उधर घूमने लगा। घूमते २ एक पेड़ के नीचे जहां पानी का झरना बह रहा था वहां पहुँचा। झरने में से उसने पानी पिया और बहुत भूखा होने के कारण, खाने की वस्तु पास न होने से वह उस पेड़ के पत्ते खाने लगा। पत्ते बड़े स्वादिष्ट मालूम हुए और उसके खाने से उसकी क्षुधा निवृत्त हो गई, वह चैतन्य हो गया। उसने प्रथम बहुत से मिष्टान्न खाये थे। परंतु इन पत्तो के स्वाद के सामने वे तुच्छ थे, उनको खाने से दो तीन दिन में ही उसके मुख की कान्ति बदल गई। एक दिन उसने पत्तों को बहुत ही गुणदायक समझ कर उन्हे पीस कर अपने पेट और शरीर पर मलना आरम्भ किया। पेड़ के नीचे

उसके पत्ते खाना और उनका रस शरीर पर मलना इस चालीस दिन तक करने से उसका रोग जाता रहा और .वता की समान सुन्दर होगया, देह सुवर्ण के समान े लगी।

वहां उसने एक झोपड़ी बनाली और उसमें वह रहने लगा। दिन उसने विचार किया, यदि ईंटें बनाकर उन पर पत्तों ् मला जाय तो वे सोने की हो जांय, ऐसा विचार कर के ने के पास की मट्टी खोद २ कर वह ईंटें बनाने लगा और तैयार होने पर उन पर रस निचोड़ने लगा। जो ईंटें रस ेसे सुवर्ण की हो जाती थी उनको वह अपनी कुटी मे जमा देता था। एक दिन वह समुद्र किनारे टहलने गया। वहां ापे से वंधी हुई एक युवान स्त्री की लाश किनारे आती हुई पड़ी उसे उसने समुद्र से खींच लिया और पेड़ के पत्तो पर व होने के कारण, कदाच उनके लगाने से अच्छी हो जाय, ९ विचार कर लाश को एकांत स्थान मे रख कर पेड़ के पत्ते ले और उसका रस निकाल कर स्त्री के सर्वांग में लेपन या। थोड़ी देर में उसका श्वास आने जाने लगा। जब उसने ें और रस निचोड़ कर उसके शरीर में लगाया, तब तो स्त्री ।थ पैर हिला कर बैठी होगई और कहने लगी "मैं बहुत भूखी ।" सौदागर के पुत्र ने वही पत्ते उसे खिला दिये और जल ाकर पिला दिया। दोनों वहां से चलकर कुटी में आये। राज ् ने विवाह का और सर्प के काटने का सब वृत्तांत सुनाया

सौदागर के पुत्र ने कहा, हे राजकुमारी, मैं तेरे देश के सौदागर का पुत्र हूं, तेरे पिता ने विना अपराध मुझे इस निर्जन टापू में भेज दिया है। यह कहकर वहां आने के पश्चात् का सब वृत्तांत उसने राजकुमारी को सुनाया और दोनों साथ २ ही रहने लगे। दोनों ही सुन्दर थे दोनों का प्रेम दिन प्रतिदिन वढ़ता गया। थोड़े दिन पीछे दोनों ने प्रतिज्ञापूर्वक गंधर्व विवाह कर लिया और स्त्री पुरुष के भाव से रहने लगे। दोनों को अपने नगर जाने की इच्छा थी इसलिये जहाज की खोज में रोज समुद्र किनारे टहलने जाने लगे। एक दिन एक जहाज़ आता हुआ देखकर साहूकार पुत्र ने संज्ञा कर के उसको किनारे पर बुलाया। जहाज़ का मालिक उतर कर आया तो मालूम हुआ कि यह वही सौदागर है जो साहूकार पुत्र को वहां पहुँचा गया था। सौदागर उसकी कंचन समान काया देखकर उसे पहचान न सका। दोनों में यह वात चीत हुई.—साहूकार पुत्र.-मैंने आपके जहाज़ को इसलिये वुलाया है कि यह (राज कन्या की तरफ़ अंगुली कर के) आपके देश के राजा की पुत्री है, हम दोनों आप के जहाज़ में वैठकर अपने नगर को जाया चाहते हैं। राज पुत्री के पहुँचने से राजा आप से वहुत प्रसन्न होगा। सौदागर—(प्रसन्न होकर) वहुत अच्छा! दोनों सोने की ईंटों सहित जहाज़ में सवार हो गये और थोड़े दिनों में अपने नगर में जा पहुँचे। सौदागर ने दोनों को राजा के पास ले जाकर कहा, महाराज, यह आपकी पुत्री है, यह उसका पति है। मैं इन दोनों को वड़ी दूर एक टापू से लाया हूँ। राजा पुत्री को पहचान कर और

साहूकार पुत्र का स्वरूप देखकर बहुत प्रसन्न हुआ ! दोनों से उनका वृत्तांत पूछा। दोनों ने अपने ऊपर बीती हुई सब वार्ता सुनाई। राजा ने बहुत ही प्रसन्न होकर सौदागर को पारितोष देकर विदा किया। दोनो के आने की खबर शहर भर में फेल गई और सब स्थानों पर आनन्द उत्सव होने लगा। साहूकार भी अपने पुत्र को निरोग और राज कुमारी का पति बना जानकर प्रसन्न हुआ। तब राजा पिछली बात याद करके सोचने लगा " मैं कैसा मूर्ख हूँ ? साधु की भविष्य वाणी न मानकर और ईश्वर पर श्रद्धा न कर के अपनी इच्छानुसार कुमारी का विवाह करने को उद्यत हुआ। ईश्वर निर्मित भविष्य कभी व्यर्थ नही होता।"

इस दृष्टांत से विदित हुआ होगा कि पूर्व के कर्मों के अनुसार प्रारब्ध बनता है। जब पूर्व के कर्मों का फल यही जन्म है तब अब के किये हुए कर्मों का फल उत्तर जन्म भी है।

अन्तिम शारांश:—मरने के पीछे जल कर खाक होने वाला स्थूल शरीर है। जिसका यह स्थूल शरीर है वह कर्ता भोक्ता जीव उससे भिन्न है। जब तक वह शरीर में रहता है तब तक शरीर जीता कहलाता है जब वह शरीर का भाव छोड़ता है तब शरीर मृतक हो जाता हैं। जीव अपने कर्मानुसार दूसरा शरीर धारण कर लेता है इस प्रकार शरीर धारण करना जन्म कहा जाता है। नास्तिक शरीर को ही आत्मा मानते हैं। यह उनका न मानना शास्त्र और संतों के अनुभव से विरुद्ध है और लोक दृष्टि से भी इस प्रकार मानना अयुक्त है। यह बात दृष्टांत से समझाई है।

१८ मैं कौन हूँ ?

प्रश्न:—मैं कौन हूँ किस के सहारे टिका हुआ हूँ ? जाग्रतादि अवस्था क्या हैं ? किस की है ? और अवस्थाओ का फल क्या है ? भावना अनुसार फल होता है तो हम राजा होने की भावना करने से राजा क्यों नहीं हो जाते ।

उत्तर:—एक गंवार एक शहर में गया और एक दुकान से कुछ सौदा लेने लगा । दुकान वाले ने किसी कारण से कहा, तू गधा है । गंवार ने कहा, क्या मैं सचमुच गधा हूँ ? उसकी यह बात सुन कर एक मनुष्य ने जो पास खड़ा था, हंस कर कहा, सचमुच तू गधा ही है गंवार विचार करने लगा और थोड़ी देर में बोल उठा, नहीं, मैं गधा नहीं हूँ, मैं गधा हूं तो भुस क्यो नहीं खाता ? दूकानदार मुसकरा कर बोला, तू है तो गधा ही, परन्तु चतुर गधा है । (गंवार की तरफ देख कर) भुस तो तू इस लिये नहीं खाता कि लड़कपन से तुझे रोटी खाने को मिलती रही है । गंवार जी में सोचने लगा, ठीक तो है, ऐसा है तो मैं गधा हो सकता हूँ, और रोटी मिलने भुस नहीं खाता । उसे सोच में देख कर दुकानदार ने कहा, मूर्ख, जो तुझे मेरी बात का विश्वास न हो तो दूसरे से पूछ देख । थोड़ी दूर पर एक मनुष्य जा रहा था उसको पास बुला कर गंवार ने कहा, सेठ जी, यह लाला जी मुझे गधा बताते हैं, क्या सचमुच में गधा हूँ ? आप सच २ बताइये । ऐसी मूर्खता का प्रश्न सुन कर पथिक ने मुसकरा कर

कहा, हां; तू गधा है। अब तो गंवार को गधा होने का भाव दृढ़ होने लगा परन्तु पूर्ण दृढ़ता न हुई "मैं गधा हूँ या कुछ और हूँ" इस चिंता ने उसको व्यग्र कर डाला। वहां से वह चल दिया मार्ग में जो मिलता उस से यही प्रश्न करता। उसका प्रश्न सुन कर सब उसे गधा बताते। अन्त मे एक सच्चा मनुष्य मिला उसने कहा अरे मूर्ख क्या तू नहीं जानता! तू मनुष्य है। गंवार सोचने लगा, सब मुझे गधा बताते हैं, यह एक मनुष्य बताता है, अब मैं किस की बात सच्ची मानूं? निश्चय नहीं होता कि सच-मुच मैं कौन हूँ।

क्या तेरा यह प्रश्न इसी प्रकार नही है? जैसे उस गंवार को गधा बताने वाले बहुत थे और मनुष्य बताने वाला एक ही था इसी प्रकार तुझे कर्ता भोक्ता जीव बताने वाले संसारी मनुष्य बहुत हैं और एक सच्चा संत तुझ को आत्मा कहता है। तू संशय के जाल मे पड़ा हुआ है इस लिये निश्चय नहीं कर सकता कि तू कौन है। तू सच्चिदानन्द आत्मा है, परब्रह्म तुझ से अभिन्न है, जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय जिस में हुआ करती हैं, जो सब का अधिष्ठान स्वरूप है, वही तू आत्मा है परन्तु जब तक तेरा भाव अज्ञान से सम्मिलित है तब तक तू उसे कर्ता भोक्ता के भाव में लगाता है जब तेरा अज्ञान जाता रहेगा तब तू 'मैं' का शुद्ध आत्मा में प्रयोग करेगा।

तेरा दूसरा प्रश्न है मैं कैसा हूं।' जब तक 'तू कौन है' यह नहीं जानता तब तक 'तू कैसा है' किस प्रकार जान सकेगा? तू

शरीर पर काला कुरता, काला पाजामा और काला साफा बांध कर अपने को कपड़ों के साथ एक करके पूछे "मैं कैसा हूं ?" तो हर एक तुझे काला बतावेगा। और जब तू किसी संत के पास जाकर इस प्रकार का प्रश्न करेगा तो वह तेरे अज्ञान का प्रश्न देख कर कहेगा कि तू अज्ञान वाला है। भिन्न २ दृष्टि के कारण एक ही प्रश्न के तुझे भिन्न २ उत्तर मिलेगे। यदि मैं तेरे प्रश्न का उत्तर वस्तु के शुद्ध भाव से कहूं तो तू अव्यय अक्रिय सर्व व्यापक और सत्य वस्तु-ज्ञान स्वरूप निर्विकार है। इस पर यदि तू ऐसा कहे कि मैं ऐसा नहीं हूँ तो तेरा यह कहना इस लिये है कि तूने वास्तविक स्वरूप नहीं समझा है। शरीर सहित अपने को मानता है इस लिये अव्यय नहीं हूँ ऐसा कहता है। जिसमे से कभी न्यून न होय उसको अव्यय कहते हैं। उपाधि के कारण तू अपने को सर्व-व्यापी भी नहीं मानता। मैं जिस तेरे स्वरूप का वर्णन करता हूँ जब तू उस स्वरूप के भाव वाला होवे अथवा उस स्वरूप मे स्थिति वाला होवे तब ही ठीक समझ सका है। जब तक तू ऐसा न होवे तब तक महत् पुरुषो के वाक्य मान कर तुझको समझने का प्रयत्न करना चाहिये। थोड़े वचनो में तेरे प्रश्न का उत्तर यह है कि तू सब माया प्रपच का अधिष्ठान शुद्ध स्वरूप अद्वैत ब्रह्म है।

एक बड़ी लड़की जो प्रथम ही बालक को जन्म देने वाली थी एक दिन अपनी सास से कहने लगी, अम्मा, जब मेरे बच्चा

होने को हो तब तू मुझे जगा दीजो, ऐसा न हो जाय कि मैं सोती ही रहूँ और लड़का हो जाय। सास बोली, बेटी, मैं तुझे क्या जगाऊंगी, तू ही सब घर वालो को और आसपास के पड़ोसियो को जगा देगी! जिस प्रकार यह कहना है इसी प्रकार जब तेरा अज्ञान दूर हो जायगा तब तुझे स्वयं ही मालूम हो जायगा कि तू कैसा है। स्वानुभव की बात स्वानुभव बिना मालूम नहीं हो सक्ती, प्रसव की पीड़ा बांझ नहीं जान सक्ती। तू जो अपने को हाथ पैर और शरीर वाला मान रहा है, वह तू नहीं है, वे तो अज्ञानके भाव से पहने हुए कपड़े हैं। तुझको देहाध्यास इतना दृढ़ होगया है कि तू देह के सिवाय अपने को और कुछ नहीं समझता, अज्ञान के पटल हट जाने से तू यह बात समझेगा। यदि तु पूर्ण श्रद्धा और तीव्र बुद्धि के साथ अनुमान कर के समझे तो कुछ समझ सक्ता है परंतु ठीक बोध तो साक्षात्कार होने ही पर होता है।

"मैं किस के सहारे टिका हूँ?" इस प्रश्नके भी पूर्व के समान अनेक उत्तर हो सक्ते हैं। सच्चा उत्तर तो यह है कि तू किसी के सहारे नहीं टिक रहा है, ब्रह्मांड तेरे सहारे टिक रहा है। ब्रह्मांड भर का तू सहारा है। तुझ अधिष्ठान रूप में भ्रांति का–मायिक कल्पना का दृश्य दीखता है। जो सबका सहारा हो वह किस के सहारे टिके? अज्ञान सच्चे सहारे को झूठा और झूंठे सहारे को सच्चा बनाता है। आत्मा किसी के सहारे नहीं टिका है, अपनी महिमा में ही टिका है।

एक पंडित के लड़के ने काशी मे जाकर बहुत से शास्त्र पढ़े किन्तु उसने उन्हे गुणा नहीं। अंत में जब उसने अपने को विद्या मे कुशल हुआ समझा तब वह घर लौट आया। एक दिन उसके पिता ने उससे बाजार से एक रुपये का घी मंगवाया। उसने बाजार में जाकर एक रुपये का घी खरीदा और बटलोई मे रखवा कर घर लौटा। मार्ग में उसके जी में विचार उठा "घी के सहारे बटलोई है या बटलोई के सहारे घी है ? इस प्रकार बडी देर तक उसने विचार किया परन्तु उसको पढ़ी हुई विद्या ने इस बात का उत्तर न दिया, तब उसने अपनी शंका का निर्णय करने के लिये बटलोई उलट दी, सब घी पृथ्वी पर गिर गया। लड़का प्रसन्न होकर जी में कहने लगा, ठीक है, मैं समझ गया बटलोई के सहारे घी था, प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्ध हो गया। शंका के समाधान की प्रसन्नता के पीछे चिंता उठी, अरे! पिता ने घी मंगवाया था, घी पृथ्वी पर गिर गया, पिता चिल्लायेंगे! अब मैं क्या करूं ? इस प्रकार विचार करता हुआ उतरे मुख से विचारा घर चला आया। पिताने उसे उदास देख कर और सब बात जान कर उस पर और उसकी विद्या पर बहुत क्रोध किया।

क्या उस लड़के की समान ही तुझे शंका है ? माया के सहारे आत्मा है अथवा आत्मा के सहारे माया है ? जिस प्रकार उस लड़के ने प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध किया था इसी प्रकार माया को उलट दे-गिरा दे तब तुझे निश्चय हो जायगा कि आत्मा ही उसका सहारा है। आत्मा माया के अथवा माया के किसी पदार्थ

के सहारे नहीं है, माया के भाव के कारण आत्मा का दर्शन तुझे दुर्लभ हो रहा है। लौकिक शास्त्र भी पढ़ कर तूने गुणे नहीं हैं। तू नहीं जानता कि लौकिक शास्त्र किस हेतु वाले हैं फिर यह तेरी विद्या आत्मबोध में किस प्रकार काम दे? अध्यस्त को अधिष्ठान मान कर वह लड़का घी से हाथ धो बैठा था।

शरीर के भाव वाला जीव, शरीर की जिस स्थिति (हालत) मे टिकता है उस टिकाव की स्थिति को अवस्था कहते हैं, वे अवस्थायें शरीरो की हैं। स्थूल शरीर की जाग्रत् अवस्था है, स्थूल में रहने वाले सूक्ष्म शरीर की स्वप्नावस्था है और सूक्ष्म शरीर मे रहने वाले कारण शरीर की सुषुप्ति अवस्था है। मूर्छा और समाधि भी शरीरो की ही अवस्थाये हैं। स्थूल शरीर का जिसमें भान होता है, जिसमें ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और प्राण विविध चेष्टायें करते हैं, जो जगत् की तरफ मुखवाली है, अन्नमय कोश में होती है, जिसमें स्थूल भोग होते हैं, जिसमें जीवात्मा विशेष भाव करके नेत्र स्थान में टिकता है, जिसमें भीतर से बाहर की तरफ आने वाली वैखरी वाणी है, जिसकी क्रिया शक्ति है, जिसमें जीव की विश्व नाम संज्ञा होती है, जो जन्म, जरा और मरण वाली है, जिसमें सतोगुण है, वह अवस्था जाग्रत् कहलाती है। जब सो जाते हैं और सोते में अनेक प्रकार के दृश्य दीखते हैं, क्रिया करते हो ऐसा भास होता है उस अवस्था को स्वप्नावस्था कहते हैं, उसमे बुद्धि जाग्रत अवस्था की अनेक वासनाओं के कारण कर्ता भोक्ता रूप होती है इस अवस्था मे जीव विशेष करके कंठस्थान में रहता है और उसमें रहने वाली

हिता नाम की नाड़ी में स्वप्न देखता है। इन अवस्था मे जीव की तैजस् संज्ञा है, रजोगुण की विशेषता है, और कंठ जो मध्य मे है उसमें रहने वाली मध्यमा वाणी है। जब गहरी नींद आती है और वहां कुछ भी मालूम नहीं देता, अपने और पराये का बोध नहीं होता, मैं हूं या नहीं हूँ, इसकी भी गम नहीं होती, बुद्धि जो जाग्रत् और स्वप्नावस्था दोनों में काम करती थी वह अज्ञान में दब जाने के कारण नही रहती और जाग्रत् होने के पश्चात् जागने वाला 'मैं सुख से सोता था, मैं कुछ न जानता था' इस प्रकार जिस अवस्था का लत्त करके कहता है वह सुषुप्ति अवस्था है। उसका हृदय स्थान है, जीव हृदय में दबा हुआ रहता है, तमोगुण की विशेषता है, मात्र अस्तित्व रहने वाली पश्यंति वाणी है और जीव की प्राज्ञ संज्ञा है। बुद्धि का, कारण अज्ञान में लय होना सुषुप्ति है, आत्मा में लय होना समाधि है सुषुप्ति और समाधि रहित बुद्धि का बोधत्व न रहना मूर्छा है।

ये तीनों अवस्थायें इस प्रकार समझो:—एक मनुष्य का एक मकान है, उसमे आगे एक खुला दालान है, दालान के बीच एक कोठरी में अनेक प्रकार को वस्तुयें रक्खी हैं, कोठरी के अन्त भाग में एक अन्धेरे वाला तहखाना है। जब मकान का मालिक बाहर के दालान में बैठता है तब उसकी दृष्टि बाहर रस्ते के ऊपर पड़ती है, जब वह भीतर की कोठरी मे होता है तब वहां की वस्तुयें देखता है और वह तहखाने में जाता है तब वहां अन्धेरा होने से वह अपने को और किसी पदार्थ को

नहीं देख सका। मकान शरीर है, मालिक जीव है, बाहर का दालान, जीव के बैठने का स्थान जाग्रत् अवस्था है, मध्य की कोठरी में जीव का जाना स्वप्नावस्था है, और तहखाने मे जीव का जाना सुषुप्ति अवस्था है।

जाग्रत् अवस्था अनेक प्रकार के दुःख और विकारों से भरी हुई है, ऐसा समझकर इस अवस्था और इस अवस्था के पदार्थों में वैराग्य होना जाग्रत् अवस्था के जानने का फल है। हृदय की अज्ञान ग्रन्थि को छेदन करके आत्मबोध प्राप्त करना इस अवस्था मे होता है। सत्शास्त्र और सद्गुरु का उपदेश भी इसी अवस्था में प्राप्त कर सक्ते हैं, इस प्रकार करना जाग्रत् अवस्था का सदुपयोग है। जो अज्ञानी जाग्रत् अवस्था को भोग भोगने के निमित्त मानते हैं, वे मूर्ख हैं। जाग्रत् अवस्था में जिन २ पदार्थों का सत्य होना भान होता है वे पदार्थ किस प्रकार भ्रान्ति वाले हैं यह दूसरी स्वप्नावस्था दिखाती है। जैसे जाग्रत् मे सब व्यवहार नियमपूर्वक ठीक २ होता है, ऐसे ही स्वप्न में भी होता है तो भी स्वप्न को सब झूंठ मानते हैं और जाग्रत् को सत्य समझते है। जाग्रत् और स्वप्न में किंचित् भेद नहीं है। जैसे जाग्रत् में स्वप्न झूठी होती है, इसी प्रकार स्वप्न में जाग्रत् झूठी होती है। स्वप्नावस्था देखकर जाग्रत् अवस्था को भी भ्रान्तिमय समझना स्वप्नावस्था का फल है। जाग्रत् किस प्रकार है, यह समझने के लिये मुख्य दृष्टांत स्वप्न है। जो मनुष्य उससे इस प्रकार फल प्राप्त नहीं करते वे उसके फल से वंचित रहते हैं। स्वप्न मे अनेक संस्कार

दीखते हैं, वे संस्कार, किस प्रकार के हैं, न्यून हैं अथवा अधिक हैं, इत्यादिक अन्तःकरण की मलिनता और शुद्धता जानने का साधन है। जो लोग स्वप्नावस्था को मात्र जाग्रत् में होने वाले भविष्य की सूचना देने वाला समझते हैं वे मूढ़ हैं। कारण शरीर की सुषुप्ति अवस्था जाग्रत् और स्वप्न दोनों प्रवृत्तियों को झूँठ ठहराती है क्योंकि जिन वस्तुओं को स्थूल अथवा वासनामय समझते हैं वे दोनो ही शून्य रूप हैं, दोनों ही भ्रांति सिवाय कुछ नहीं हैं, यह सुषुप्ति अवस्था बताती है। इस प्रकार जानना आत्म-बोध होने में उपकारक है और यह ही सुषुप्ति का फल है। जो लोग सुषुप्ति को मात्र इन्द्रियादि को आराम देने का हेतु समझते हैं वे मूढ़ हैं।

संसार भावना का बना हुआ है और उसमे जो कुछ है और होगा वह सब भावना के अनुसार है। अज्ञान के कारण मनुष्य अपनी भावना शुद्ध और तीव्र नहीं कर सक्के। मनुष्य जो जो भाव करता है उसके अनुसार सब काम होते हुए देखने में नहीं आते किंतु विशेष करके उससे उल्टा होता हुआ दीखता है, इसका कारण पूर्व की वासनायें हैं। पूर्व वासनायें जब नवीन भाव की विरोधी होती हैं तब भाव शुद्ध और तीव्र नहीं होता इसलिये भावना के अनुसार तत्क्षण फल देने योग्य निर्मलता और तीव्रता उसमे नहीं होती। पूर्व भासना की मलिनता सहित की हुई भावना का प्रत्यक्ष फल प्राप्त नहीं होता। योगी जिसने अपना मन शुद्ध, तीव्र और वशीभूत कर लिया है उसकी

भावना योग्य होने से तत्क्षण फल देती है। यदि योगी के सिवाय और किसी की भावना अनुसार फल दीखे तो समझना चाहिये कि वह भावना किसी कारण से निर्मल हो कर तीव्र हो गई है। जिस मनुष्य ने मन वश नहीं किया है, उसकी भावना तीव्र होने में पूर्व के संस्कारों की सहायता अवश्य होती है इस-लिये उसकी मलिनता दब कर कार्य सिद्ध करती है। मनुष्य अपना प्रारब्ध और क्रियाओं का बनाने वाला आप ही है। मनुष्य जैसा बनना चाहे वैसा आचरण करके बन सक्ता है। उसमें मनुष्य परतंत्र नहीं है। जो कुछ परतंत्रता इसमें दीखती है वह भी उसकी बनाई हुई है, क्योंकि मनुष्य का मानसिक भाव ही वास्तविक मनुष्य है, भाव सूक्ष्म होने से उसको उब तीव्र और निर्मल बना सक्ते हैं और जो जो स्थूल क्रियाएं होती हैं वह भी मानसिक भाव की दृढ़ हो कर पकी हुई अवस्था है। यदि कोई मनुष्य मानसिक भाव को इतना दृढ़ कर ले कि तत्क्षण पक्क हो जाय तो उसकी भावना के अनुसार स्थूल कार्य होना असम्भवित नहीं है, प्रारब्ध स्थूल होने से सूक्ष्म भावना के दृढ़ करने मे आड़ नही करती और योग प्रारब्ध का भी विरोधी होने से अत्यन्त निश्च-यात्मक तीव्रता वाले को भावानुसार फल हो सक्ता है। मनुष्य शुभ या अशुभ जो जो भावनाएं करता है वे निष्फल नहीं जातीं शीघ्र या देर में फल अवश्य देती हैं। जब भावना के संस्कार निर्बल होते हैं तब वैसे ही और संस्कार थोड़े अथवा बहुत समय का अन्तर होते हुए भी उन मे मिल कर उन्हें पुष्ट कर देते हैं तब वे फल देने में प्रवृत्त हो जाते हैं जब तक दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती

तब तक भावना के कितने ही सूक्ष्म निर्बल संस्कार हों, उनका नाश नहीं होता ज्ञान अज्ञान का विरोधी होने से ज्ञान के पश्चात् संस्कार शेष नहीं रहते। शुभ अथवा अशुभ भावना के अनुसार वर्तमान जन्म में ही कार्य होने के बहुत से दृष्टांत लोक प्रचलित हैं और देखने में भी आते हैं।

स्कोटलेंड के अनाथालय मे एक लड़का था। जिस प्रकार बहुत से लड़के चंचल और ऊधमी होते हैं इसी प्रकार वह भी हठी और चंचल था। एक दिन वह अनाथालय मे से भाग कर मार्ग में भटकता हुआ, किसी ने कुछ देदिया वही खाता हुआ लंदन शहर मे पहुँचा। वहां उसने एक बगीचा देखा, उस में वह घुस गया। वह बगीचा लोर्ड मेयर का था यह कुटुम्ब बहुत प्रतिष्ठित और श्रीमान् गिना जाता है और जब कभी सरकार को किसी कारण से धन की आवश्यकता होती है तब उसके पास से ही धन लिया जाता है। यह लड़का जब बाग में घूम रहा था तब उसने एक बिल्ली देखी। उसने बिल्ली को पकड़ लिया और उसके साथ खेलने लगा, उसकी पीठ पर हाथ फेरता, पूंछ को खींचता, बिल्ली को दुःख देने लगा। इतने में ही बगीचे के पास के देवालय में घड़ियाल बजता हुआ उसे सुनाई दिया। लड़के ने बिल्ली से कहा, यह पागल घड़ियाल क्या कहता है? (पागल इस कारण है कि बारह बजा कर रुका नहीं, बजता ही चला जाता है) भला, बिल्ली क्या समझे, उसकी तरफ से लड़का आप ही कहने लगा "टन, टन, टन, बिटंगटन, टन, टन, टन, बिटंगटन, लोर्ड

मेयर औफ लंडन" (इस लड़के का नाम विटंगटन था और उसके कहने का भाव यह था कि विटंगटन लंदन का लार्ड मेयर है)। एक कंगाल, अनाथालय से आये हुए लड़के ने अपनी भावना कितनी ऊंची की ! घड़ियाल के शब्द में लार्ड मेयर होने का भाव किया।

उसी समय लार्ड मेयर घूमता २ लड़के के वचन सुनता हुआ आगया और लड़के से कहने लगा, रे तू कौन है ? और क्या बक रहा है ? लड़के ने स्वच्छंदता से आनंदपूर्वक उत्तर दिया, लोर्ड मेयर औफ लंडन, लार्डमेयर को अपना नाम लेते हुए सुनकर उस स्वच्छंदी, छोटे लड़के पर क्रोध नहीं आया परन्तु प्रसन्न होकर उसने कहा, लड़के क्या तू पाठशाला में पढ़ने जायगा ? लड़के ने कहा, शिक्षक मारेगा नही तो जाऊंगा। लार्डमेयर ने लड़के को अपने मनुष्यों को बताकर पाठशाला भेज दिया और उसके पढ़ने का प्रवन्ध कर दिया। पढ़ते २ लड़का अंत में विद्वान् (ग्रेजुएट) हो गया। संयोग वश लोर्डमेयर के कोई लड़का न था इसलिये मरते समय अपनी सम्पत्ति का एक बहुत बड़ा भाग लड़के को देकर मर गया। उस लड़के ने अपनी सम्पत्ति बढ़ाते २ इतनी बढ़ाई कि अत में वह लोर्डमेयर हो गया। आज तक लोर्ड मेयर की श्रेणी (लिष्ट) में उसका नाम मिलता है।

यह जगत् और उसके साथ का सम्बन्ध, अपनी शौर्यता (हिम्मत) और मनोभाव का प्रत्युत्तर है। विटंगटन की शौर्यता (हिम्मत) बाल्यावस्था से ही दृढ़ थी इसलिये उसको अपने मन

के उच्च भाव के समान फल मिला। इच्छा के अनुकूल फल प्राप्त होता है। मन में जितनी दृढ़ता होती है उतना ही फल मिलता है। जैसा बोता है वैसा ही काटता है।'

पद राग.—गेहूँ बोवे गेहूँ पावे, जौ बोवे जौ पावे।
धर्मी जग से पार उतरता, डूब अधर्मी जावे॥
धन चाहे सो धनी होय है, पढ़ कर विद्या पावे।
कोई विटंगटन करि पुरुषारथ, लार्डमेयर कहलावे॥

एक वार मुझे एक अंधा मिला था और कई दिन तक मेरे पास रहा था। एक दिन मैंने उससे कहा, सूरदास, तुम्हारी दोनों आंखे किस प्रकार गई? उसने कहा, जब मैं बारह वर्ष का था तब मैंने खेलते २ एक वृक्ष पर एक चिड़िया देखकर एक ढेला उठा कर उसके ताक कर मारा। ढेले से उसकी दोनों आंखें फूट गई और वह मूर्छित होकर गिर पड़ी! उसको देखकर मैं विचारने लगा, बिचारी कितना दुःख पावेगी! मेरी आंख फूट जांय तो मैं भी इसी प्रकार दुःखी होऊं। इस बात के कोई चार महीने पीछे मेरी एक आंख दुखने आई अनेक प्रकार की औषधि की परंतु ठीक न हुई, पुतली में एक फोड़ा निकला और बहुत सा रक्त पीव निकलता रहा अंत में फोड़ा ठीक होगया किंतु मैं उस आंख से अंध हो गया। पीछे दूसरी आंख में से पानी बहने लगा और पानी बहते २ कुछ दिनों में वह भी अंधी हो गई। इसी प्रकार मैं अंधा हो गया। कई डाक्टरों को दिखला चुका हूँ किसी से भी ठीक न हुआ। मैंने कहा तूने अपनी आंख फूटने की आपही भावना

की थी, चिड़िया के निमित्त अन्धे होने की भावना करने से तू अंधा हो गया है। अंधे ने कहा, महाराज, ऐसा ही है तो अशुभ भावना शीघ्र क्यों सिद्ध होती है, शुभ भावना शीघ्र सिद्ध क्यों नहीं होती ? मैंने कहा, यदि निश्चयात्मक तीव्र भावना हो तो वह भी शीघ्र सिद्ध हो सक्ती है।

एक राजा के राजमहल के पास एक पंडित रहता था, वह राजा का आश्रित था और उसके दो लड़के थे। उनमे से छोटा लड़का बाल्यावस्था से ही कहा करता था, मैं राजकुमारी के साथ विवाह करूंगा। माता पिता और बड़ा भाई यह सुन कर समझाया करते थे, ऐसा न कह, यदि राजा क्रोधित हुआ तो हमारा घरवार लुटवा देगा। लड़का समझाने पर भी न मानता और वही कहा करता। बड़े लड़के का विवाह हो गया, छोटे का विवाह करने को सब ने अनेक प्रयत्न किये परन्तु न हुआ उसने और किसी से विवाह करने को मने कर दिया। एक दिन कुटुम्बियों ने आकर बहुत तंग किया तब उसने कहा आप लोग मुझे क्यों तंग करते हैं? मैं विवाह नहीं करूंगा और जो करूंगा तो राजकुमारी के साथ करूंगा। सब की तरफ से एक ने कहा ऐसा नहीं हो सक्ता। तब उसने कहा, यदि ऐसा नहीं हो सक्ता तो मुझे स्त्री रहित रहना स्वीकार है। सब लोग निराश हो कर चले गये। बात दिन पर दिन फैलती गई और फैलते २ राजा के कानों तक पहुंच गई। राजा ने पंडित को बुला कर डाटा, पंडित बिचारा चुप होकर चला आया।

जब राजकुमारी विवाह के योग्य हुई तब राजा ने एक दिन ज्योतिषियों को बुलाकर कहा, इस कन्या का वर कौन और किस दिशा में है ? एक ज्योतिषी जो सब मे प्रधान था कहने लगा, महाराज, आपकी इस कन्या को कोई राजकुमार ग्रहण नहीं कर सक्ता। किसी ब्राह्मण से इसका विवाह होना जाना जाता है। राजा ने कहा, यदि राजकुमार सिवाय और के साथ विवाह न करू तब फिर कैसे होगा ? मेरे तो राजकुमार और राजकुमारी यह एक ही है, राजकुमार से विवाह करूंगा तो वह राज्य करेगा, ब्राह्मण को पुत्री देकर मैं राज्य किस को दूंगा ? ज्योतिषी ने कहा, महाराज, हम अपनी तरफ से कुछ नहीं कहते, शास्त्र के अनुसार गणित करके फल कहते हैं आप राजा हैं, आप मालिक हैं, आप की इच्छा हो वह कीजिये। राजा ने ज्योतिषियों को विदा कर दिया किन्तु उसके जी में खटका बैठ गया।

एक दिन ब्राह्मण का छोटा पुत्र भोजन कर रहा था और उसकी भौजाई उसे भोजन परोस रही थी। लड़के ने भोजना मे कई दोष निकाले तब भावज कहने लगी देवर जी, मैं तो देहाती रांडी राड़ की लड़की हूँ, मुझ में चतुराई कहा से आवे ? तुम तो राजकुमारी से विवाह करोगे, वह चतुर होगी, अनेक प्रकार के व्यंजन बना बना कर तुमको खिलाया करेगी। लड़का क्रोधित होकर बोला, ताना क्यो देती है ? देख लीजो राजकुमारी मे ही विवाह करूंगा। इतने ही में राजा के मनुष्य आगये और भोजनों से उठते ही उसे पकड़ कर लेगये और राजा की आज्ञा से

वह देश बाहर निकाल दिया गया और साधारण पंडिताई करके अपना गुजारा करने लगा।

राजा ने अन्य देश के राजकुमार के साथ पुत्री का विवाह करने का निश्चय किया। संयोग वश एक और राजा भी इस कुमारी के साथ विवाह करना चाहता था। राजा ने उसे मने कर दिया और पहले के साथ विवाह करना निश्चित कर के दिन नियत कर दिया। राजधानी अनेक प्रकार की मांगलिक वस्तुओं से सजाई गई। बरात बड़े धूमधाम से चढ़ी। जब राजकुमारी मंडप के नीचे आई तभी दूसरा राजा आकर उसे हरण कर लेगया। राजकुमार और उसके साथी उसके पीछे दौड़े। राज्य की हद्द पर जाकर दोनो की भेट हुई। राजकुमारी की पालकी एक तरफ रखदी गई और दोनों में युद्ध होने लगा। दोनों विवाह चाहने वाले युद्ध में कट कर मर गये और उनके साथी भी कई मारे गये। राजकुमारी लड़ाई देख कर घबराई और पालकी में से निकल कर एक तरफ चल दी। चलते २ अधेरे के कारण वह एक गड्ढे में गिर गई। उस गड्ढे से मिला हुआ एक पुराना टूटा हुआ जल रहित कुआ था, घास से ढका होने से दिखाई नहीं देता था, राजकुमारी उस गड्ढे में से उस कुए मे गिर गई।

राजा और राजकुमार के मरने के पीछे उनके साथी निराश होकर भाग गये। राजकुमारी के पिता ने राजकुमारी की बहुत खोज की परन्तु कहीं पता न लगा तब वह हार कर बैठ रहा।

उधर राजकुमारी के गड्ढे मे गिरने के चौथे दिन उस ब्राह्मण का छोटा लड़का वहां टट्टी फिरने आया। वहां उसे रोने का धीमा शब्द सुनाई दिया। उस शब्द को सुन कर वह गड्ढे के पास जाकर ध्यान लगा कर सुनने लगा तो मालूम हुआ कि कुए मे से शब्द आ रहा है। उसने कहा, कुए के भीतर कौन रो रहा है? भीतर से अवाज़ आई मैं अभागी हूं, मुझे कृपा कर के किसी यत्न से वाहर निकालो। ऐसा कह कर राजकुमारी ने अपना सब परिचय दिया। ब्राह्मण पुत्र ग्राम मे जाकर एक टोकरी और रस्सी ले आया। रस्सी मे टोकरी बांध कर कुए मे फांस दी। राजकुमारी टोकरी मे बैठ गई तब उसने उसे ऊपर खेच लिया। जब राजकुमारी निकल आई तब उसको लेकर ब्राह्मण पुत्र राजा के पास पहुचा और उसे राजा को सोप दिया।। राजकुमारी ने कहा, पिताजी, मैं तो मर ही चुकी थी, इस पंडित के लड़के ने मुझे निकाला है, मैं ने प्रतिज्ञा की थी कि जो मुझे कुए से जीती निकालेगा मैं उसी की स्त्री होऊंगी। राजा ने कुमारी का वचन मान लिया और प्रसन्नता-पूर्वक ब्राह्मण पुत्र के साथ उसका विवाह कर दिया। राजा के पीछे राज्य भी उसी को प्राप्त हुआ।

अपनी भावना के निश्चय से ब्राह्मण पुत्र राजा का जमाई हुआ। दृढ़ीभूत भाव, वाह रे तेरा सामर्थ्य!

ऊपर के दृष्टान्तों से तूने देखा होगा कि राजा होने की अथवा और किसी प्रकार की भावना करने वाले राजा अथवा

और कुछ होते ही हैं। जब तू राजा होने की इच्छा करता है तब तू नहीं जानता कि तेरी इच्छा तीव्र है अथवा मंद है। जब तू मैं राजा होऊं तो यह यह काम प्रथम करूंगा ऐसा कहता है तब तेरे अंतःकरण का भाव इससे विरुद्ध होता है, चाहे तुझे मालूम पड़े या न पड़े, उसमें यह भाव अवश्य होता है, राजा होने के योग्य मैं नहीं हूँ मेरा प्रारब्ध ऐसा कहां है, जो राजा होना ही होता तो सामान्य मनुष्य के यहां मेरा जन्म ही क्यो होता ? यह विरुद्ध भाव तेरे राजा होने के भाव को काट देता है। जब तुझे स्वयं ही राजा होने का निश्चय नहीं है तब तू राजा कैसे हो सके? यदि तू कहे कि मैं भीतर से ऐसा भाव होने ही न दूं तो क्या राजा हो जाऊंगा ? इसका उत्तर यह है कि हां अवश्य हो जायगा परन्तु इस प्रकार की काटने वाली विरुद्ध भावना न होने देना तेरे इस मलिन अन्त.करण का काम नहीं है। फल प्राप्त कराने वाली भावना जैसी तीव्र और निश्चल होनी चाहिये यदि वैसी न होगी तो फल न होगा और यदि किसी कारण से वैसी तीव्र भावना हो जायगी तो फल प्राप्त होने में कुछ संदेह नहीं है ? पांच की कमाई करने वाले को दस कमाने की तीव्र भावना हो सकती है परन्तु पांच रुपये कमाने वाले को करोड़ रुपये कमाने की तीव्र इच्छा नहीं होती। ज्यों ज्यो तू इच्छाओं से बढ़ता है त्यो त्यों तेरी इच्छाएे भी बढ़ती जाती हैं, यह सामान्य नियम भी तेरी राजा होने की भावना के विरुद्ध है।

अंतिम सारांशः—अज्ञान को हटा कर विचार दृष्टि से देखे तो तू स्वयं सच्चिदानन्द ब्रह्म है, ऐसा सच्चिदानन्द परब्रह्म किसी

के सहारे नहीं टिका है वह तो महान् विभु, अव्यक्त होने से अपनी महिमा में टिका है। जाग्रतादि अवस्थायें व्यवहार में जीव के टिकने का स्थान रूप हैं। अवस्थायें स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर की हैं परन्तु अज्ञान के कारण से जीव की कही जाती हैं उन तीनों अवस्थाओ का फल मुमुक्षुओं को आत्मबोध कराने मे है। मलिन और अदृढ़ भावना से राजादिक होने की की हुई इच्छा सफल नही होती परन्तु निश्चय, दृढ़ता और तीव्रता से जो भावना की जाय तो भावना के अनुसार अवश्य फल होता है। अनेक संयोग भी इस प्रकार की भावना होने में सहायता करने वाले हो जाते हैं।

१९ जीव सृष्टि और ईश्वर सृष्टि।

प्रश्नः—लोभ, क्रोध, मोह आदिकों को दु.ख देने वाले जान कर भी जीव क्यों नहीं त्यागता ? सब संसार और संसार के पदार्थ ईश्वर रचित हैं, तो लोभ क्रोध मोहादिक भी ईश्वर रचित हैं उनको जीव कैसे हटा सक्ता है।

उत्तरः—जगत् में जितने पदार्थ हैं, उनमें कोई भी ऐसा नहीं है जिसमें दोष ही दोष हो अथवा जो मात्र दुःख देने वाला ही हो। सुख और दुःख दोनों मिले रहते है। उनके प्रमाण मे अन्तर होता है। लोग जिस को सुख कहते हैं वह दुःख रहित नहीं होता, ऐसे हो दुःख भा सुख रहित नहीं होता। जिसमें सुख दीखता हो और दु.ख दबा हो उसको सुख, और जिसमें दुःख दीखता हो और सुख दबा हो उसको दुःख कहते हैं। लोभ, क्रोध, मोहादिक का संसारी दुरुपयोग करते हैं इसलिये वे विशेषरूप से दुःख दायक होते हैं। जब उनका सदुपयोग किया जाता है तो वे सुख देने वाले होते हैं। पदार्थ के गुण अथवा अवगुण का ग्राहक और उपयोग पर आधार है। जब लोभादिक का सदुपयोग किया जाता है तो वे ज्ञान प्राप्ति में हितकारक होते हैं। दु.ख दायक समझे हुए प्रपंच के विषयों को चित्त से हटाने पर भी चित्त वारम्वार उन्हीं में दौड़ कर जाता है, उस चित्त पर क्रोध करने से वैराग्य स्थिर होता है। स्वस्वरूप आत्मा का मोह प्रपच को तोड़ कर आत्म प्राप्ति कराता है। जगत् के पदार्थों का विषयासक्ति से उपयोग करना उनका

दुरुपयोग होता है वह दुःख उत्पन्न करने वाला है। 'लोभ, क्रोध, मोहादि प्रपंच में दुःख देने वाले हैं' ऐसा जीव सामान्य जानता है, विशेषतापूर्वक दृढ़ता से नहीं जानता इसलिये सामान्य जाने हुओं का जीव त्याग नही कर सक्ता। जब जीव उनमें दब जाता है तब उनका दुःख रूप होना भूल जाता है। यदि उस दुःख का ज्ञान आंतरिक भाव से दबने न पावे तो जीव लोभादि को त्याग सक्ता है। अनिश्चित मनुष्य एक पक्के निश्चय पर नही आता। डांवाडोल चित्त वाला एक क्षण मे एक निश्चय वाला और दूसरे क्षण में दूसरे निश्चय वाला होता है, इसलिये प्रपंच में प्रवृत्त करने वाले लोभादि को छोड़ नहीं सकता।

जगत् भूल का बना हुआ है, उसमें क्षण २ में भूल हुआ करती है। जो मनुष्य जगत् भाव मे फसा हुआ है उसको सामान्यता से जानी हुई भूल का छोड़ना नही बनता। जीव भाव भूल से बना हुआ है इसलिये जीव भाव सहित सब भूल का त्यागना असंभव है। जीव में शुद्ध तत्त्व जो भूल और विकार से रहित है उसके सहारे से वह भूलो का परित्याग कर सक्ता है। लोभ, क्रोध, मोहादिक कराने वाली कामना है, यदि कामना छूट जाय तो वे भी छूट जांय। जीव कामना नहीं छोड़ सक्ता इसलिये वे भी नही छूटते।

लोभादिक तमोगुण की विशेषता मे होते हैं। जब तमोगुण न्यून हो जाता है और सतोगुण की विशेपता होती है तब वे नहीं आते। जिस प्रकार अंधेरे मे घुघु, पिशाचादि विचरा करते हैं

इसी प्रकार तमोगुण के अंधेरे मे पिशाच की उपमा वाले लोभादिक विचरा करते हैं। जब ज्ञान रूप प्रकाश वाला सूर्य उदय होता है तब उनका विचरना बन्द हो जाता है। जैसे श्मशान में होने वाला वैराग्य नाम मात्र है, कुछ फल नहीं देता, ऐसे ही किसी प्रसंग पर लोभादिक दुःखदायक हैं, ऐसा जानना, कहने मात्र है, वह त्याग रूप फल उत्पन्न नहीं कर सक्ता।

जब मनुष्य पूर्ण उत्कंठा से विषयों में आसक्त हो जाता है तब गुरु शास्त्र के उपदेश आदि सब बातें भूल जाता है, जब विषयों में दुःख मिलता है तब अपने को धिक्कारता भी है परन्तु वह धिक्कार पानी की बूंद के समान स्थिर नहीं रहती किंतु कामना रूप वायु लगते ही सूख जाती है। जब विषय सामने आते हैं तब 'उनमें सुख ही है' इस भाव के सिवाय और भाव नहीं आता। ऐसे प्रसंग मे उसका किया हुआ पूर्व का धिक्कार कुछ काम नहीं देता।

जीव भाव अंधा है, कामना से उसकी आंखें फूट गई हैं। भला नेत्रहीन वास्तविक पदार्थ का निर्णय कैसे करे? जैसे लोभी मनुष्य अपने धन और ऐश्वर्य का सदुपयोग नहीं कर सक्ता; इसी प्रकार जीव भी प्रपंच के पदार्थों और ऐश्वर्य मे लोभी हो कर अपने शुद्ध तत्त्व का स्वयं उपयोग नहीं कर सक्ता। जीव जब लोभ आदि को छोड़ देता है तब उसका जीवपना चला जाता है। जैसे गधा गधी के पीछे कूदता है और लातें खाता है परन्तु गधी को नहीं छोड़ता ऐसा ही जीव का हाल है, विषयो में लोभादिक के कारण अनेक प्रकार के दुःखों का अनुभव करता है

और फिर उन्हीं में दौड़ता है। ऐसे दौड़ते रहना अज्ञानी जीव का स्वभाव पड़ गया है। जैसे नरक का कीडा नरक मे दु'ख भोगता हुआ भी वहां से अलग होना नहीं चाहता इसी प्रकार अज्ञानी जीव को समझ। नरक के कीड़े को तो 'दु:ख है' ऐसी बुद्धि नहीं होती परन्तु मनुष्याकृति मे बना हुआ नरक का कीड़ा भान होते हुए भी दु.ख नहीं छोड़ता, यह विशेपता है। गर्भ धारण करने की पीड़ा और प्रसव का दु.ख देख कर स्त्री निश्चय कर लेती है कि अव मैं गर्भ धारण नहीं करूंगी यह उसका निश्चय तभी तक रहता है जव तक वह गर्भ धारण करने योग्य संयोग में प्राप्त नहीं होती! पुरुप के सहवास से फिर गर्भ धारण कर लेती है, इसी प्रकार जीव दु'ख के समय पश्चात्ताप करके लोभादिक न करने की प्रतिज्ञा करता है परन्तु संयोग वश समय प्राप्त होने पर प्रतिज्ञा तोड़ने में विलम्ब नहीं करता।

एक मनुष्य एक टट्टू पर कुछ वोझा लाद कर और उस पर वैठ कर एक ग्राम से दूसरे ग्राम को जा रहा था। मार्ग में एक मनुष्य ने उससे कहा "भले मानम! छोटे से टट्टू पर तूने इतना तो वोझ लाद रक्खा है और आप भी चढ़ वैठा है, विचारे टट्टू से चला भी नहीं जाता, उसके वोझे को कम करदे।" ऐसा कह कर वह मनुष्य चला गया। उस मनुष्य ने नीचे उतर कर वोझ को ठीक वाध लिया और अपने शिर पर रख कर फिर आप घोडे पर सवार हो गया, इस प्रकार उसने टट्टू का वोझ कम कर दिया!!

जीव भाव मे बंने रह कर लोभादिक का हटाना इसी प्रकार का है। जब तक जीव भावमें है तब तक इस बोझको चाहे जहां लादे, उठाना उसे ही पड़ेगा। सारांश यह है कि जीव भाव निवृत्त हुए बिना लोभादि समूल छूट नहीं सकते।

लोभ पाप का मूल है, क्रोध पिशाच है और मोह अंधेरा है।

एक लोभी का दृष्टांत:—एक ग्राम में एक वैश्य रहता था। वह अत्यंत लोभी था इसलिये लोग उसे लोभीराम कहा करते थे। वह अपनी योग्यतानुसार भोजन वस्त्र का उपयोग नहीं करता था, भोजन वस्त्र के लिये अपने घर वालो को तंग किया करता था। उसने ऐसे आचरण से और छल कपट झूंठ सच से बहुतसा धन संचय कर लिया था। एक समय उसकी जाति में उसके कुटुम्ब वालो के यहां विवाह हुआ। विवाह मे बहुत से परदेशी एकत्र हुए। उनके साथ लोभीराम नदी के एक घाट पर स्नान करने गया। उस घाट पर बैठने वाला घटवालिया लोभीराम को अच्छी प्रकार जानता था क्योंकि लोभीराम ने कभी उसे एक पैसा तक नहीं दिया था। घटवालिये को लोभीराम से किसी प्रकार कुछ लेने की तीव्र इच्छा थी परंतु वह उसके दाव में नहीं आता था। स्नान करने के समय घटवालिया परदेशियों को संकल्प कराता हुआ जब लोभीराम के पास आया तब लोभीराम विचारने लगा, क्या करूं? यदि संकल्प नहीं करता हूँ तो परदेशियों मे मेरी प्रतिष्ठा जाती है और करूं तो कुछ देना पड़ेगा, मैं देना नही चाहता, प्रतिष्ठा और धन दोनो ही

न जांय, ऐसा उपाय सोचना चाहिये ! ऐसा विचार कर अंटी टटोल कर बोला, पंडितजी ! अंटी में तो दाम है ही नहीं ! फिर आप संकल्प कैसे कराओगे ? घटवालिये ने कहा, यजमान ! दाम नहीं है तो क्या चिंता है ? मैं आपको पहिचानता हूँ, घर पर से एक सीधा दिलवा देना, आपके पास से कभी सीधा मिला भी नहीं हैं ! लोभीराम ने जी में विचारा, अब सबके सामने हां कह देना ही अच्छा है ! लेगा तो तभी जब मैं दूंगा, ऐसा विचारकर उसने सीधा देना स्वीकार कर लिया । घटवालिये ने संकल्प करा दिया और स्नान करके सब घर लौट आये । दूसरे दिन घटवालिया सीधा लेने लोभीराम के घर पहुँचा । उसने सोचा कि 'लोभीराम सहज में देने वाला नही है परन्तु अब मैं भी छोड़ने वाला नहीं हूं क्योंकि चार भले मनुष्यों के सामने उसने स्वीकार कर लिया है।' लोभीराम दूर से घटवालिये को घर की तरफ आता देख कर वहां से खिसक गया और लड़के से कहला दिया कि सेठ घर पर नहीं है। इस प्रकार घटवालिया ने कई चक्कर लगाये परन्तु लोभीराम से उसकी भेट न हुई। एक दिन लोभीराम को मार्ग मे देख कर घटवालिये ने वहीं सीधा मांगा तब लोभीराम कहने लगा, क्या आप अभी तक सीधा नहीं ले गये ? मुझे याद है कि मैं तुम्हें सीधा दे चुका हूँ ! घटवालिये ने कहा, सेठ जी ! संकल्प कराये, पीछे मेरी आपकी भेट ही कब हुई है ? कई बार घर पर जा चुका हूँ, जब २ गया तब २ मनुष्यों ने कहा कि सेठ जी घर पर नहीं है। लोभीराम ने विचारा, घटवालिया

पीछे पड़ गया है, मुझे सीधा देना है नहीं, कुछ कहना तो चाहिये ऐसा विचार कर बोला, अच्छा ! कल दस बजे घर पर मिलूंगा। इस प्रकार पीछा छुड़ा कर लोभीराम वहां से चल दिया और घर जाकर लड़कों से कह दिया कि कल घटवालिया आवे तो कह देना कि सेठ घर पर नहीं है, प्रातःकाल ही ग्राम के बाहर चले गये हैं। दूसरे दिन घटवालिया दस बजे से प्रथम ही पहुंचा तो लड़कों ने वैसा ही कह दिया। घटवालिया समझ गया कि यह सब बात बनावटी है। वह घर के आंगन मे जा बैठा और कहने लगा, अच्छा ! मैं यहीं बैठा हूँ, जब सेठ जी आ जांयगे तब उनसे मिल कर जाऊंगा ! लड़के कहने लगे, ग्राम गये हुए का क्या भरोसा, क्या मालूम कब आवें, अभी थोड़े ही आये जाते हैं ! घटवालिया था पक्का ! वहीं बैठा रहा ! लोभीराम दिन भर घर से बाहर न निकला। शाम को घटवालिया अपने घर लौट गया और दूसरे दिन सवेरे ही लोभीराम के बाहर निकलने से प्रथम ही आ बैठा। लोभीराम घर में था, उसे घटवालिये पर बड़ा क्रोध आरहा था परन्तु करे क्या ? उसने लड़के से कहलवा दिया कि लालाजी रात को ग्राम से बीमार होकर आगये हैं। घटवालिये ने कहा, वे तो मेरे बड़े प्रेमी हैं ! बीमार हैं तो मैं उन्हें बिना देखे नहीं जाऊंगा। लड़के ने कहा, नहीं, आप उनसे नहीं मिल सक्ते, डाक्टर ने किसी को उनके पास आने को मने कर दिया है, घटवालिये ने कहा, मैं कोई ग़ैर आदमी तो हूँ ही नहीं ! बहुत बीमार हैं तो उनका मुख तो

देख लूं ? यह कहकर घटवालिया भीतर घुसने लगा। उसे घुसता हुआ देख कर लोभीराम बीमारी का ढोंग बना कर लेट गया। जब कभी कोई मांगने आया करता था तब ऐसी ही लीला हुआ करती थी, घर वाले यह बात जानते थे। जब घटवालिये ने जाकर लोभीराम को टटोला तो वह बेहोश हो, इस प्रकार बन गया और श्वास खींच गया। घटवालिया चिल्ला कर पुकारने लगा, हाय रे! मेरे लोभीराम! हाय! हाय! क्या तुम चल लिये ? हमारा करजा तो चुकाते जाओ! लोभीराम अपनी लीला में दृढ़ रहा! उसने ऐसा श्वास खींचा कि जिससे यह ही मालूम होता था कि अब जान नहीं रही! घटवालिये की पुकार सुन कर सब घर वाले एकत्र हो गये, नाड़ी देखने लगे तो नाडी गुम थी, योगीराज भी बन्द न कर सके इस प्रकार उसने अपनी नाड़िया रोक ली थीं! घर वाले समझे, मर गया। एक ने घटवालिये और सब मनुष्यों से कहा, आप सब लोग बाहर चले जाओ, ठठरी बांधी जायगी! घटवालिया सबको बाहर निकाल कर कहने लगा मेरा तो यह परम स्नेही है! मैं तो अपने मित्र को जलने तक नहीं छोडूंगा! ठठरी बांधी गई, घर में से कफन निकाल कर मृतक पर डाला गया और 'राम नाम सत्य है' कह कर ठठरी ले चले। श्मशान में जाकर चिता बनाई गई और लोभीराम उस पर लिटाया गया तब वह सोचने लगा, घटवालिया तो अभी गया नहीं यदि आग लगा दी गई तो मैं जल कर मर जाऊंगा। अब तो सीधा देना पड़ेगा! जब उसका

पुत्र अग्नि मुख के पास ले जाने लगा तभी वह बोल उठा, पुत्र ! मुझे मत जला ! मैं घटवालिये का सीधा दे दूंगा ! घटवालिया सामने ही खड़ा था, बोल उठा 'नहीं ! नहीं ! यजमान ! तुम जल जाओ ! मैं ने सीधा छोड़ा !' सब आश्चर्य करने लगे, लोभीराम उठ बैठा । एक ने पूछा, यह क्या हुआ ? मरा हुआ कैसे जी गया ? लोभी राम ने कहा, एक सीधा न देना पड़े इस लिये मैंने यह काम किया था । घटवालिया बोला, लोभीराम ! तेरा नाम लोभीराम झूंठ ही है, लोभी होय तो ऐसा होय कि चाहे चमड़ी जाय परंतु दमड़ी न जाय ! तू भी क्या याद करेगा, मेरे समान भी तुझे कोई न मिला होगा ! अब मैं उधार नहीं रक्खूंगा, अपना सीधा यहीं लूंगा । अंत में जब सीधे के दाम चुका लिये तब घटवालिया ने लोभीराम को घर जाने दिया ।

वाह रे लोभीराम ! तुझसा लोभीराम भी कोई न होगा ! यदि ऐसा लोभ आत्मप्राप्ति में किया होता तो जन्म २ का मोरचा क्षय हो जाता ! जिसमे इतनी दृढ़ता से लोभ होता है उसका निर्लोभी होना अशक्य है । सामान्य लोभ वाले पूर्ण प्रयत्न से उसे हटा सक्ते हैं अथवा न्यून कर सक्ते हैं । लोभ, क्रोध, मोह, मद आलस्य काम आदिक सब एक ही शतरंज के मोहरे हैं, वे कभी सुख रूप नहीं होते ।

तू ने पूछा है कि संसार और संसार के पदार्थ ईश्वर रचित हैं, यह बात ही मैं स्वीकार नहीं करता । संसार, ईश्वर, पदार्थ और रचना इन चारों का स्वरूप पूर्व के प्रश्न में समझा चुका हूँ

फिर भी सुनः—जो संसरण रूप प्रतीत होता है वह संसार है। आत्मभाव से हट कर कल्पना के जिस जिस दृश्य को खड़ा करके देखता है वह दृश्य संसार है इसलिये संसार कोई वस्तु नहीं है, जब संसार ही वस्तु रूप नही है तब उसके पदार्थ वस्तु रूप कैसे हो सक्ते हैं? संसार ईश्वर रचित नहीं है जीव रचित है। ईश्वर में संसार नहीं है, जीव में है इसलिये ईश्वर रचित नहीं है। ईश्वर भी जीव का समष्टि भाव है। जीव का व्यष्टि भाव जीव है और जीव का समष्टि ईश्वर है। जीव विना ईश्वर की संज्ञा नही है। समष्टि की जितनी रचना है वह व्यष्टि का समुदाय रूप है। समष्टि की स्वतंत्र कोई क्रिया नहीं है इसलिये समष्टि जगत् भी व्यष्टि के अनुसार बना हुआ होने से मात्र ईश्वर रचित नहीं है। ईश्वर सृष्टि रचना मे निमित्ति मात्र है और रचना जीवो के कर्मानुसार होती है इसलिये ईश्वर रचित होने पर भी सृष्टि है जीव की ही! जीव में ईश्वरत्व रहता है। कर्ता भोक्ता जीव है ईश्वर व्यापक समष्टि रूप है। जैसे जीव अपनी सृष्टि का कर्ता है ऐसा ईश्वर अपनी सृष्टि का कर्ता नहीं है। जीव अपने कर्मानुसार अपनी सृष्टि का कर्ता है, ईश्वर का कोई कर्म नहीं है इसलिये वह अपने कर्मानुसार सृष्टि का कर्ता नहीं है। जो ईश्वर भी अपने कर्मानुसार सृष्टि का रचने वाला होता तो वह बंधन में होता। ईश्वर का बधन किसी ने नहीं बताया है और उसका बंधन है भी नहीं। यदि ईश्वर बंधन वाला माना जाय तो जीव से भी निकृष्ट ठहरे क्योंकि जीव के बंधन की निवृत्ति करने में

शास्त्र और गुरु का उपदेश रूप साधन है ईश्वर का बंधन छूटने के लिये उसके उपदेश देने को कोई शास्त्र और गुरू नहीं है, इन दोनों के अभाव से वह अखंडित बंधन में पड़ा रहेगा। इस प्रकार का ईश्वर मानना अयुक्त है। संसार जीव रचित है और जीव के लिये ही बंधन का हेतु है इसलिये जीव का ही संसार है। यदि जीव अपने संसार को छोड़ दे तो उसके लिये और ससार अवशेष नही रहता। जीवसंसार ही दृढ़ीभूत होकर सव को समान होता है वह ईश्वर सृष्टि कही जाती है। संसार जीव रचित है इसलिये ससार के सव पदार्थ भी जीव रचित हैं, उन्हीं पदार्थों में लोभ, क्रोध, मोहादिक हैं जो सूक्ष्म विकार रूप हैं। जीव के वनाये हुए होने से जीव उन्हे छोड़ भी सकता है। ईश्वर के बनाये हुए नहीं हैं इससे जीव उन्हे छोड़ना चाहे तो उस मे ईश्वर वाधक नहीं होता इसलिये उनके छोड़ने में जीव स्वतंत्र है।

यदि अज्ञानी मनुष्य उन विकारों को पूर्ण रूप से न छोड़ सके तो युक्त है परन्तु जैसे २ अंत.करण की शुद्धि होती जाती है वैसे २ वे न्यून होते जाते हैं और ज्ञान की संपूर्ण दृढ़ता होने पर वे नहीं रहते। यदि लोभादिक को ईश्वर रचित समझा जाय तो जीव की सामर्थ्य से ईश्वर की सामर्थ्य विशेष समझी जाय। ईश्वरकृत भाव को जीव मिटा नही सक्ता ऐसा समझने से भी वे मिट सक्के हैं क्योंकि जैसे लोभादिक ईश्वर ने उत्पन्न किये हैं ऐसे ही ईश्वर के उत्पन्न किये हुए शास्त्रों में उनके निवृत्त करने को उपदेश भी दिया है। जैसे ईश्वर ने व्याधि बनाई है, तो उसके दूर करन

को औषधि भी बनाई है इसी प्रकार लोभादिक उसके उत्पन्न किये हुए उसके बताये हुए उपदेश से दूर हो सकते हैं। लोभादिक विकार ईश्वर रचित होय तो जिस प्रकार ईश्वर समान है इसी प्रकार वे दोष भी सब में समान होने चाहिये। ऐसा देखने में नहीं आता। एक मनुष्य को एक पदार्थ में लोभ होता है, दूसरे को नहीं होता। एक को क्रोध होता है दूसरा शांत रहता है। इससे सिद्ध होता है कि जीव के प्रथम भाव से ही लोभादिक विकार होते हैं। यदि यह कहा जाय कि विशेषता जीव की है, समानता ईश्वर की है परन्तु यह समानता लोभादिक की संज्ञा को प्राप्त नहीं है इससे सिद्ध होता है कि लोभादि जीवकृत होने से नाश हो सकते हैं।

वेदान्त प्रक्रिया में ईश्वर का जो स्वरूप बताया गया है, वह जीव से पृथक् वस्तु नहीं है जैसे व्यक्ति वाला जीव अज्ञान में पृथक् स्वरूप वाला समझा जाता है ऐसे ईश्वर पृथक् स्वरूप वाला नहीं हैं। शुद्ध माया में समष्टि का स्वरूप समझने के लिये ईश्वर का स्वरूप है। जहां माया का लेश भी नहीं है, ऐसे ईश्वर के स्वरूप को ही ब्रह्म कहा गया है। ईश्वर जगत् का कारण है, कारणपना मायाके भाव वाला है, उसको अभिन्न निमित्तोपादान कारण कहते हैं। ईश्वर माया सहित कहा है परन्तु वह माया ईश्वर को बंधन करने वाली नहीं है इस लिये कहने मात्र है। ऐसा ईश्वर सब कुछ करता हुआ भी अकर्ता है इसलिये विकार वाले लोभादिक का पृथक् भाव से कर्त्ता नहीं है और समष्टि

रूप से कर्ता के भाव से रहित है। लोभादिक द्वैत में होते हैं, ईश्वर के सामने द्वैत है नहीं इसलिये लोभादिक ईश्वर मे नहीं हैं, उस का सृष्टि से कुछ प्रयोजन नहीं है इसलिये उससे उनकी उत्पत्ति भी नहीं है। जीव को जीव का अज्ञान बंधन करने वाला है। लोभादिक अज्ञान के विकार हैं। अज्ञान की निवृत्ति और ज्ञान की प्राप्ति पुरुषार्थ है। लोभादि रहना अज्ञान है, उन के निवृत्त होने से अज्ञान कम होता जाता है और उसकी संपूर्ण निवृत्ति आत्म ज्ञान से होती है।

एक ग्राम के लोगो को नाटक का तमाशा देखने की इच्छा हुई। उन सब ने चंदा करके एक थियेटर बनाया, एक सूत्रधार और कई तमाशा करने वाले नौकर रक्खे। सीन, सीनरी आकर्षण करने वाली बनाई गई। तमाशा आरम्भ हुआ। नाटक घर जब देखे तब प्रेक्षको से भरा दीखे, सूत्रधार ने जगन्नाटक का खेल आरम्भ किया। "ससार दु:ख रूप है, उसके पदार्थ विष रूप हैं संसार की तरफ सुख की वृत्ति ही जन्म मरण का कारण है" इस प्रकार वारंवार दिन प्रतिदिन उपदेश होते हुए भी ग्राम वाले कंगाल हो गये परन्तु उन्हें तमाशा देखने की ऐसी चाट पड़ गई कि वे अपना कर्तव्य कर्म भी छोड़ बैठे।

कई वर्ष पीछे एक सुज्ञ मनुष्य ने विचार किया "मैं और सब ग्राम वाले इस प्रकार दुखी क्यों है? कंगाली बहुत ही बढ़ गई है। इसको दूर करने का कुछ उपाय करना चाहिये।" ऐसा विचार कर उसने दो मनुष्य अपनी तरफ मिलाये और नाटक

घर में जाकर सूत्रधार से कहा, अब तू हमारे ग्राम से अपने डेरे तम्बू उठा लेजा, जब से तूने तमाशा आरम्भ किया है तब से हम लोग दुखी हैं ! हमारा सब प्रकार से नाश करने वाला तू ही है ! सूत्रधार ने कहा, महाशयो ! मैं बारम्बार आपको उपदेश करता हूँ, 'नाटक देखना बुरा है,' आप मेरे उपदेश को ग्रहण नहीं करते, यदि तमाशा देखने से आपका नाश होता है तो आप तमाशा मत देखिये ! मुज्ञ मनुष्य ने कहा, नहीं ! तू तमाशा करना बंद करदे, जो तू तमाशा करता रहेगा तो हम लोग देखे विना नहीं रह सकें । सूत्रधार ने कहा, वाह ! मैं आप लोगों को बुलाने तो जाता नहीं हूं, आप लोग अपनी इच्छा से आते हैं और दुखी होने का दोष मेरे सिर पर मढ़ते हैं। अपने करने का काम आप न करके दूसरे को बंद करना, क्या यह न्याय है ? मुज्ञ पुरुष ने कहा, तेरा तमाशा मोह उत्पन्न करता है, तेरे पात्रों की शोभा हाथ, पैर, नेत्र और शरीर की चेष्टा, शब्द की माधुर्यता हमको बलात्कार से खींच लाती है। भले आदमी ! अपना तमाशा उठा लेजा और हमें सुखी कर। सूत्रधार ने कहा महाशयो ! न मेरा तमाशा है, न मैं करता हूं, आप लोगों ने ही रुपया एकत्र करके नाटक घर बनाया है और सब सामग्री तैयार की है, मैं तमाशा कैसे बन्द करूं ? तुम तमाशा करने को प्रथम ही दाम दे चुके हो। मुज्ञ पुरुष ने कहा, तू भाग जा ! हमारा रुपया अपने पास रहने दे ! सूत्रधार ने कहा, वाह ! आप तो मुझे दगा करके भाग जाने की शिक्षा देते हैं ! आपके दाम-कपड़े का यह सब

तमाशा है, यदि आप दिये हुए कपड़े लेलें तो मैं चला जाऊं, रोकड़ मेरे पास कुछ है नहीं, तुमको कपड़े लेकर सब ग्राम की तरफसे रसीद देनी पड़ेगी ! इतनेमें सुज्ञ पुरुषका एक परदेशी मित्र आगया उसकी आज्ञा से सुज्ञ ने सूत्रधार के सब वस्त्रों को खींच लिया तो क्या देखा कि सूत्रधार कोई नहीं है, उनकी अपनी ही छाया वस्त्र धारण करके सूत्रधार वनी थी ! कपड़े खेंचते ही नाटक घर, पात्र, सीन और सब सीनरी लोप हो गई, स्वयं शेष रह गया ?

नाटक रूप संसार और ईश्वर रूप सूत्रधार इस प्रकार हैं। जीव की वासनामय वृत्ति के मौल्य से सूत्रधार और उसकी सृष्टि वनी है। नाटक के हाव भाव, लोभ क्रोध, मोह, नाटक के नहीं हैं किन्तु जीव की वासना के ही स्वरूप हैं। इस प्रकार संसार और संसार के पदार्थ ईश्वर रचित नहीं हैं।

अंतिम सारांशः– लोभ, क्रोध, मोह दुःख दायक हैं यह जो जीव जानता है, यह भाव हमेशा नहीं रहता इसलिये वह जान कर भी उन्हें छोड़ नहीं सक्ता। जैसे श्मशान का वैराग्य, वैराग्य-रूप नहीं है ऐसे दुःख के समय 'लोभादिक दुःख रूप हैं' ऐसा जानने से वे छोड़े नहीं जाते। जब दुःख का भाव हमेशा बना रहता है तब जीव लोभादिक के छोड़ने को समर्थ होता है। संसार और संसार के पदार्थ निरपेक्ष ईश्वर रचित नहीं हैं। जीव के कर्मानुसार अज्ञान के होने से जीव रचित ही समझने चाहिये। इसी प्रकार लोभादिक भी जीव में हैं और जीव भाव की वासना

की रचना है इसलिये जीव अपनी वासना छोड़ सक्ता है उनके छोड़ने में जीव स्वतंत्र है। संसार, संसार के पदार्थ और ससार का कर्ता सब कुछ जीव की छाया का स्वरूप है। अपने शुद्ध आत्मतत्त्व मे स्थित होते ही-अपनी वासना खेंचते ही परब्रह्म शेप रह जाता है।

२० शास्त्र का प्रयोजन।

प्रश्नः—मात्र ज्ञान ही सत्य है तो कर्म, उपासना, भक्ति आदिक विधान वताने वाले शास्त्र किस अर्थ है ?

उत्तर.—सत्य एक ज्ञान ही है तो भी समझ मे आने के लिये तीन प्रकार से समझाते हैं। संसार में तीन प्रकार के पदार्थ हैं प्रातिभासिक, व्यवहारिक और वस्तु स्वरूप। (१) भ्रान्तिकाल में दीखती हुई सत्यता प्रातिभासिक है, जैसे किसी दोष के कारण एक चन्द्रमा के वदले दो दीखते हो। जिस समय ऐसा दीखता है उस समय दूसरा चन्द्रमा सत्य होता है। (२) जाग्रत की ठीक बोध वाली स्थिति व्यवहारिक है, उसमें एक चन्द्र देखना व्यवहारिक सत्य है। प्रातिभासिक सत्यता व्यवहार में असत्य होजाती है और व्यवहारिक सत्यता प्रातिभासिक में अदृश्य हो जाती है। (३) वस्तु स्वरूप सत्यता सम्पूर्ण सत्य है। उसके सामने प्रातिभासिक और व्यवहारिक सत्यता दोनो असत्य हैं। वस्तु में व्यवहारिक भी प्रातिभासिक हो जाता है वस्तु परब्रह्म है उसकी अपेक्षा दोनो सत्यताएं अति तुच्छ हैं। वस्तु सत्य होने से वस्तु का ज्ञान भी सत्य होता है। वस्तु के अज्ञान से व्यवहारिक है और व्यवहार के विशेष ज्ञान के अभाव से प्रातिभासिक है। वस्तु-ब्रह्म का आवरण करने वाला कोई है नहीं, इसलिये वस्तु का ज्ञान ही सत्य है। उसमे सत्य शब्द का उपयोग भी समझने के निमित्त किया है। प्रातिभासिक और व्यवहारिक एक दूसरे मे असत्य होते हैं और वस्तु में दोनों ही असत्य हैं क्योकि वस्तु की सत्यता

किसी समय में असत्य नहीं होती। वस्तु व्यवहारिक और प्रातिभासिक दोनों का आद्य अधिष्ठान है। अज्ञान के कारण उस की सत्यता न दीखे तो भी कहीं चली नहीं जाती, जैसे भ्रांतिसे सर्प दीखनेके समय रज्जु का रज्जुत्व नहीं जाता। प्रातिभासिक और और व्यवहारिक परिच्छिन्न सत्य हैं, तुच्छ और अल्प हैं, मात्र वस्तु स्वरूप का ज्ञान ही एक पूर्ण सत्य है।

भ्रान्ति में प्रतीत होने वाली सत्यता प्रातिभासिक है। कर्म में रहने वाली सत्यता व्यवहारिक है, जो कर्म फल देकर निवृत्त होती है कर्म संसार है इसलिये कर्म का फल ससार से निकालने वाला नहीं होता। उपासना की सत्यता भी व्यवहारिक समान है वह भी मानसिक कर्म रूप है, सर्व श्रेष्ठ ब्रह्म लोक तक पहुंचाना अथवा क्रम मोक्ष मार्ग में लेजाना उपासनाका फल है। यह भी संसार के वाहर नही है इसलिये उपासना संसार के अन्त तक पहुंचा देती है, ज्ञान स्वरूप आत्मा ससार से वाहर है इसलिये संपूर्ण सत्य वह ही है।

आधुनिक भक्ति ग्रन्थ और उनके प्रचार का समावेश यदि भक्ति ठीक रीति से हो तो उपासना में होता है। कर्म और उपासना के अधिकारी के लिये शास्त्र वर्णित कर्म और उपासना का विधान है ज्ञान के अधिकारी के लिये ज्ञान है। कर्मके विधान से ऐश्वर्य और शुद्धि प्राप्त होती हैं, कर्म से शुद्धि हो कर उपासना का अधिकारी होता है, उपासना से अन्त करण की विशेष शुद्धि और इष्ट सामीप्यता की प्राप्ति होती है। उपासना से की हुई

अन्तःकरणकी शुद्धि ज्ञानका अधिकारी बना सक्ती है। ज्ञान शास्त्र का अन्तिम सिद्धान्त है उसे साध्य करने में कर्म और उपासना सहाय देते हैं। यद्यपि उन दोनों से ज्ञान सिद्ध होने वाला नहीं है, मात्र अन्तःकरण की शुद्धि उनका प्रयोजन है। कर्म प्रथम सोपान, उपासना दूसरी सोपान और ज्ञान तीसरी सोपान हो ऐसा क्रम ज्ञान का नहीं है, ये तीनो एक मार्ग के नहीं हैं। कर्म और उपासना से ज्ञान भिन्न है इसलिये वह कर्म उपासना के क्रम में नहीं है। कर्म और उपासना माया में हैं, ज्ञान माया से परे है। कर्म और उपासना का फल स्वरूप ज्ञान नहीं है उन से वह उत्पन्न भी नही होता। वे दोनों फल उत्पन्न करते हैं मोक्ष उत्पन्न होने वाला नहीं है वह तो प्रथम से ही है। अज्ञान से जानने में नहीं आता था इस लिये उसका जानना ज्ञान है, उसकी नयी उत्पत्ति नहीं होती इस लिये वह कर्म या उपासना का शेष नहीं है।

संसार में अनेक प्रकार के मनुष्य होते हैं। जिनको भौतिक पदार्थों की विशेष चाहना है, वे कर्म के ही अधिकारी हैं, उपासना अथवा ज्ञान के अधिकारी नहीं हैं। कर्म भी सकाम और निष्काम भेद से दो प्रकार के हैं सकाम कर्म विधिपूर्वक करने से भौतिक पदार्थों की प्राप्ति रूप फल देते हैं और निष्काम कर्म करने से अंतःकरण की शुद्धि होती है। कर्म के अधिकारी से उपासना का अधिकारी अधिक सूक्ष्म बुद्धि वाला होता है। ऐश्वर्य सहित परमात्मा की सामीप्यता का भाव रखना उसका उद्देश है। उपासना भी सकाम और निष्काम दो प्रकार की है। सकाम

उपासना भौतिक पदार्थ और स्वर्गादि के सुख को प्राप्त कराने वाली है; निष्काम उपासना इष्ट पर विशेष भाव उत्पन्न करती है और अंतःकरण शुद्ध करके ज्ञान के ठहरने योग्य बनाती है। ज्ञान दो प्रकार का है संसार का और परब्रह्म का। ये दोनों भी परोक्ष और अपरोक्ष दो प्रकार के हैं। अपरोक्ष ज्ञान भी अदृढ़ और दृढ़ दो प्रकार का है। सांसारिक ज्ञान परब्रह्म का ज्ञान न होने से ठीक नहीं है, परोक्ष ज्ञान पूर्ण ज्ञान नहीं है, और अदृढ़ अपरोक्ष ज्ञान भी मोक्ष का हेतु नहीं है। ये सब प्रकार का ज्ञान कहने मात्र ज्ञान है, वास्तविक ज्ञान तो स्वरूप का दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान ही है। दूर रहकर जो जाना जाय वह परोक्ष ज्ञान है अर्थात् जाननेवाला जिस ज्ञान से वस्तु को पृथक् भाव से जानता है वह परोक्ष ज्ञान है और जो एकमेक होकर जाना जाता है वह अपरोक्ष ज्ञान है। संशय विपर्यादि दोषों से रहित अपरोक्ष ज्ञान को दृढ अपरोक्ष ज्ञान कहते हैं और संशय विपर्यादि दोषों सहित को अदृढ़ अपरोक्ष ज्ञान कहते हैं यह मोक्ष का हेतु नहीं है।

शास्त्र (वेद) ईश्वरी नियम (कानून) है, यह एक ही मनुष्य अथवा एक ही प्रकार के मनुष्यों के लिये नहीं है संसार के सभी मनुष्य शास्त्र से उपदेश प्राप्त करते हैं, हरएक के अधिकार के अनुकूल हर एक प्रकार के उपदेश उसमें हैं। जो जिस उपदेश के योग्य हो वह अपने अधिकारपूर्वक उस उपदेश को ग्रहण कर सक्ता है, अधिकार बिना कोई उपदेश ग्रहण नहीं

हो सक्ता। यदि शास्त्र मात्र ज्ञान का ही उपदेश करता तो ज्ञान के अधिकारियों के सिवाय अन्य मनुष्य उपदेश रहित रह जाते और जो कुछ वे कर सक्ते हैं वह भी न करते इसलिये कर्म और उपासना का उपदेश शास्त्र में हैं। ऐसा होने पर भी कर्म और उपासना का उपदेश उन दोनों में ही पड़े रहने के लिये नहीं है किन्तु क्रम से अन्तः करण की शुद्धि करा के ज्ञान प्राप्त कराने के निमित्त है। ज्ञान के पीछे और कुछ उपदेश नहीं है। इस लिये ज्ञान अन्तिम उपदेश है उससे आगे और कुछ करना शेप नहीं रहता, जिस प्रकार एक पाठशाला में कई दर्जे होते हैं, जो जिस दर्जे के योग्य होता है वह उसमें दाखिल हो कर क्रम से ऊपर के दर्जों में जाता है इसी प्रकार कर्म और उपासना का क्रम है और पाठशाला में पठन छोड़ कर किसी प्रकार का धंधा करना ज्ञान है, अथवा जैसे एक दुकान पर उत्तम मध्यम और कनिष्ठ तीन प्रकार की वस्तुयें रहती हैं। जो वस्तु जिसके योग्य होती है उसको वह खरीद कर ले जाता है। इसी प्रकार वेद में सब के लिये सब भरा हुआ है, जब योग्यता बढ़ जाती है तब वह ही मनुष्य जो प्रथम कनिष्ठ पदार्थ खरीदा करता था, अब उत्तम पदार्थ खरीदने लगता है। इसी प्रकार कर्म उपासना करके ज्ञान का अधिकारी हो जाता है।

एक वन में एक चमत्कार वाला साधु रहा करता था, वन की बूटियों के गुण दोष यथार्थ जानता था। वह वर्ष में एक दिन रोगियों के निमित्त बूटियों के दोष गुण बताया करता था,

इसके लिये उसने शिवरात्रि का दिन नियत कर रक्खा था, उस दिन बहुत से रोगी और उनके सबंधी एकत्र हुआ करते थे। एक शिवरात्रि को वह स्नानादिक क्रिया करके वन की तरफ चला और जो लोग चल सकते थे उसके पीछे चले। साधु के हाथ में एक लाठी थी। थोड़ी दूर जाकर वह खड़ा हो गया और लाठी से एक बूटी बताकर कहने लगा, इस बूटी मे असुक २ रोग के नाश करने की शक्ति है, असुक प्रकार का विशेप प्रभाव इस बूटी में है, असुक रीति से ली जाती है, असुक प्रकार से साफ की जाती है, असुक प्रमाण से असुक अनोपान के साथ प्रातः, संध्या या मध्यान्ह में खाई जाती है, इतने दिन तक खाई जाती है अहार विहार की व्यवस्था इस प्रकार रखनी पड़ती है, असुक गुण है, असुक दोप है। असुक को गुण करती है असुक को अवगुण करती है इत्यादिक उस बूटी के विपय में सब वर्णन कर दिया। जिन लोगों को यह बूटी गुण करने वाली थी वे लोग वहीं रह गये और बूटी लेने के कार्य मे लग गये। साधु आगे चला और दूसरी बूटी को लाठी से वता कर प्रथम के समान उसका भी वर्णन करके सुनाया, वह बूटी जिनके काम की थी वे वहीं रह गये, साधु और मनुष्यों सहित आगे बढ़ा और तीसरी बूटी का गुण भी इसी प्रकार वर्णन किया। ऐसे अनेक बूटियो का उसने वर्णन किया अन्त मे आये हुए मनुष्यो में से दशाश (दश मे से एक) मनुष्य ,उसके साथ रह गये तव साधु ने कहा, अव मैं दिव्य

वन में जाता हूं, वहां की औषधियां विशेष दिव्य हैं परन्तु मार्ग विकट है। यह सुन कर अदृढ़ मनुष्य ठिठक गये, थोड़े दृढ़ मनुष्य साधु के साथ गये। उस वन में प्रवेश कर के साधु ने प्रथम के समान बूटियो का वर्णन किया। जिन २ के उपयोग की औषधि मिलती जाय वे वहाँ रुकते जांय और साधु आगे बढ़ता जाय इस प्रकार उस वनकी अनेक बूटियो का उसने वर्णन किया। अंत मे उसने कहा, अब मैं वन की बूटियो का वर्णन कर चुका हूँ, जल की बूटियो का वर्णन करने को अब मैं जल स्थान की तरफ जाता हूँ। उस समय उसके पास शतांश (सौ में से एक) मनुष्य ही शेष रह गये थे। साधु एक विशाल भयंकर तालाब के किनारे पहुचा और साथ के मनुष्यो से कहने लगा, तुम सब किनारे पर ठहरो मैं बीच वाले टापू में जाकर वहां की बूटियों को दिखला कर समझाता हूं। जैसे मनुष्य पृथ्वी पर चलते हैं ऐसे साधु जल पर चल कर वहां के मध्य के टापू में पहुँचा, किनारे के मनुष्य देखते रहे वहां पहुंच कर साधु लाठी से एक बूटी को बता कर किनारे वालों से कहने लगा, इस बूटी को अमोघ बूटी कहते हैं यह एक ही बूटी सब प्रकार के रोगों में काम देती है, सामान्य मनुष्यों को यह बूटी मिलना कठिन है। जो दृढ़ मनुष्य श्रद्धा सहित पृथ्वी छोड़ कर तालाब में घुसते हैं और दोनों हाथों के अभ्यास से तालाब के जल को काटते हुए इस टापू में पहुंचते हैं वे ही इसको ग्रहण कर सक्ते हैं। वन की बताई हुई बूटियों से रोग

की निवृत्ति तो होती है परन्तु रोग का फिर होना निवृत्त नहीं होता और इस बूटी के पान से सब प्रकार की व्याधि मूल सहित उड़ जाती हैं, अखंडित आरोग्यता प्राप्त होती है। इसके पान से बूटी स्वरूप अमोघ हो जाता है, सब बूटियो का ज्ञान इस एक ही बूटी के पान से प्राप्त हो जाता है। वन की बूटियां उखाड़ कर, पीस कर पी जाती है और जब अपना शरीर ही पीस कर इसको पिलाया जाता है तब यह बूटी पान की गई कहलाती है, यह ही इसके पीने की विधि है। बूटी पीने से प्रथम तीन दिन तक अन्न जल रहित भूखा मरना पड़ता है, जो इस प्रकार पीता है, वह अमर हो जाता है, फिर उसको पंच महाभूत और उनका कारण रूप माया बाधक नहीं होती, उसको जो आनन्द होता है, वह कल्पनातीत है, मैं उसका वर्णन नहीं कर सक्ता, बूटी पीने वाला स्वयं ही उसका अनुभव कर सक्ता है, और कोई नहीं जान सक्ता। बूटी पीने वाले को सब देवता नमन करने लगते है, उसकी आज्ञा उल्लंघन करने को कोई समर्थ नहीं होता। आप देख ही चुके हैं कि मैं तालाब में तैर कर नहीं आया हूँ, उसका कारण यह हैं कि मैं ने बूटी पी है सब बूटियो का ज्ञान जो मुझे हो गया है वह इस बूटी का ही प्रभाव है। जैसा शरीर आप मेरा देखते हो ऐसा शरीर मेरा नहीं है। मेरे वास्तविक स्वरूप को बूटी पीने वाला ही जानता है। मेरा शरीर आदि अन्त और मध्य से रहित अनेक ऐश्वर्य से सपूर्ण है। अब मैं अपनी महिमा को प्राप्त होता हूँ,

आप लोगों में से जो इस औषधि को लेना चाहें, वे लें ! इतना कहते ही उसका शरीर और बूटी एक बन गई। किनारे के मनुष्यों में से एक को छोड़ कर किसी की हिम्मत बूटी पान करने की न हुई। एक जो दृढ़ था साधु के वाक्य पर पूर्ण विश्वास करके उस तालाब में कूद पडा और साधु की बताई विधि से बूटी का पान करके कृतार्थ हुआ।

साधु वेद है। प्रथम दो बन की जिन औषधियों का वर्णन किया वे कर्म और उपासना के बन की हैं, पृथ्वी के भीतर का बन माया रूप है और तालाब ब्रह्म सर है, वहां की बूटी ज्ञान है राग द्वेश हटाने रूप अभ्यास से-वैराग्य से माया को छोड़ कर जिस टापू मे पहुंचते हैं वह अनिर्वचनीय पद है, बूंटी पान का फल ब्रह्म प्राप्ति है। देहाध्यास रूप शरीर को पीस कर, जब उस का रस पिलाया जाता है तब ब्रह्म स्वरूप हो जाता है, सम्पूर्ण वेद का ज्ञान उसको हो जाता है, सर्वज्ञ हो जाता है। माया और माया के कार्य उसको बाधक नही होते। तीन दिन भूखा रहना, तीनों शरीरों के भाव से रहित होना है। सब देवता परब्रह्म को नमन करते हैं। जैसे दोनो बन और उनकी बूटियां मायामें हैं ऐसे ही कर्म उपासना भी माया मे हैं। ज्ञान माया का अधिष्ठान है इसलिये कर्म और उपासना दोनो से वह विलक्षण है।

कर्म का संबन्ध विशेष कर के स्थूल शरीर से है, उपासना सूक्ष्म मानसिक है और ज्ञान स्वरूप स्थिति है, उस मे कोई क्रिया नहीं है। ज्ञान की सत्यता के सामने कर्म और उपासना की

सत्यता नहीं है। केवल कर्म फल दाता नहीं है, कर्म में रहने वाला जो भाव है वह अज्ञान का है, चाहे वह शास्त्र विहित हो चाहे निषिद्ध हो वह भाव स्थूल क्रिया के साथ बलिष्ट होता है और अधिष्ठान की सत्यता के प्रतिबिंब से सत्य भासता है इसीलिये उसका फल होता है। असत्य के सहारे होने से तुच्छ है। उपासना मानसिक क्रिया है, यह भी अज्ञान में ही फल देती है। अधिष्ठान की सहायता उसमें बिम्ब रूप हो भासती है, असत्य के सहारे होने से वह भी अल्प है। ज्ञान अज्ञान के सहारे रहित होने से संपूर्ण सत्य है। इसलिये मात्र ज्ञान ही संपूर्ण सत्य है। ज्ञानी भी क्रिया करते हैं किंतु उन की क्रिया मे सत्य स्वरूप ब्रह्म का लच्च छिपता नहीं है ज्ञानियो कों क्रिया का अज्ञान और भौतिक पदार्थों से संबध नहीं होता इसलिये उस क्रिया का फल भौतिक नहीं होता। ब्रह्म भाव वाला ब्रह्म को ही प्राप्त होता है। उपासकों और मुमुक्षुओं का तत् अर्थात् ईश्वर—सत्य से संबंध होता है इसलिये वे उच्च ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं। यज्ञ कर्म में जिसको श्रद्धा सहित सत् भाव होता है वह कर्म के फल को प्राप्त होता है। अधिकार के अनुसार ज्ञान, उपासना और कर्म का फल होता है। अधिकार योग्यता को कहते हैं। कर्म फल के लालच रहित मनुष्य कर्म नहीं कर सक्ता। जो संसार के विषयो की प्रीति—आसक्ति को नहीं हटा सक्ता उससे उपासना और ज्ञान नहीं हो सक्ते, ऐसो के लिये शास्त्र का उपदेश कर्म करने को है। वे कर्मानुसार फल प्राप्त करते हैं। जो ससार में लिप्त हैं, और कभी २ संसार जिन्हें बुरा भी मालूम पड़ता है, जिनका भाव

कभी २ ईश्वर की तरफ भी हो जाया करता है अर्थात् जिनमें ईश्वर के भाव और संसार के भाव की खेंचातान हुआ करती है, जो संसार भाव से थोड़ी देर के लिये हटना चाहें तो हट सकते हैं परन्तु ठीक रीति से नहीं हट सक्ते, कल्याण के मार्ग में दृढ़ रीति से नहीं जमते, और भौतिक ऐश्वर्य से जिनकी तृप्ति भी नहीं होती, कभी कुछ देर के लिये तृप्त हो भी जाते हैं ऐसो के लिये शास्त्र में उपासना का कथन है, और जो संसार को तुच्छ समझने लगा है, आंतर मे वास्तविक वैराग्य को प्राप्त हो गया है, और आत्म प्राप्ति को अपना कल्याण समझता है, ज्ञान के अधिकारी के लक्षण वाला है ऐसा पुरुष ज्ञान का अधिकारी होता है उस के लिये शास्त्र में कहा हुआ ज्ञानोपदेश है।

कर्म के अधिकारियों के लिये कर्म झूंठा नही है। यदि वे झूंठा समझेंगे तो कर्म का अनुष्ठान ही न करेंगे। ऐसे ही उपासना के अधिकारियों को उपासना झूंठी नहीं हैं और न समझनी चाहिये। श्रुति उक्त कर्म, उपासना वर्णाश्रम के अनुसार करने से वलिष्ट होते हैं। ज्ञान में वर्णाश्रम आयु आदि का भेद नहीं है भेद ज्ञान मे भेद होता है अभेद ज्ञान में भेद वाद अनुचित है तो भी ज्ञान के लिये, ज्ञान का अधिकारी अवश्य होना चाहिये, अधिकारी उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ तीन प्रकार के हैं। उत्तम अधिकारी वास्तविक अधिकारी है। मध्यम और कनिष्ठ अधिकारी अपनी न्यूनता को सत्संग और श्रवणादि से पूर्ण कर सकते हैं। ज्ञान के अधिकारी होने के प्रथम कर्म उपासना करनी

पड़े यह नियम नहीं है। जिसका अंतःकरण शुद्ध है वह कर्म और उपासना बिना ही ज्ञान का अधिकारी हो सकता है क्योंकि पूर्व जन्म से की हुई शुद्धि भी इस जन्म में काम देती है। जिस का अंतःकरण शुद्ध नहीं है वह कर्म उपासना करके अथवा और प्रकार से अन्तःकरण शुद्ध करके ज्ञान का अधिकारी बन सकता है ज्ञान के लिये कर्म उपासना की आवश्यकता नहीं है, मात्र शुद्धि की आवश्यकता है। वह शुद्धि चाहे कर्म उपासना से हो चाहे संयोग संस्कार के योग से हो। जैसे किसी तीर्थ पर जाने का मार्ग तीन दिन का है, एक २ पड़ाव एक २ दिनका है, अंतिम पड़ाव नहीं है तीर्थ स्थान है, चलने के स्थान पर और दोनों पड़ावों पर मनुष्य पड़े हुए हैं सामान्य रीति से चल कर चलने के स्थान से तीन दिन में, प्रथम पड़ाव से दो दिन में, दूसरे पड़ाव से एक दिन में चलने वाले तीर्थ स्थान में पहुँच जाते हैं। यदि चलने वाला तेज हो तो चलने के स्थान से एक अथवा दो दिनमें, प्रथम पड़ाव से एक या डेढ़ दिन मे और दूसरे पड़ाव से आधे ही दिन में तीर्थ पर पहुंच सक्ता है और यदि चलने वाला मंद हो तो एक २ दिन के मार्ग मे दो, चार दश दिन लगा लेता है अथवा तीर्थ में पहुंचता ही नहीं, यह तीव्रता और मंदता का कारण है ऐसे ही ज्ञान मे शुद्धि अशुद्धि कारण है, ज्ञान क्रम कर के प्राप्त नहीं होता, शुद्धि और तीव्रता में क्रम है। ज्ञान जब होता है तब एक क्षण में ही होता है। ज्ञान मे जो क्रम बताया है वह अज्ञान की निवृत्ति का ही क्रम है, ज्ञान का क्रम नहीं है।

कर्म के अधिकारी संसारासक्त मनुष्यों को ज्ञान के उपदेश न करने में श्रीमद्भगवद्गीता के दो श्लोक मिलते हैं, उनका भाव यह है—ज्ञानियों की दृष्टि मे कर्म तुच्छ है, कर्मासक्त अज्ञानियो के लिये कर्म तुच्छ नहीं है, यदि उनके लिये कर्म तुच्छ समझा जायगा तो कर्म करने से उन की बुद्धि हट जायगी, ज्ञान ग्रहण करने योग्य वे हैं नहीं, इसलिये शुभ कर्म से जो कुछ फल मिलता, वह भी उनको न मिलेगा, इसलिये कर्म और ज्ञान दोनों से भ्रष्ट हो जायेंगे, ऐसे पुरुषों को ज्ञानी कर्म छोड़ने का उपदेश न करे, किन्तु कर्म फलदायक हैं ऐसा समझाता हुआ और आप भी योग्य कर्म करता हुआ उनसे कर्म ही करावे और क्रम से उन्नति के मार्ग मे ले जाय। शास्त्र मे कर्म का विधान इस भाव से ही किया गया है।

एक वार तीन मनुष्य एक सन्त के पास उपदेश ग्रहण करने की इच्छा से आये और तीनों ने अपनी अपनी इच्छा प्रगट की। सन्त ने उनकी योग्यता का विचार किया तो तीनो भिन्न २ योग्यता वाले निकले इसलिये तीनो को उपदेश भी भिन्न २ दिया गया। संत ने एक को माला पर जाप करना, दूसरे को सगुण मूर्ति का ध्यान करना और तीसरे को प्राणायाम करने का उपदेश दिया। प्रथम के दोनों को मंत्रादिक और ध्यान की विधि बतादी और तीसरे को सामने प्राणायाम कराके बता दिया। तीनों अपना २ कार्य करने लगे। सन्त ने वहां से चलते समय तीनों से कहा "भाविको! मैं यहा से दो वर्ष के लिये जाता हू, आप

सब अपना २ काम यथायोग्य रीति से करते रहना, जब मैं लौट कर आऊंगा तब देखूंगा कि आप लोगों ने कितनी उन्नति की है।" यह कह कर संत वहां से चल दिये और दो वर्ष पीछे फिर लौट कर पहुंचे तो मालूम हुआ कि जाप और सगुण ध्यान करने वालो ने कुछ नही किया था। कारण पूछने से मालूम हुआ कि वे तीनों मित्र थे आपस में मिलते रहते थे और कभी २ साथ बैठ कर उपदेश की हुई क्रियायें किया करते थे। जाप और ध्यान करने वालों ने यह सोच कर कि प्राणायाम जो स्वामी जी ने तीसरे को बताया है वह जाप और ध्यान से श्रेष्ठ है, यह विचार कर अपनी २ क्रिया छोड़ दी और प्राणायाम करने लगे इस प्रकार तीनों प्राणायाम ही करते रहे। प्रथम के दो को योग्यता न होने से संत ने प्राणायाम नहीं बताया था परन्तु उन्होंने अपनी मूर्खता से गड़बड़ कर डाली। तब संत ने टेढ़ी दृष्टि करके कहा "जो तुम को बताया गया था वह ही तुम को करना योग्य था, मेरी आज्ञा को पालन न करके अपनी इच्छानुसार वर्तने मे हानि ही होगी अब भी जो कल्याण की इच्छा हो तो जैसे मैंने बताया हैं उसके अनुसार करो।" इस कहने पर वे बताई हुई क्रिया करने लगे परन्तु प्राणायाम की अशुद्ध क्रिया को वे छोड़ना नहीं चाहते थे, उनमें से एक जिस मन्दिर मे संत टिके थे उसके ही एक भाग में छुप कर प्राणायाम करता रहता। संत देख न लें यह भय उसको लगा रहता था, भय के कारण प्राण सीधे मार्ग में रुक कर कटि प्रदेश में भरने से महान् दर्द होने लगा

और एकाएक बेहोश हो कर वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। संत दौड़ कर वहां पहुँचे और कई मनुष्य भी वहां आ गये थोड़ी देर में उसकी बेहोशी तो जाती रही परन्तु दर्द के मारे वह व्याकुल था। कई प्रकार से अशुद्ध प्राण को छोड़ने की क्रिया कराने से दर्द बन्द हुआ। संत ने कहा "मेरी आज्ञा विरुद्ध प्राणायाम करने का यह फल है। क्या तू प्राणायाम कर रहा था ?" उसने स्वीकार कर लिया। उसके कटि प्रदेश में जो धक्का लगा था, वह किसी प्रकार निर्मूल नहीं हुआ, उसने अन्त में कई और व्याधियां उत्पन्न कीं और चार पांच वर्ष कष्ट भोग कर उस मनुष्य का शरीर छूट गया। विना अधिकार कार्य करने से इस प्रकार फल होता है। योग्यता के अनुसार शास्त्र में कर्म, उपसना और ज्ञान का उपदेश है। योग्यता अनुसार करने से इन तीनों का फल यथार्थ होता है।

अन्तिम सारांश:—ज्ञान ही संपूर्ण सत्य है। कर्म और उपासना उसकी अपेक्षा तुच्छ होने से असत्य हैं परन्तु कर्म के अधिकारी को कर्म, और उपासना के अधिकारी को उपासना फल देने वाली होने से उनके लिये असत्य नहीं है। संसार में सब मनुष्य एक प्रकार के नहीं हैं, सब मनुष्यों के तीन वर्ग बना कर हरेक वर्ग को अलग २ उपदेश किया है। कर्म और उपासना का फल ज्ञान के फल के समान अन्तिम नहीं है। जितना हो सके उतना कल्याण करने को शास्त्र में कर्म और उपासना का विधान है। उन दोनों के करने से ज्ञान का अधिकारी हो जाता

है, कर्म और उपासना का विधान सत्य की तरफ ले जाने की प्रेरणा करने वाला होने से बहुत से अधिकारियो के लिये सफल है।

२१ दुखकर जगत् ।

प्रश्न.—जीव को संसार में विशेष करके दुःख ही दुःख होता है तो जीवो को दु.ख देने के लिये ऐसी दुनिया ईश्वर ने क्यो रची ?

उत्तर:—शास्त्रो में जगन् का कर्ता ईश्वर कहा है और जगत् को अनादि भी बताया है। अनादि की उत्पत्ति यह विरुद्धता किस प्रकार होगी इस का विचार करना चाहिये। अनादि जगत् का बनाने वाला ईश्वर किस प्रकार होगा और वह ईश्वर कैसा होगा? ऐश्वर्य वाले को ईश्वर कहते हैं। किसी प्रकार की विशेषता का नाम ऐश्वर्य है। जीव व्यष्टि भाव वाला है, उसका जो समष्टि भाव है वह ही ईश्वर है। सब जीवो की पृथक् अहंता को छोड़ कर जिस एक में सब का समावेश किया जाय उसको ईश्वर कहते हैं ब्रह्माड भर जिस का एक शरीर है ऐसा कोई एक ईश्वर समझा जाता है। कर्म और उपासना के अधिकारी इस गुप्त रहस्य को नहीं समझ सक्ते। और योग्यता रहित समझ जांय तो कर्म और उपासना मे से उन लोगो की श्रद्धा उठ जाय इस लिये पुराण आदिक शास्त्रों में उन की रुचि के अनुसार ईश्वर वर्णन किया गया है। जैसे एक मनुष्य अपने शरीर अंग, उपांग सहित चैतन्य को मिला कर अज्ञान से "मै हूँ" ऐसा कहता है इसी प्रकार समष्टि शरीर को अज्ञान भाव सहित "मै हूँ" ऐसा ईश्वर नहीं कहता। जो परम तत्त्व ब्रह्म है वह ही ईश्वर है, उस से दूसरा कोई ईश्वर नहीं है। वेदान्त के अनुसार माया की उपाधि

सहित ईश्वर कहा जाता है तो भी वह उपाधि वाला नहीं है न वह उपाधि के भाव वाला है और न उसका उपाधि से तादात्म्य है परन्तु अक्रिय मे क्रिया रूप जो सृष्टि की रचना है उसे समझाने के निमित्त ईश्वर की संज्ञा है ।

ईश्वर ब्रह्म होने से पूर्ण काम है, किसी प्रकार की कामना उसको नही है । जब कामना रहित हो कर सृष्टि की रचना करता है तब किसी और निमित्त से ही सृष्टि की रचना की जाती है । पूर्व कल्प के जीवो का शेष संस्कार ही उस मे निमित्त है इसलिये ईश्वर कर्ता हो कर भी अकर्ता ही रहा । जगत् का आरम्भ पूर्व कल्प के शेष संस्कारों से होता है इसलिये जगत् भी अनादि रहा । ईश्वर कोई नवीन जगत् नहीं बनाता है, पूर्व कल्प के अन्त मे लय हुआ संसार ईश्वर से चालू होता है, संकुचित में से प्रफुल्लित होता है । किसी को सुखी और किसी को दुःखी बनाना कामना वाले से हो सक्ता है, ईश्वर में कोई कामना नहीं है इसलिये सृष्टि की रचना कामना रहित होती है तब ईश्वर किसी को सुखी और किसी को दुःखो किस प्रकार बनावे ? वह किसी को सुखी अथवा दुखी नहीं बनाता, जो कोई सुखी अथवा दुखी बनता है वह अपने पूर्व कर्मों के अनुसार बनता है । उसके सुख दु ख का हेतु ईश्वर नहीं है, पह निर्दोप है । जैसा दर्पण निर्मल होता है ऐसे ईश्वर निर्मल है दर्पण के सामने जो जैसा रूप चना कर जाता हैं दर्पण उसे वैसा ही दिखला देता है इसी प्रकार ईश्वर रूप दर्पण मे जीवों के कर्म ही प्रतिबिम्बित हो कर जीवों को दिखाई देते हैं ।

ईश्वर जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण कहा जाता है प्रत्येक की उत्पत्ति में दो प्रकार के कारण होते हैं एक निमित्त कारण और दूसरा उपादान कारण। वस्तु का बनाने वाला निमित्त कारण होता है और जिस पदार्थ में से वस्तु बनाई जाती है वह उसका उपादान कारण है। जैसे कुम्हार मट्टी में से घट बनाता है इसलिये वह बनाने वाला होने से निमित्त कारण है और मट्टी जिससे घट बनाया जाता है, उपादान कारण है। सृष्टि रूप कार्य मे निमित्त और उपादान दोनों कारण ईश्वर ही है

जगत सत्व प्रधान और तम प्रधान प्रकृति का है। सामान्य लोग सत्व प्रधान को चैतन्य और तम प्रधान को जड़ कहते हैं। ईश्वर की उपाधि मे चैतन्य और जड़ दोनो ही हैं। सत्व प्रधान प्रकृति से वह निमित्त कारण है और तम प्रधान से उपादान कारण है। इस प्रकार ईश्वर दोनों प्रकार का कारण है। जगत् की उत्पत्ति मे वह अपने सिवाय दूसरा कोई पदार्थ ग्रहण नहीं करता इसलिये वह अभिन्न निमित्तोपादान कारण है।

गूलर के फल मे अनन्त जन्तु होते हैं, सब भिन्न २ कहे जाते हैं। फल सब का समष्टि रूप होने से ईश्वर समझो। जब जीव वृद्धि को प्राप्त होते हैं तब फल फट जाता है इसी प्रकार कल्प की आदि मे जीवों का कर्म पक हो कर फल भोगने के योग्य होता है तब सृष्टि रचना रूप जो क्रिया होती है वह ही ईश्वर की सृष्टि रचना है। यह क्रिया जीवों के कर्म के अनुसार है, ईश्वर की स्वतंत्र क्रिया नहीं है। इससे जान पड़ता है कि

ईश्वर ने जीवों को दुःख देने के लिये संसार रचना नहीं की है किन्तु जीवों ने ही अपने फल भोग रूप प्रेरणा से ईश्वर से सृष्टि की रचना कराई है।

तेरा कहना है कि संसार मे विशेष कर दुःख ही दुःख है, मैं कहता हूँ कि जिसे तू संसार कहता है वह संसार ही नहीं है और तेरे समझे हुए संसार में किंचित् मात्र भी दुःख नही है। जगत् के सब पदार्थ जीवो के सुख निमित्त हैं। सुख दुःख जगत् मे नहीं हैं किंतु अज्ञान में है। अज्ञान जो जीवों के भीतर है उसके दुःखो को तू बाहर के संसार-जगत् में बताता है, यह तेरी मूर्खता है। जगत् का कोई भी पदार्थ सुख से रहित दुःख रूप हो ऐसा तू नहीं दिखला सक्ता। सब दुःख अज्ञान के भाव में है। पदार्थ में सुख दुख कुछ भी नहीं है। संसार में विशेष करके दुःख मालूम होने के कारण अज्ञान के भाव की विशेषता है। संखिया दुरुपयोग से विष है किंतु सदुपयोग होने से वह ही अमृत है, तब संखिया विष है अथवा अमृत ही है ऐसा कहना नहीं बनता।

एक वैद्य जो आयुर्वेद के अंग उपांग क्रिया सहित जानता था और इस विद्या मे निपुण था उसका नाम शारंगधर भट्ट था वह वैद्यराज अपने समान दूसरे को इस विद्या मे कुशल नहीं समझता था। सब पदार्थों के गुण और दोष वारंवार प्रयोग कर के जाना करता था। जितने पदार्थों का पृथक्करण कर के देखा सब में उसे गुण और दोष दोनों ही मालूम

पड़े। एक समय उस ने विष्ठा के क्रमियो (चुनचुनों) को देखा। उनमें क्या गुण है और क्या दोष है यह जानने के लिये उसने बहुत से प्रयोग किये परन्तु उनमे कोई गुण उसे मालूम न पड़ा तब वह ईश्वर को दोष देने लगा "ईश्वर ने विष्ठा के क्रमी किसी उपयोग विना ही उत्पन्न किये हैं, ईश्वर में भी बुद्धि नहीं दीखती, सब पदार्थों में तो कोई न कोई गुण है उनमें गुण क्यों नहीं है? क्या उन में गुण रखना ईश्वर भूल गया? जो वस्तु किसी काम में ही नहीं आती उसका पैदा करना व्यर्थ है!" इस प्रकार ईश्वर मे दोषारोपण रूप अपने अभिमान से थोड़े दिनों में वह सारंगधर भट्ट दोनो आंखो से अन्धा होगया उसने अपनी आयु मे अनेक अन्धों का अन्धापना खो दिया था। उसने अपने प्रयोग मे लाई हुई सब औषधियो का ऊपयोग किया किन्तु उसका अन्धापन न गया। अन्त में उस ने अपनी जानी हुई औषधि करना छोड़ दिया। थोड़े दिन पीछे उसने एक साधु की प्रशंसा सुनी। वह सब को औषधि वांटता था और उस औषधि का जो जो उपयोग करते थे वे सब ही रोगमुक्त हो जाते थे। निराश हुआ वैद्यराज उस साधु के पास औषधि लेने पहुँचा। साधु ने नित्य कर्म से निवृत्त होकर औषधि वांटना आरम्भ किया। औषधि वांटता हुआ वह सारंगधर के पास आया और उसने दोनो नेत्र देख कर अंजन की एक एक पुड़िया नेत्रों में लगाने के लिये वैद्यराज को दे दी। उसे ले कर सारंगधर अपने स्थान पर आये और अंजन की पुड़िया खोल

कर उन्होंने एक आंख में अंजन लगाया, अंजन लगाते ही आंख का अन्धेरा दूर होगया । अंजन दोनों आखो मे लगाने ही योग्य था विशेष न था । आधा अंजन हाथ में रहा देख कर सारंगधर ने विचार किया "इसका प्रथक्करण करके इसकी वस्तुओं को भिन्न २ करके उनका प्रमाण जान जाऊं, औषधि मुझे मालूम हो जायगी तब फिर औषधि बना कर दूसरी आंख में लगा लूंगा।" उसने वह ही किया, सब वस्तुयें उनके प्रामण के साथ भिन्न कर के और सब वस्तुयें तो पहचान लीं, एक वस्तु पहचानने मे न आई । उसे पहचानने के लिये वैद्यराज ने अपनी सब बुद्धि खर्च करदी, परन्तु वह न पहचानी गई । अंत मे उसने जानी हुई सब औषधियों को प्रमाण सहित मिला कर अंजन तैयार किया और नेत्र में लगाया किंतु कुछ फायदा न हुआ । अंजन में अज्ञात वस्तु नहीं डाली गई थी । अंजन लगाते ही रोशनी बढ़ने के बदले और भी विशेष अन्धेरा छा गया । अपनी युक्ति निष्फल होने से वैद्यराज दूसरी बार औषधि लेने साधु के पास गये । साधु उन्हें देखते ही कहने लगा, तुम तो मेरे पास से औषधि ले जा चुके हो, जो कोई मेरे पास से एक बार औषधि ले जाता है दूसरी बार फिर नहीं आता क्योंकि एक बार की औषधि से ही रोग चला जाता है । सारंगधर ने कहा मेरी एक आंख ठीक हो गई है । साधु ने कहा, तुमने एक आंख मे अंजन लगाया होगा ! दूसरी आंख का अंजन क्या किया ? वैद्य सच के सिवाय और कुछ नहीं कह सक्ता था, जो कुछ उस ने किया था

सब कह दिया और अंजन में एक वस्तु के सिवाय और जो जो वस्तुयें थीं सब प्रमाण सहित बताई और कहा, अज्ञात वस्तु के न जानने से ही मेरी आंख ठीक न हुई इसलिये मैं काणा रह गया हूँ। साधु ने हंस कर कहा हे वैद्यराज! यह वह ही औषधि है जिसके लिये तुम ईश्वर को दोष देते थे, दोष देने के कारण तुम अन्धे हुए थे। यह कह कर साधु ने अपने हाथ से सारंगधर की आंख में अंजन लगाया और उसकी दूसरी आंख ठीक होगई पश्चात् वैद्य अपने घर चला गया और जब तक जीता रहा तब तक ईश्वर को दोष देने का पश्चात्ताप करता रहा।

संसार और संसार का कोई पदार्थ अवगुण वाला ही हो और उपयोग रहित हो ऐसा नहीं है। तू जिसको संसार कहता है वह ईश्वर सृष्टि है, वह तेरा संसार नहीं है। तुझे जो संसार विशेष दु:ख रूप भासता है वह तेरा आंतरिक संसार है। ईश्वर सबको सामान्य है, उसमे जो दु:ख दिखाई देता है वह आंतरिक सृष्टि के भाव से दीखता है। ईश्वर सृष्टि का दोष नहीं है, ईश्वर सृष्टि बंधन का हेतु भी नही है किंतु आंतरिक बंधन की निवृत्ति के साधन ईश्वर सृष्टि मे मिलते हैं। ईश्वर सृष्टि में स्वरूप से कोई दु:ख नहीं है। ऐसी सृष्टि को विशेष दु:ख रूप कैसे कहा जाय? तू जिसको विशेष दु:ख रूप कहता है वह अज्ञान निवृत्त होने से मेरे लिये सुख स्वरूप, आनंदरूप और ब्रह्म रूप है।

ईश्वर सृष्टि, जीवों के भोग के निमित्त है, उन्हें दु:ख देने के लिये नहीं है। यदि जीव अज्ञान के कारण अपने आंतर

दुःख को ईश्वर सृष्टि मे माने तो यह मानने वाले का दोष है, ईश्वर का नहीं है। संसार में दुख ही दुख है यह मेरे मानने मे किस प्रकार आवे ? जो सब जीवो को संसार मे दु'ख ही दुःख मालूम होता हो तो संसार मे जीवित रहने की इच्छा नहीं रहनी चाहिये किंतु देखते हैं कि कोई भी अपना घात आप नहीं करता, सकारण आपघात करने की वात और है। जब अपने ऊपर आपत्ति आती दीखती है तो जीव रक्षा करने को तैयार हो जाता है यह क्यो ? कोई मरना नही चाहता, तब कैसे समझा जाय कि ससार मे विशेप दु'ख ही दु.ख है। जब दुःख आता है तब दु.खी होता है। उस दुःख को वाहर के संसार में समझ कर संसार की निन्दा करता हैपरन्तु कितनी देर ? जब तक किंचित् सुख का भी भान न हो तभी तक। समझे हुए थोडे से सुख से पूर्व का विशेप दुःख लोग भूल जाते हैं इससे यह सिद्ध होता है कि संसारी कोई भी मनुष्य 'संसार में दुःख ही दुःख है' ऐसा नहीं मानता।

ऐसा मानने वाला कोई जिज्ञासु होता है। 'वह संसार क्या है ?, कहां है ? दु.ख देने वाला कैसे होता है ?' सब इन वातों को ठीक २ समझना चाहता है। जब वह संसार का स्वरूप जान जाता है तब वह वाहर के ससार को दु ख रूप नहीं देखता। जो तुझे संसार बुरा मालूम होता हो और उस मे दोप दृष्टि हुई हो तो आत्म प्राप्ति के लिये सत्संग और शास्त्र श्रवण कर और यदि ईश्वर को दोप देने के लिये ही दोप दृष्टि हुई हो तो ईश्वर को दोप दिया कर। ऐसा करने से तेरे दोप तेरी तरफ ही लौट

कर आवेंगे क्योंकि ईश्वर दर्पण के समान निर्मल और अग्राहक है।

विचार कर के देखा जाय तो जीव ही अपने संसार का आप बनाने वाला है फिर भी तुझ सरीखे दोष ईश्वर को ही देते हैं। जीव भाव वाला कोई मनुष्य भी अपना दोष मानने के लिये तैयार नहीं है। प्रत्येक अपने दोष को कोई न कोई निमित्त दिखला कर दूसरे के शिर डालता है। संसार और संसार के पदार्थों की कामना से उन्हें वारंवार दुःख का अनुभव करना पड़ता है, 'इस दुःख का कारण मैं ही हूं' ऐसा वह नहीं मानता, तब दोष दे किस को ? जब दूसरे को दोष नहीं दे सके तब ईश्वर के शिर पटकते हैं क्योंकि दोष देने वाले को ईश्वर प्रत्यक्ष मे उत्तर नहीं देता। जो ईश्वर को दोष देते हैं वे अपने ही को दोष देते हैं क्यों कि ईश्वर उन से भिन्न नहीं है।

वास्तविक मे न तो ससार है और न उस को ईश्वर ने बनाया है। यह बात ज्ञान के लक्ष सिवाय मनुष्यों की समझ में आना कठिन है। संसार, संसार का बनाने वाला और बनने वाला यह सब अज्ञान के सिवाय और कुछ नहीं है। बालक बुद्धि के हृदय में संसार सत्य है तो उसका बनाने वाला ईश्वर भी सत्य है और जीव भी सत्य ही है। वस्तु रूप क्या है यह बात ज्ञानी ही समझते हैं। 'ससार है ही नहीं' ऐसा सर्वोत्कृष्ट वाक्य अज्ञानियों की बुद्धि में नहीं ठहरता इसलिये ही 'संसार अनिर्वचनीय है' इस प्रकार वेदान्त की प्रक्रिया है। भाव कहो, अज्ञान कहो, माया कहो, प्रकृति कहो, ये सब एक ही वस्तु के पर्याय- नाम

हैं। भाव से जीव है, जीव भाव अति न्यून अवलम्बन वाला होने से जीव अल्पज्ञ है। इस व्यक्ति भाव के माप से समष्टि जो उच्च और सर्वज्ञ है वह ईश्वर है। इस प्रकार जीव को छोड़ कर ईश्वर कोई भिन्न न हुआ, भिन्न न होने से वह जीवों के लिये दुःख कर संसार नहीं बनाता। अपना मुख खराव होने से दर्पण में खराव दीखने से जैसे दर्पण को दोष दिया जाय इसी प्रकार ईश्वर को दोष देना है ईश्वर भाव ही ईश्वर है,यदि भाव छोड़ कर ईश्वर कोई स्वतंत्र पदार्थ होता, और सर्व शक्तिमानादिक वास्तविक गुणों वाला होता, इच्छानुसार जीवों को सुख दुःख देता और विना किसी कारण ऐश्वर्यादि की प्राप्ति भी करा देता तो शास्त्र में पुण्य-शुभ कर्म, अन्त.करण की निर्मलता, श्रद्धा, शोक का निवारण आदिक का जो उपदेश दिया गया है, यह व्यर्थ होजाता तव तो प्रत्येक मनुष्य यह कह सक्ता "मेरी कोई सत्ता नहीं है, मैं ईश्वर का एक खिलोना हूँ, वह अपनी इच्छानुसार चाहे मुझे सुख दे, अथवा दुख दे, मैं पुरुपार्थ में परतन्त्र हूँ, परतंत्र होने से मैं कुछ प्रयत्न नहीं कर सक्ता! ईश्वर सर्व शक्तिमान् है,शास्त्र और शास्त्र का उपदेश झूठा है! हम कुछ कर नहीं सक्ते, शास्त्र करने को उपदेश देता है इसलिये झूठा है।" अज्ञान भाव में इस प्रकार कहना नीच गति को प्राप्त करने वाला है।

जीव का समष्टि भाव ईश्वर है। मैं कुछ नहीं हूँ, ईश्वर सब कुछ है व्यक्ति की कठपुतलियां उससे 'नाचती है" ऐसी अनन्य भक्ति वाला अपने व्यक्ति भाव को समष्टि में लय कर देता है।

भक्त की ऐसी भावना सार्थक है क्योंकि वस्तु एक है, अज्ञान से अनेकता का भ्रम है। व्यक्ति भाव छोड़ कर, समष्टि के शुद्ध चैतन्य मे लक्ष पहुंचाता हुआ, समष्टि भाव को वाध कर के ही **अहं ब्रह्मास्मि** कह सक्ता है। इस प्रकार सब कुछ ईश्वर ही है ऐसी भावना से अपने पृथक् अहंभाव को तोड़ कर कहे तो ठीक ही है परन्तु अज्ञानियों को सब विकारो सहित पृथक् अहंभाव रहने पर भी ऐसा कहना अयुक्त है। जो ऐसा करता है अपने को धोखा देता है।

भक्तो के सामने प्रगट हो कर ईश्वर का दर्शन, संभाषण और क्रिया आदिक अनेक चरित्र सुनने में आते हैं यह किस प्रकार वन सक्ता है यदि ऐसी कोई शका करे तो सुन.—जो कुछ हो गया है, होता है और होगा सब जीवों मे रहने वाला उच्च भाव ईश्वर रूप से प्रगट हो कर सब चेष्टायें करता दिखाई देता है। जिसको ईश्वर के जिस भाव की मान्यता है, उसके सामने उसी रूप से ईश्वर प्रगट होता है और उसी का भाव रूप होने से उसी को दीखता है दूसरे को नहीं दीखता। जो एक ही प्रकार के भाव एक ही समय, स्थान में विशेष जीवों के हों तो सब को उस का प्रत्यक्ष होना संभवित है। व्यष्टि भाव से समझा हुआ समष्टि शुद्ध भाव ही ईश्वर है।

संसार को जब अनादि कहा जाता है तब उस की उत्पत्ति कैसी ? शास्त्रों में जो संसार की उत्पत्ति वताई है वह उत्पत्ति नहीं है। शास्त्रों मे उत्पत्ति का वर्णन अन्य निमित्त किया गया है।

लय चिंतन रूप उपासना के हेतु उत्पत्ति कही गई है। जिस क्रम से उत्पत्ति बताई है उसी क्रम से लय होता है लय ज्ञान प्राप्ति का हेतु है। उत्पत्ति वर्णन करने से उत्पत्ति सिद्ध करने की वेद की इच्छा नहीं है। जो उत्पत्ति सिद्ध करने की इच्छा होती तो उत्पत्ति का क्रम सब स्थानों पर एक ही बताया होता परन्तु ऐसा नहीं है। उत्पत्ति का क्रम कई भिन्न २ प्रकार से बताया है। जैसे जब किसी एक पदार्थ को समझाना होता है तो अनेक युक्तियों से समझाया जाता है। वे युक्तिया एक दूसरे से भिन्न होती हैं क्यों कि वे सिद्धांत नही होतीं वास्तविक वस्तु का बोध ही मुख्य है और बोध सब युक्तियो के अंत में एक होता है। इस प्रकार संसार अनादि है, ईश्वर रचित है, अमुक क्रम से रचित है इत्यादिक सब युक्तियों का प्रयोजन अज्ञान निवृत्त कर के ज्ञान प्राप्ति कराने में है। तब ईश्वर ने सृष्टि जीवो के दु:ख देने के निमित्त बनाई है यह कैसे कहा जाय ?

संसार अनादि कहने से संसार सत्य है ऐसा न समझना चाहिये। संसार को सत्य असत्य से भिन्न अनिर्वचनीय कहकर उसे काल्पनिक अनादि कहा है। कल्पना में संसार अनादि है। कल्पना अज्ञान है, अज्ञान निवृत्त होने पर संसार नही रहता। जिस स्थिति में अनादि होकर वर्तता है, उसके न रहने से उसका अत हो जाता है। संसार का ईश्वर जीव का समष्टि भाव है इसलिये संसार के पदार्थों की जो महत्वता है वह उसी की है और स्वरूप से तो ईश्वर ब्रह्म स्वरूप ही है। ब्रह्म में कर्तापना नहीं

है तो वह सृष्टि कैसे रचे ? जैसे एक बगीचा है, उसमें अनेक प्रकार के वृक्ष लतादि लगे हुए हैं। "बगीचे ने सुन्दर वृक्ष लगाये हैं" जैसे यह कहना नहीं बनता इसी प्रकार "ईश्वर ने सृष्टि बनाई है।" यह कहना नहीं बनता।

ठीक विचार कर देखा जाय तो वृक्षों के समूह रूप का नाम ही बगीचा है, वृक्ष अपने पूर्व के बीज के अनुसार पैदा होते हैं। बगीचा वृक्षों को अपनी इच्छानुसार नहीं बनाता, इसी प्रकार ईश्वर को समझो। यदि ऐसा कहो कि बगीचा और वृक्ष माली ने बनाये हैं तो भी वृक्ष और बगीचा क्या भिन्न २ हैं ? वृक्षों को निकाल देने से बगीचा नहीं रहेगा। माली जो वृक्ष लगाता है उनमें अमुक वृक्ष का होना उसके पूर्व बीज का ही प्रभाव है। माली किसी बीज में से किसी वृक्ष की उत्पत्ति नहीं कर सक्ता। यदि इसी प्रकार ईश्वर सृष्टि का कर्ता है तो वह आपेक्षिक कर्ता हुआ क्योंकि पूर्व काल के संस्कारों के अनुसार सृष्टि करता है।

यदि कोई कहे कि इस प्रकार मानने से ईश्वर में स्वतन्त्रता नहीं रहेगी तो सुनः-स्वतन्त्रता दूसरे पदार्थ की अपेक्षा से है, ईश्वर का भाव द्वैतमें है नहीं। तब स्वतन्त्रता और परतंत्रता किस प्रकार कही जाय ? जीव अज्ञान में दबा हुआ होने से परतन्त्र दीखता है, ईश्वर माया मे दबा नहीं है इसलिये जीव की दृष्टि में वह स्वतन्त्र है परन्तु आश्चर्य यह है कि उसको स्वतन्त्रता का उपयोग करने के लिये अन्य स्थान नहीं है। जिनका भाव द्वैत मे है वे एक पृथक् व्यक्ति के समान महान् सामर्थ्य वाला सृष्टि का

रचने वाला मानते हैं। यदि उसने अपनी इच्छानुसार जीवों को दु:ख देने के लिये संसार बनाया है तो जीव कभी दु:ख से निवृत न होंगे, क्योंकि जीव की सामर्थ्य नहीं है कि ईश्वर से विरुद्ध हो कर अपने सुख दु:ख को आप प्राप्त करे। परंतु ऐसा नहीं है जीव अपना हिताहित करने में स्वतत्र है। जो कुछ परतंत्रता का भान होता है वह उसी का बनाया हुआ है।

यदि ईश्वर सृष्टि में कोई पदार्थ दु:ख रूप होता तो वह सब को एक समान मालूम होना चाहिये था। ऐसा नहीं है एक पदार्थ एक को सुख रूप और दूसरे को दु:ख रूप होता है। जो ईश्वर एक को सुख देने का और दूसरे को दु:ख देने का भाव करता रहे तो ब्रह्मांड भर के जीवों का शोच करता रहे तब तो उसे क्षण भर भी शाति न रहे। एक मन से सब का विचार होना असम्भवित है यदि अनेक मन से करे तो एक व्यक्ति न रहे। उसमे न्याय के अनुसार वर्ताव न हो और न्याय अन्याय रहित इच्छानुसार वर्ताव हो। ऐसा ईश्वर मानना योग्य नहीं है और उसकी बनाई हुई यह सृष्टि नहीं हो सक्ती।

अन्तिम सारांश:—सृष्टि सबको एक समान दुख रूप हो ऐसा मालूम नहीं होता इसलिये सृष्टि दुख रूप ही है ऐसा नहीं है। सुख दुःख जगत् में नहीं हैं, जीवों के भाव से है। ससार अनादि होने से ईश्वर उसका बनाने वाला नहीं है। शास्त्रों में जो संसार की उत्पत्ति बताई गई है वह संसार की संकुचित अवस्था से प्रफुल्लित अवस्था है। यदि प्रफुल्लितता ही उत्पत्ति माने तो

जीवों के पूर्व कर्मों के अनुसार ईश्वर उसका रचने वाला है। वह अपनी तरफ से कुछ नहीं बनाता इसलिये वह कर्ता होकर भी अकर्ता है। ईश्वर ब्रह्म स्वरूप है। जीव की दृष्टि मे जीव का समष्टि भाव उनके समझने का ईश्वर है। जीव अपने संसार को आप ही रचने वाला है। उत्पत्ति का क्रम उपासना में उपयोगी होने से शास्त्रों मे बताया है, उत्पत्ति के निमित्त नहीं बताया। उत्पत्ति निमित्त ही बताते तो उत्पत्ति का कथन भिन्न २ प्रकार न होता। जीवों को दुःख देने को ईश्वर ने जगत् नहीं बनाया।

२२ आत्मा अशुद्ध कैसे हुआ ?

प्रश्न—आत्मा शुद्ध स्वरूप है तो अशुद्ध स्वरूप वाला जीव किस प्रकार हुआ ? अशुद्ध किस ने किया ? जड़ माया चेतन आत्मा को अशुद्ध नहीं कर सक्ती, स्वय अशुद्ध हो नहीं सक्ता, और दूसरा अशुद्ध करने वाला है नही ।

उत्तरः—पूर्व प्रश्नों के उत्तर में जो विचार कर देखा जाय तो इस प्रश्न का उत्तर आ गया है। फिर भी पृथक् रीति से उसे सुनाता हूँ। आत्मा को शुद्ध स्वरूप और जीव को अशुद्ध स्वरूप वाला जो कहता है तो यह बता कि व्यवहारिक लक्ष से अथवा पारमार्थिक लक्ष से तू ऐसा कहता है ? पारमार्थिक लक्ष अद्वैत है और व्यवहारिक लक्ष द्वैत है। अद्वैत लक्ष में आत्मा, जीव और शुद्ध अशुद्ध का विशेषण नहीं लग सक्ता और व्यवहार के द्वैत के लक्ष से आत्मा शुद्ध है इत्यादि कहना अज्ञान में बिना जाने हुआ है। यदि तू व्यवहार को शुद्ध कहे तो व्यवहार वाला जीव भी अशुद्ध नहीं होता। दोनों मे से किसी लक्ष से भी तेरा प्रश्न संभव नहीं है।

शास्त्र में आत्मा को शुद्ध और जीव को अशुद्ध जो कहा है वह उपदेश की श्रेणी में कहा है। जीव को अशुद्ध समझने से विकार रूप उपाधि को पृथक् करने में सहायता मिले और आत्मा को शुद्ध समझने से आत्मा की तरफ रुचि हो, इसलिये मुमुक्षुओं को इस प्रकार समझाया जाता है क्योंकि यह क्रम आत्म भाव प्राप्त करने का सहारा रूप है।

आत्मा ऐसा है, इसको वर्णन करके समझाना अशक्य है क्योंकि वह शब्दातीत है इसलिये वेद भी जो परब्रह्म के ज्ञान के दिखलाने की प्रतिज्ञा करता है, पृथक् खड़ा हो कर ही संकेत (इशारा) ही करता है और किये हुए संकेत को लक्ष के पीछे काटने के लिये "नेति नेति"—यह नहीं यह नहीं ऐसा कहता है। इसलिये आत्मा किसी से समझा नहीं जाता, आत्मा को आत्मा ही समझता है। शास्त्र और गुरु जो कुछ कहते हैं वह लक्ष में सहायता पहुँचाने के निमित्त हैं। अनेक कथन किये हुए वाक्यों की यथार्थ सत्यता आत्मा मे नहीं मिलती, ऐसा होने पर भी शब्द निरर्थक नहीं हैं किंतु लक्ष की प्रेरणा करने से सार्थक हैं। उन वाक्यो सिवाय और किसी प्रकार श्रेय—परम पद की प्राप्ति का होना ही संभव नहीं है। सब वाक्य माया मे हैं, माया के हैं, उनसे माया के हटाने का उपदेश है। माया माया को काटती है, सजाति को सजाति ही काटता है, अन्तर इतना है कि काटने और कटने वाले का स्वभाव विरुद्ध होता है। जैसे लोहा लोहे को काटता है परन्तु काटने वाला लोहा कठिन होता है और कटने वाला नरम होता है। लकड़ी को लकड़ी ही काटती है—लकड़ी की सहायता से काटती है लकड़ी मुलायम पृथ्वी तत्त्व है और लोहा कठिन पृथ्वी तत्त्व है। लोहा रूप कुल्हाड़ा लकड़ी को काट देता है, कुल्हाड़े में भी दस्ता लकड़ी का ही रहता है। इसी प्रकार अज्ञान को अज्ञान ही काटता है। एक अज्ञान फसाने वाला है, उससे विरुद्ध दूसरा अज्ञान

फंसावट में से निकालने वाला है। सामान्यता से ज्ञान को अज्ञान का काटने वाला कहा है किंतु वह ज्ञान माया में है। यहां ज्ञान और ज्ञान स्वरूप के भेद को लक्ष में रखना चाहिये। ज्ञान से जब अज्ञान निवृत्त हो जाता है तब जीव शुद्ध हुआ कहा जाता है और उससे विरुद्ध स्वभाव वाला जीव अशुद्ध कहलाता है। जीव की शुद्धता और अशुद्धता मायासे है और माया में है, आत्म स्वरूप में शुद्धता और अशुद्धता नहीं है तब आत्मा जो नित्य शुद्ध है वह अशुद्ध हो कर जीव भाव को प्राप्त हुआ यह कैसे कहा जाय ? आत्मा शुद्धाशुद्ध विकार रहित स्वयं तत्त्व है इस-लिये वह कभी अशुद्ध नहीं होता। 'आत्मा अशुद्ध हो कर जीव हुआ है' ऐसा ज्ञानियों की दृष्टि में नहीं है। जब आत्मा जीव हुआ ही नहीं तो मैं किस प्रकार बताऊं कि इस प्रकार जीव हुआ है ? तो भी वह किस प्रकार हुआ है, क्या हुआ है और वास्तविक हुआ है या नहीं यह बात तुझे दृष्टांत से समझाता हूं।

एक राजा की कन्या बहुत सुन्दर थी। सुन्दरता के अभि-मान से वह अत्यन्त गर्विष्ठ थी। वह अपने मन में समझती थी कि मेरे योग्य सुन्दर पुरुष जगत् में पैदा ही नहीं हुआ ! बहुत से राजकुमार कुमारी की सुन्दरता की प्रशंसा सुन कर उससे विवाह करना चाहते थे परन्तु राज कन्या किसी को पसंद नहीं करती थी अनेक प्रकार की त्रुटियां निकालती थी। जब उसने किसी को पसन्द न किया तब अन्त में उसके पिता ने स्वयंवर रचा। बहुत से सुन्दर और गुणवान् राजकुमार स्वयंवर में आये।

जब स्वयंवर स्थान राजकुमारों से भर गया तब राजकुमारी हाथ में वरमाला लेकर राजकुमारों को देखती हुई चली। कोई राज-कुमार उसे लम्बा मालूम होता था, कोई बोना, कोई मोटा, कोई पतला, कोई गधे के समान कान वाला, कोई बिल्ली की आंखों समान आंखों वाला, कोई लम्बी नाक वाला, कोई बैठी नाक वाला दीखता था। इस प्रकार राजकन्या सब में दोष देखती हुई, सबको छोड़कर आगे चली। अब एक ही राजकुमार शेष रहा था, उसको ऐसी आशा लग रही थी कि अब राजकुमारी मुझे ही पसंद करेगी। इसलिये वह छाती निकाल कर खड़ा हो गया। उसको देखकर राजकुमारी हास्य सहित कहने लगी "क्यों रे बुहारी की समान मूछों वाले राजपूत! तू क्यों खड़ा है? हाय! हाय! ऐसी भद्दी मूछें मैंने अपनी उमर भर में किसी की भी नहीं देखी हैं! खजूर के पेड़ के सूखे पत्ते नाक के इधर उधर लगा लिये हैं!" इस प्रकार के वाक्य सुनकर राजकुमार लज्जित होकर चला गया। राजकुमारी का पिता जी में बहुत दुखी होकर "बड़े शोक की बात है, मैंने कुमारी के लिये स्वयंवर भी किया परंतु उसने किसी को अपना पति स्वीकार न किया!" ऐसा जी में कहकर राजकुमारी से क्रोधित होकर बोला "अच्छा! स्वयंवर में से तू ने किसी को पंसद न किया! आज से तीन दिन की मैं तुझे अवधि देता हूं, इतने समय में तू अपना पति खोज ले नहीं तो चौथे दिन प्रातःकाल शहर का फाटक खुलते ही जो पुरुष प्रवेश करेगा, चाहे वह राजा हो चाहे रंक हो, ऊंच वर्ण हो या नीच वर्ण हो, निरोगी हो अथवा रोगी हो, उसके साथ मैं ते

विवाह कर दूंगा, पीछे जो तू मेरा दोप निकालेगी सो व्यर्थ होगा।" तीन दिन हो गये, राजकन्या अपना पति न ढूंढ़ सकी। चौथे दिन प्रातःकाल शहर का फाटक खोला गया, और एक भिखारी प्रवेश हुआ। राज कर्मचारी उसे राजा के पास ले आये। राजा ने भिखारी से पूछा "भिक्षुक! क्या तू गाना जानता है जो कुछ जानता हो तो गाकर सुना।" भिखारी ने एक भजन गाया, उसे सुनकर राजा प्रसन्न होकर कहने लगा "हे सौम्य! मैं तुझे एक उत्तम पारितोपिक देना चाहता हूँ, मैं तेरे साथ अपनी पुत्री का विवाह करूंगा।" राजकुमारी यह सुनकर बहुत घबड़ाई और उसके साथ विवाह न करने को पिता से बहुत प्रार्थना की परन्तु राजा ने कुछ न सुना और पुरोहित को बुलाकर राजकन्या का विवाह भिक्षुक के साथ उसी समय कर दिया और कहा "पुत्री! अब तू राजकन्या नहीं है, आज से तू भिक्षुक की पत्नि है, अब तुझे राज महल में रहना उचित नहीं है, अब तू अपने पति के साथ जहां उसका घर हो वहां चली जा।" ये वचन सुनकर राजकन्या बहुत दुखी हुई, मुख उतर गया नेत्रों से आसुओं की नदी बहने लगी। बड़े २ राजकुमार जो उससे विवाह करने आये थे उनमे से किसी के साथ विवाह न करने का पश्चात्ताप करने लगी। अति गर्व का बुरा फल प्रत्यक्ष उसे अनुभव हुआ। भिक्षुक ने राजकन्या का हाथ पकड़ कर कहा "चल! अब विलम्ब न कर! जिस राजा के पुत्र को तू ने बुहारी समान मूछों वाला कहा था, उस राजा के देश मे ही मैं रहता हूँ" दोनो शहर के बाहर निकाल दिये गये। राजकुमारी से चला न जाता देखकर भिक्षुक ने कहा

"यहां पर कोई घोड़ा नहीं मिल सक्ता, जल्दी चल कर रात्रि से प्रथम घर पर पहुँच जाना चाहिये जो देर होगी तो मार्ग मे रात्रि हो जायगी और हमको कष्ट भोगना पड़ेगा।" राजकन्या रोती हुई चलने लगी। दोपहरी पीछे बड़ी मूंछे वाले राजा का नगर आया और दूर से ही सुशोभित राजभवन दीखने लगा। भिक्षुक ने कहा, देख। सामने जो दीख रहा है वह उसी राजपुत्र का भवन है जिसका तू ने तिरस्कार किया था। राजकन्या मन में कहने लगी, इस देश का राजा तो वहुत ही सुन्दर था। अरे वह तो मदन का अवतार ही था! उसमें एक भी दोष न था। मैंने गर्व से ही तुच्छ शब्द कहे थे। हाय! उस समय मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी। मैं विवाह करना नहीं चाहती थी इसलिये दोष निकाले थे। हाय! हाय! मैंने मद में कितनी भारी भूल की! जो मैं उस राजकुमार के साथ विवाह कर लेती तो मुझे सामने के दिव्य वगीचे मे विहार करने का प्रसंग प्राप्त होता। मैं राज-रानी हुई होती! मेरे पास हजारो दासियां होतीं। पैदल चलने से पैरों मे छाले न पड़ते! राजकन्या के कहे हुए शब्द भिक्षुक ने कुछ सुन लिये, वह कहने लगा, तू अपने मन में क्या कह रही है? अब तो तू मेरी स्त्री है! क्या तुझे इस बात का भी कुछ भान है? मेरे सामने ही तू अन्य पति की भावना करती है! ऐसी भावना तुझ जैसी कुलीन स्त्री के अयोग्य है। तू मेरे स्वभाव को जानती नहीं है। इस समय तो मैं तुझको क्षमा करता हूँ अब जो कभी ऐसा विचार करते सुनूंगा, अपने हृदय मे दूसरे को स्थान देते जान लूंगा तो लाठियों से तेरी कमर तोड़ डालूगा!

राजसत्ता, ऐश्वर्यता अब कहां है ? अब तो तू गरीब भिक्षुक की स्त्री है ! राजकन्या यह सुनकर माथे पर हाथ रख कर चुप चाप चलने लगी । शहर मे पहुँच कर भिक्षुक एक पुरानी झोंपड़ो के सामने खड़ा होगया । राजकन्या ने कहा, चलिये । ठहर क्यों गये ? यह कैसी खराब झोपड़ी है । कैसी दुर्गन्ध आ रही है । भिक्षुक बोला, मैं आगे कहां जाऊं ? यह ही मेरा घर है ! इसमें ही हम रहेंगे । यह कह कर भिक्षुक ने झोपड़ी खोली और भिक्षुक क साथ राजकन्या निश्वास लेती हुई झोपड़ी में घुसी । भीतर पहुंच कर राजकन्या ने कहा, तुम्हारा नौकर कहां है ? चलने से मेरे पैरों में दर्द होता है, दासी को बुलाओ जिससे मैं पैर दबवाऊं । भिक्षुक ने कहा, नौकर ! नौकर कहां है ? इस घर में तो मैं ही नौकर हूँ और तू ही दासी है ! यहां के सब कार्य हम दोनों को मिलकर ही करने पड़ेंगे । मैं भूखा हूँ, रसोई बना ले, मैं सोता हूँ । यह कह कर भिक्षुक सो गया और राजकन्या रसोई बनाने लगी । बिचारी ने कभी रसोई बनाई न थी, लगे हाथ जलने । पर करे क्या ज्यो त्यों कर रसोई बनाई । इस प्रकार दोनो रहने लगे ।

थोड़े दिन पीछे अन्न घट गया तब भिक्षुक बोला, सुन, मुझ अकेले की कमाई से हम दोनों का पालन पोषण होना कठिन है, तू टोकरियां बुनने का काम सीख ले, तो बहुत अच्छा हो ! यह कह कर भिक्षुक ने टोकरी बनाने का सब सामान ला कर रख दिया । राजकुमारी बांस चीरने लगी तो बांस हाथों में घुसने

से लोहू निकलने लगा। यह देख कर भिक्षुक ने कहा, रहने दे, बनाईं तू ने टोकरियां! गुदड़ी सीने का काम किया कर। जब राजकन्या गुदड़ी सीने लगी तो सुई छिदने लगी, यह देख कर भिक्षुक बोला, मेरा भाग्य ही मन्द है! तेरे समान अबुद्ध स्त्री मैं ने कहीं भी नहीं देखी! कोई काम भी तो नहीं होता। एक काम कर, बाग में जाकर माली से कुछ फल मोल ले आ और बाजार में जाकर बेच। बाजार में जाकर फूल बेचने तक की दुर्दशा आती देख कर राजकुमारी को बडा कष्ट हुआ, वह अपने मन में विचारने लगी, पृथ्वी फट जाय तो मैं उसमें समाजाऊं तो अच्छा हो! राजपुत्री होकर बाजार में बैठ कर फल बेचना कितनी लाज की बात है! लोग मुझे देखने को एकत्र हो जांयगे और मेरी मूर्खता पर हंसेंगे! हाय! अब मेरी पूर्ण २ फजीती होगी! यह विचार कर राजकन्या ने बाजार न जाने के अनेक उपाय किये परन्तु उसका स्वामी बड़ा क्रूर था वह न माना और अन्त में उसे फल बेचने को जाना ही पड़ा। दो दिन फल बेचने में अच्छा नफा रहा, तीसरे दिन बाजार में बैठी हुई वह फल बेच रही थी उस समय बुहारी समान मूछों वाले राजा का एक घोड़े सवार वहां आया, घोड़ा ऊधमी था, राजकन्या के पास आकर चौंका और फलों की टोकरी में उसने पैर रख दिया जिससे बहुत से फल कुचल गये। राजकन्या रोती हुई पति के पास पहुंची और सब वृत्तांत सुनाया। भिक्षुक ने कहा, तू ने लज्जा धारण कर के मुझे बहुत हानि पहुंचाई है! हम भिक्षुक

हैं, लज्जा करने से हमारा काम नहीं चलता पांच घर जाकर भीख मांगते हैं तब गुजारा होता है। तुझ से कुछ काम होता नहीं दीखता। मेरे पास तेरा गुजारा नहीं होगा! राजा की पाक शाला मे एक दासी की आवश्यकता है मैं तुझे कल वहां नौकर कर दूंगा। ये वचन राजकन्या के तीर की समान लगे, जी मे विचारने लगी, हाय विधि! मेरे कपाल मे यह क्या लेख लिखा है। जिस राज महल की रानी होने को मैं ने स्वीकार नहीं किया वहां अब मुझे दासी बन कर रहना पड़ेगा। अरे क्रूर विधाता! इस प्रकार का लेख लिखते हुए तेरा हृदय न कांपा? भिक्षुक के डंडे के जोर से राजकुमारी दूसरे दिन राजमहल में दासी की नौकरी करने लगी। कुछ दिन पीछे एक दिन राज महल में भारी उत्सव होने लगा। राज कन्या को दूसरे को पूछने से मालूम हुआ कि बुहारी समान मूछों वाले राजकुमार का विवाह होने वाला है। यह सुन कर वह एकात में बैठ कर रोती हुई विचारने लगी, हाय! इस राजकुमार की मैं पत्नी हुई होती!, आज दासी होकर काम कर रही हूँ, मैंने अहंकार करके अपना सर्वस्व नाश किया। रानकुमारी ने सुना कि कन्या को राजमहल में लाकर वहां ही विवाह होगा! अभी तक कन्या लाई नहीं गई थी, सब प्रकार की तैयारियां हो रही थीं अनेक प्रकार के मिष्टान बन रहे थे। नई दासी (राजकन्या) एक टोकरी में शाक लेकर पाकशाला में जा रही थी कि इतने में एक मनुष्य ने अचानक आकर उसका हाथ पकड़ लिया! जब दासी ने उसकी तरफ

देखा तो महद् आश्चर्य ! वह बुहारी समान मूछों वाला राजकुमार था। उसके हाथ का स्पर्श होने से राजकन्या के रोंगटे खड़े हो आये, मुख में से एक शब्द भी न निकला। हाथ की टोकरी छूट कर पृथ्वी पर गिर पड़ी ! राजमहल के सब दास दासी शब्द सुन कर दौड़े आये, राजकुमारी स्तब्ध हो गई, राजा ने कहा "हे राजकुमारी ! बुंहारी समान मूंछों वाला कह कर तूने स्वयंवर मे जिसका अपमान किया था, वह ही मैं हूँ। क्या अब तुझे मेरे साथ विवाह करने की इच्छा है ? राजकन्या चुपचाप खड़ी रही। फिर राजकुमार ने कहा, तेरा भिक्षुक पति भी मैं ही हूँ। तेरे फलो को घोड़े के पैर से कुचलने वाला घोड़े सवार मैं ही हूँ। तू बहुत गर्विष्ठ थी। तेरा गर्व चूर्ण करने के लिये, तेरे पिता से मिल कर मैंने सब व्यवस्था की थी। उसके कहने से ही मैं भिक्षुक बना था। क्यों मैं तुझसे बढ़ कर निकला या नहीं ? मुझे अपमान देने के बदले तुझे मैंने बाजार मे फल बेचने भिजवाया था, फिर दासी बनाई थी। राजकन्या स्वामी के पैरों पर गिर पड़ी और बोली, स्वामिन् ! स्त्री चाहे जितना गर्व करे, उसका गर्व पुरुष के सामने नहीं चल सक्ता ! दोनो का विवाह हुआ। पश्चात् दोनों आनन्द पूर्वक रहने लगे।

इस दृष्टात से समझ में आगया होगा कि राजकुमार और भिक्षुक भिन्न न थे। राजकुमार शुद्ध और भिक्षुक अशुद्ध नहीं था। भिक्षुक की अवस्था में भी वह राजकुमार ही था जो उसे पहचानते थे वे भिक्षुक की हालत में भी उसे राजकुमार ही सम

झते थे। न जानने वाले ही भिक्षुक समझते थे। इसी प्रकार राजकन्या और भिक्षुक पत्नी भिन्न २ न थीं। राजकन्या बदल के-अशुद्ध होके भिक्षुक पत्नी नहीं बनी थी। जब उसके अभिमान ने उसे कंगाल बनाया तब राजकुमार को भी उसी के समान कंगाल बनना पड़ा परन्तु वास्तव में कंगाल नहीं बना था। ज्ञानियों की दृष्टि राजकुमार के समान होती है और अज्ञानियों की दृष्टि राजकन्या के समान अहंकार से होती है। वस्तु रूप शुद्ध और अशुद्ध नहीं है। शुद्ध आत्मा राजकुमार की अवस्था और जीव भिक्षुक की अवस्था देखने मात्र है दोनों मे भेद या शुद्धि अशुद्धि कुछ नहीं है।

तू ने पूछा है कि जीव को अशुद्ध किसने किया, उसका उत्तर हो चुका कि अशुद्ध हुआ ही नहीं है। जो तू अपनी बुद्धि के अनुसार अशुद्ध माने तो सुनः—राजकन्या की समान उसको अशुद्ध करने वाला अहंकार ही है। यदि तू कहे कि अहंकार माया का परिणाम है और माया जड़ है इसलिये उसका कार्य अहंकार भी जड़ है वह चैतन्य आत्मा को अशुद्ध नहीं कर सक्ता, इसका उत्तर यह हैः—आत्मा वास्तविक अशुद्ध नहीं होता, अशुद्ध समान दीखता है यह ही माया है और माया के जितने कार्य होते हैं वे अधिष्ठान संयुक्त होते हैं। जैसे एक मिट्टी में पड़ा हुआ हीरे का टुकड़ा निकालने पर उसमें मिट्टी लगी हुई दिखाई देती है—अशुद्ध हुआ दीखता है परन्तु हीरे में अशुद्धता घुस नहीं जाती वह तो अपनी स्थिति में शुद्ध ही रहता है इसी प्रकार आत्मा

कभी अशुद्ध नहीं होता। जैसे मिट्टी लगने से हीरे की चमक न्यून हो जाती है और मिट्टी निकाल देने से हीरा शुद्ध होता है इसी प्रकार अहंकार के भाव को हटाना ही शुद्ध करना है! जिस प्रकार न खोई हुई वस्तु का खोगई है इस प्रकार भान होने लगे तब वस्तु को ढूंढने लगते हैं और जब कोई बता देता है तब कहते हैं कि मिल गई इसी प्रकार शुद्ध को अशुद्ध मान लिया है, उस अशुद्धता में शुद्ध जान लेना ही शुद्ध होना है।

माया और चैतन्य दो समझ कर तू ऐसा प्रश्न करता है इस प्रकार दो वस्तु एक काल में हैं नहीं तो माया आत्मा को किस प्रकार अशुद्ध करे? माया आत्मा को अशुद्ध नहीं करती और उसमें अशुद्ध करने की शक्ति है भी नहीं, जो अशुद्ध हुआ मालूम होता है वह माया का भाव है, माया से माया का भाव दीखता है। वस्तु स्वरूप आत्मा है और भूल स्वरूप माया है। भूल में यह शक्ति है कि असभवित को संभवित कर के दिखा देती है एक को अनेक करके दिखा देती है, हैं को नहीं और नहीं को है कर देती है! जैसे जादूगर अपने हाथ मे रुपया लेकर रुपये की मिट्टी बना कर दिखला देता है! जो तमाशा देखने वाले जादूगर की दृष्टि में दब जाते हैं उन सबको मिट्टी ही दीखती है। वास्तविक में रुपया अशुद्ध हो कर मिट्टी नहीं बना है। जब मिट्टी दीखती है तब, और जब रुपया दीखता है तब भी रुपया ही है ऐसे ही आत्मा को समझ। चाहे माया की दृष्टि सहित हो चाहे माया की दृष्टिर हित हो दोनो अवस्थाओं में वह जैसे का तैसा अपने स्वरूप में रहता है।

तू ने कहा था कि आत्मा स्वय अशुद्ध नहीं होता यह ठीक ही है। वह कभी अशुद्ध नही होता। मिथ्या आरोप से माया के भाव वाला होकर माया के कार्य को देखता है, इसमें तत्त्व की हानि कुछ भी नही होती।

और तू ने कहा है कि आत्मा को अशुद्ध करने वाला दूसरा नही है। यह कहना यदि अद्वैत लक्ष से हो तो ठीक ही है और यदि तेरे कहने का भाव यह हो कि माया के सिवाय उसको अशुद्ध करने वाला और कोई नहीं है तो यह ठीक नहीं है। माया कोई वस्तु नही है कल्पना के वृक्ष पर लगे हुए आम खा कर जाग्रत् मे किसी को अजीर्ण नहीं होता। यह तेरा प्रश्न माया का ठीक २ स्वरूप समझने से ही चूर्ण होजाता है। जैसे माया मे रह कर आत्मा का समझना अशक्य है ऐसे ही माया में रह कर माया को समझना भी अशक्य है क्योंकि माया भ्रम है भ्रम मे रह कर भ्रम का अत कभी नहीं आता माया में रह कर शकाओ की निवृत्ति न होगी। उत्तर के सहारे समझ कर वर्तना चाहिये, ऐसा किये विना उत्तर का फल नही होता। माया और आत्मा का तर्कों से कोई निर्णय नही कर सका। क्योंकि दोनो ही निर्णय करने वाली बुद्धि से परे हैं। उनके निर्णय करने के लिये शास्त्रानुसार अधिकारी हो कर श्रवण, मननादि में प्रवर्त होना चाहिये।

अन्तिम सारांश—आत्मा को शुद्ध और जीव को अशुद्ध जो कहा जाता है, वह मुमुक्षुओं के उपदेश के निमित्त है। वस्तुत. आत्मा और जीव भिन्न नहीं हैं इसलिये शुद्धाशुद्ध भी

नहीं है। वस्तु अनिर्वचनीय है, उसका लक्ष पहुंचाने के लिये जो जो शब्द और युक्तियां वर्णन की हैं वे सकेत (इशारे) स्वरूप हैं, व्यर्थ नही हैं इसलिये लक्ष के पश्चात् उन शब्दों और युक्तियों का त्याग होता है। आत्मा को अशुद्ध किसी ने नहीं किया है। उसमें जो अशुद्धता दीखती है वह माया के भाव मे फंसे हुओं को दीखती है। माया आत्मा को अशुद्ध नही कर सकी। न आत्मा स्वय अशुद्ध होता है। वस्तु रूप एक होने से दूसरा कोई अशुद्ध करने वाला नही है।

२३ ईश्वर की समानता ।

प्रश्नः—ज्ञान और अज्ञान ईश्वर कृत हैं। ईश्वर ने किसी को ज्ञानी किसो को अज्ञानो वनाया तो ईश्वर पक्षपाती हुआ ऐसा क्यो ?

उत्तरः—ईश्वर का स्वरूप मैं प्रथम समझा चुका हूं अभी तेरी समझ में नही आया यह तेरा प्रश्न वेसमझी का है, इसका उत्तर इकीसवे प्रश्न में दे चुका हू। यदि तू ईश्वर का स्वरूप थोडा सा भी समझ जाता तो उस पर पक्षपात का दोष न लगाता। ईश्वर में पक्षपात नही है, पक्षपात तो तुझ ही में भरा हुआ है। अपना स्वरूप छोड़ कर माया से प्रेम करता है यह ही तेरा पक्षपात है। ज्ञान और अज्ञान ईश्वर करता है ऐसा तू कहता है। यह कौन सा ज्ञान अज्ञान है ? क्या पदार्थों के ज्ञान अज्ञान को कहता है अथवा किसी और के ? जो पदार्थों के ज्ञान् अज्ञान को कहता है तो यह बुद्धि के सहारे बुद्धि का है। बुद्धि और पदार्थ को दोनों की उपस्थित मे पदार्थ का ज्ञान होता है और पदार्थ होते हुए बुद्धि के अभाव में पदार्थ ज्ञान नहीं होता। जब बुद्धि पदार्थ को जानती है तव उसका ज्ञान और जब नही जानती तव अज्ञान कहा जाता है बुद्धि भ्रष्ट होने पर जाना हुआ ज्ञान भी अज्ञान होजाता है। इस प्रकार पदार्थो का ज्ञान और अज्ञान बुद्धि से होता है तो ईश्वरकृत कैसे है ? ईश्वर एक है इसलिये यदि ईश्वर कृत ज्ञान अज्ञान हो तो एक ही प्रकार का होना चाहिये। एक मनुष्य मे या तो ज्ञान ही

हो अथवा अज्ञान, जिस को ज्ञान हो उसको अज्ञान न हो और जिसको अज्ञान हो उसको ज्ञान न हो परन्तु ऐसा देखने मे नहीं आता इसलिये ज्ञान अज्ञान ईश्वरकृत नहीं है। आज जिसका अज्ञान होता है कल उसी का ज्ञान हो जाता है और कल जिसका ज्ञान था आज उसी का अज्ञान हो जाता है। जाग्रत पदार्थों का ज्ञान जाग्रत में होता है। उन पदार्थों के होने पर भी सुषुप्ति में उनका ज्ञान नही होता यदि अहेतुक ज्ञान अज्ञान का बुद्धि में प्रवेश कराता हो तो ईश्वर पक्षपाती ठहरे किन्तु ऐसा नहीं है। ज्ञान अज्ञान सब नियम बद्ध है। ईश्वर ने ज्ञान अज्ञान जीवों में बांट दिया है यदि थोड़ी देर के लिये ऐसा मान भी लिया जाय तो क्या वह एक बार ही बांट कर बैठ रहता है? या बांटे हुए की बदली भी किया करता है? जो बारबार बदली करने वाला कहो तो उसे परिश्रम करते २ अवकाश ही नहीं मिलेगा। यदि अपने किये हुए में भूल देख कर बदली करता हो तो उसमें ऐश्वर्य ही क्या हुआ? जो तेरा ऐसा ईश्वर ही है तो हम को अमान्य है। जो ऐसा कहे कि एक ही बार ज्ञान और अज्ञान को बांटता है तब मनुष्य परतन्त्र होने से उसमे घटा बढ़ी नही सक्ता। जगत् मे ऐसा देखने में नही आता। मनुष्य मायिक पदार्थों के अज्ञान में ज्ञानवान् होते हैं तब एक बार बांटने वाला ईश्वर किस प्रकार हो सक्ता है? यदि यह कहो कि बांटता तो एक ही बार है परन्तु जीव उसमें बदली कर सक्ता है तो ऐसा ईश्वर मनुष्य से भी गया बीता हुआ! ईश्वर ने बांटा और मनुष्य ने अन्तर कर दिया।

शास्त्र जिसको ज्ञान कहता है, वह आत्मज्ञान—ब्रह्मज्ञान-तत्त्वज्ञान है और उस प्रकार का ज्ञान न होना अज्ञान है।

ये दोनों प्रकार के ज्ञान और अज्ञान ईश्वरकृत हैं जो ऐसा कहे तो सुन:--ऐसा ज्ञान देकर ईश्वर ने किसी को उत्पन्न नही किया है। ऐसे ज्ञान वाले का जन्म ही नही होसकता इसलिये तेरे कहे अनुसार कोई ज्ञानी और कोई अज्ञानी नही जन्मता है। जितने जन्मते हैं सब अज्ञानी होते हैं और पुरुपार्थ करके ज्ञानी हो जाते हैं। ऐसा ज्ञान और अज्ञान भी बुद्धि से ही है। प्रपच के भाव सहित बुद्धि अज्ञान है और आत्म भाव सहित निर्मल बुद्धि ज्ञान कहा जाता है अनादि अविद्या में पड़े हुए होने से सब जीव अज्ञानी हैं। ऐसे अज्ञानी जीवो को ईश्वर बनावे ही क्या! वे तो अज्ञान का ही स्वरूप हैं। जो पूर्ण भक्त हुए हैं और जो 'इष्ट की कृपा से हमें ज्ञान प्राप्त हुआ है' ऐसा कहते हैं, ज्ञान प्राप्त होना भी उनका पूर्ण भाव रूप पुरुपार्थ ही है।

ज्ञान और अज्ञान माया मे है। ईश्वर स्वरूप से ब्रह्म है। इसलिये माया के ज्ञान अज्ञान के भाव का कर्ता ईश्वर नही है मुमुक्षुओ को समझाने के लिये शुद्ध माया सहित ईश्वर कहा है वस्तुत: वह माया वाला नही है। ईश्वर अकर्ता होने से किसी का कर्ता ही नही है तो ज्ञान अज्ञान का कर्ता कैसे हो सक्ता है? जीवो के समष्टि भाव के सिवाय ईश्वर का और कोई स्वरूप नही है। जीव मे ही जीवत्व और ईश्वरत्व है। स्वतन्त्रता से ईश्वर बनाने वाला और जीव परतन्त्रता से बनने वाला नही है। स्वतन्त्रता जीव में ही है वह अपनी स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करके परतन्त्र बन जाता है जीव कर्ता भोक्ता है।

ईश्वर समष्टि स्वरूप होने से जीवो के किये हुए कर्मों का भोग समष्टि से बलिष्ट होकर प्रतिबिम्बित होता है इसलिये ईश्वर भोगो का देने वाला कहा जाता है। जीवो के कर्म का फल-भोग देना जीवो के कर्मों की अपेक्षा रहित नही है ! ईश्वर की दृष्टि मे ईश्वर के सिवाय और कोई नही है फिर यह पक्षपात और अपक्षपात किस में करे ? इसलिये सिद्ध है कि ज्ञान अज्ञान ईश्वरकृत नही है। वह अपनी तरफ से किसी को बिगाड़ता अथवा सुधारता नहीं है और द्वैत का अभाव होने से पक्षपात भी उसमे नही है। ऐसा न होते हुए भी तेरा पूछना है कि ऐसा क्यों ? इसका उत्तर यह है कि तेरे अज्ञान से ऐसा होता है।

प्राचीन काल मे एक ब्राह्मण था जो नीति, रीति और शास्त्र धन सम्पन्न था और समयानुसार अपना व्यवहार उच्च आदर्श रूप चलाता था। एक दिन उसने एक मनुष्य के साथ भग पी। उस दिन से भग के नशे और स्वाद पर उसका प्रेम बढ़ता गया और प्रति दिन भग पीने लगा। दिन प्रतिदिन भग की मात्रा बढ़ती गई थोड़े दिन पीछे विषैली बूटियां भी उसमें डालने लगा और इस प्रकार नित्य नवरत्नी भग छान कर पीने लगा। इतना अच्छा था कि वह आप ही छान कर पिया करता था, किसी दूसरे को अपने साथ न पिलाता। भग पीते २ उसकी पूर्व की नीति, रीति और कुशलता में अन्तर पड़ता गया, पढ़े हुए शास्त्र पर काई चढ़ गई। एक दिन वह जगल से विषैली बूटिया लाया उनमें एक ऐसी बूटी आगई जो बुद्धि-स्मृति को

प्रवल प्रभाव से नाश करने वाली थी। वह भंग के साथ पिस गई और पी ली गई। उस दिन काली चौदश का दिन था, भग पीते ही ब्राह्मण घर, ग्राम, जाति कुटुम्ब और मित्रों को भूल गया और जैसे तुरन्त के जन्मे हुए वालक को अपने पराये आदि का कुछ ज्ञान नहीं होता इसी प्रकार वह हो गया। शरीर तो मनुष्य के समान बड़ा ही रहा परन्तु बुद्धि छोटे बच्चो के के समान होगई। तव से उसका यह हाल होगया कि जहां पड़ा है वहां ही पडा रहे, टट्टी, पेशाब, खाने पीने तक का भान न रहे। जव कभी बहुत भूख लगे तो रोने लगे। बच्चे के समान रोना भी न आवे। अपने हाथ से खाने को न खाय और कोई खिलादे तो चवावे नही। उस की ऐसी अवस्था देखकर कुटुम्बी उसे दूध पिलाया करे। सब उसको पागल जानते थे परन्तु इस प्रकार का पागल भी कभी किसी के देखने में नहीं आया था। सब आश्चर्य करते थे कि क्या हो गया। ज्योतिपियों को ग्रह दिखलाये गये। उन्होंने ग्रह दोष वताया, उन के कहे अनुसार दान हवन आदिक क्रियायें की गई। सयानों ने ऊपर का आवेश बताया, वैद्यों ने अनेक प्रकार के रोगों की कल्पना की। अनेक प्रकार के तंत्र, मंत्र औपधि जो जिस ने वताया किया गया परन्तु किसी से कुछ लाभ न हुआ। प्रथम तो वह छोटे बच्चे की समान किसी की तरफ दृष्टि भर के नही देखता था अब वह सब के सामने देखने लगा और आदमियों को पहचानने लगा और जब लोग उसे अम्मा, बावा, नाना, भाई कहना सिखाने लगे तो वह तुतला २ कर बोलने लगा और बच्चे के समान सीखने लगा। उसे कुछ

भी याद नहीं रहा था, उसी शरीर में वह बाल्यावस्था का दूसरी वार अनुभव करने लगा, पढ़ना भी फिर आरम्भ किया। बच्चे मे और उस में इतना ही अन्तर था कि बच्चा देर में सीखता है और वह जल्दी २ सीखने लगा। दश मास में आठ वर्ष के लड़के के समान शिक्षा पा चुका। सब उसको पागल समझते थे किन्तु वह अपने को पागल नहीं समझता था। भला, पागल अपने को पागल समझ ले तो पागल ही क्यो कहलावे ? दश मास पीछे एक निपुण वैद्य आया, उसने उसका निदान किया। जिस प्रकार का विष ब्राह्मण को चढ़ गया था, वैद्य उसे जान गया और उसकी चिकित्सा के लिये उसने उसे एक अद्वैत गोली खिलाई। ब्राह्मण दोपहरी मे गोली खाकर सो गया और वैद्य अपने स्थान पर चला गया। थोड़ी देर पीछे ब्राह्मण जागकर अपने पुराने शब्द से अपनी बहन को पुकार कर कहने लगा "बहन! क्या बजा है ?" उसकी बहन बहुत चतुर थी वह भाई को पूर्व के समान बोलता हुआ देख कर बहुत प्रसन्न हुई और कहने लगी "भाई, दो बजे होंगे।" ब्राह्मण चौंक कर कहने लगा "हें! यह क्या बात है ? मै तीन बजे सोया था! दो बजे कैसे उठ बैठा ?" बहन ने कहा "भाई किस दिन सोया था ?" ब्राह्मण ने कहा 'आज" बहिन बोली 'आज क्या दिन है ?" ब्राह्मण ने कहा "आज काली चौदश है।" बहिन ने कहा "भाई तेरे हिसाब से तो तुझे सोते हुए आज पूरे दश मास हुए।" ब्राह्मण आश्चर्य करने लगा! बहिन ने जाकर सब घर वालो को बधाई दी कि आज भाई का पागलपन चला गया है!

यह सुन कर सब को बड़ी खुशी हुई। उसके मित्रादिक उस से मिलने को आये। जब कोई ब्राह्मण से कहता कि तू ऐसा होगया था तो वह विश्वास न करता, अन्त में सब के कहने से उसने मान लिया और कहने लगा "मुझे ऐसा होने की कुछ भी स्मृति नहीं है। मैं तो सोया और उठा, इतना ही जानता हूँ! दश मास मेरे बीच मे ही गुम हैं।"

ब्राह्मण अपने भाव मे पागल नहीं हुआ था, जगत् के भाव में वह पागल था। ज्ञान और अज्ञान इसी प्रकार का है। आत्मा मे ज्ञान और अज्ञान कहां है? वह तो एक रस एक रूप है।

सिद्धान्तः—ब्राह्मण आत्मा है, माया का संग दोष रूप भंग पीने लगा था। तीन गुण, पंचमहाभूत और चिदाभास नवरत्नों ने मिल कर उसको भंग किया-अल्पज्ञ-बालक बना डाला। जिस वैद्य ने अद्वैत गोली दी थी वह सद्गुरु था उस गोली ने भग की भ्रमित बुद्धि को भगा दिया और उसको पूर्व की स्थिति में स्थित किया। ब्राह्मण को जो अपना बोध हुआ वह त्रिपुटी में नही हुआ क्योकि दूसरे के ज्ञान में त्रिपुटी होती है अपने ज्ञान मे त्रिपुटी नहीं होती। वह अज्ञान दूसरे का किया नहीं था, यद्यपि भंग से था परन्तु जड़ भंग कर्ता भाव वाली नहीं है। ब्राह्मण ने भंग द्वारा अपना अज्ञान आप किया और गुरु द्वारा अपना ज्ञान भी आप ही प्राप्त किया।

भौतिक पदार्थों के ज्ञान के समान स्वरूप का ज्ञान नहीं है किन्तु अत्यंत विलक्षण है। प्रपंच का ज्ञान बुद्धि से होता है,

स्वरूप ज्ञान में बुद्धि आदिक सब प्रपंच का बाध होता है प्रपंच ज्ञान, प्रमाण, विपर्य, विकल्प, निद्रा और स्मृतिजन्य है, स्वरूप ज्ञान स्वरूप जन्य है। प्रत्यक्षादि प्रमाण से होनेवाला ज्ञान प्रमाणजन्य है, कुछ का कुछ विपर्य, शब्द के अर्थ के समान वस्तु का न होना विकल्प, ज्ञानाभाव सुपुप्ति-निद्रा और याद रहना स्मृति है। ये सब सत्, रज और तमोगुण में होते हैं इसलिये प्रपंच का ज्ञान गुण युक्त है इससे विरुद्ध स्वरूप का ज्ञान गुणातीत है। प्रपंच अध्यस्त-भ्रांति में है और स्वरूप अधिष्ठान वस्तु है। अज्ञान से विरुद्ध विलक्षण भाव के समझाने के लिये स्वरूप का नाम ज्ञान कहा है, वस्तुतः उसे ज्ञान कहना भी ठीक नहीं है क्योकि ज्ञान तो दूसरे का होता है और स्वरूप वस्तु स्वरूप है, उसका ज्ञान, ज्ञान अज्ञान दोनों से रहित है। ज्ञान और अज्ञान दोनों की जिससे सिद्धि होती है वह उन दोनों से विलक्षण है। कोई कोई उसे आश्चर्य समान देखते हैं क्योकि न दीखने वाली वस्तु का देखना महान् आश्चर्य है, देखने वाले आश्चर्य स्वरूप होकर ही उसे देखते हैं। वह आश्चर्य समान कहा और सुना जाता है क्योंकि देखने वाला कहने और सुनने वाले से भिन्न बोध स्वरूप है और मात्र देखने, सुनने और कहने से कोई उसे जान नहीं सक्ता, किंतु वह आप ही अपने को जानता है। इस प्रकार तत्त्व ज्ञान अत्यन्त गूढ़ है और निष्पाप, संस्कारियों को प्रपंचासक्ति निवृत्त होने के पीछे जानने में आता है।

एक ग्राम के पास के एक जंगल में भेड़ियों के साथ एक आठ वर्ष का लड़का लोगों ने देखा उसे देखकर उन्होंने पकड़ना

चाहा। कई बार उसके पकड़ने का यत्न किया परन्तु वह पकड़ने में न आया। एक बार बहुत से मनुष्यों ने एकत्र होकर भेड़ियों की टोली के पास भारी कुलाहल मचाया। सब भेड़िये प्राण लेकर भागे, लड़का भी भागने लगा परंतु भेड़ियो के समान उससे भागा न गया इसलिये टोली से पीछे रह गया, लोगों ने उसे पकड़ लिया। वह लड़का हाथों और पैरों दोनों के बल चलता था। जब लोगों ने उसे पकड़ा तो उसने बहुत जोर किया और कई मनुष्यों को काट भी खाया। लोगों ने उसको बांध कर पास वाले शहर के अनाथालय में भेज दिया। वहां तीन दिन तक उसने कुछ खाया पीया नहीं, चौथे दिन पशु की समान मुख से कुछ खाया और इसी प्रकार पानी पिया। जंगल में वह कच्चा मास खाता रहा था, दाल रोटी उसने कभी देखी न थी इसलिये अच्छी नहीं लगती थी परन्तु क्षुधा के कारण खाने लगा। कई दिन पीछे उसे खाना सिखाया गया और अन्य लड़कों को हाथ से खाता हुआ देखकर वह भी हाथ से खाने लगा। उसको बोलना नही आता था, भेड़ियो के समान चिल्लाता था। तीन वर्ष तक वहां रहने से कुछ बोलने और समझने लगा। वह किसका लड़का है और भेड़ियों के साथ किस प्रकार पड़ गया इसका कुछ पता नहीं चलता था। बहुत दिन होजाने से उसके माता पिता भी उसको भूल गये थे। थोड़े दिन तक तो वह जंगल मे भागना चाहता रहा परन्तु जब वह वहां के मनुष्यों से हिल गया तब प्रसन्नता से रहने लगा।

जिस प्रकार वह लड़का अपने को भेड़िया मानता था और भेड़ियों को ही अपना कुटुम्ब और माता पिता, भेड़ियों का भोजन अपना भोजन समझता था, भेड़िया न होकर भी अपने को भेड़िया मानता था यह ही उसका अज्ञान था। जब उसने अपने को मनुष्य जाना तो यह उसका जानना ज्ञान हुआ। जिस प्रकार ज्ञान मे अथवा अज्ञान मे कोई वस्तु उसके शरीर मे आई अथवा चली न गई इसी प्रकार तू आत्म ज्ञान और अज्ञान को समझ।

एक वार एक पथिक मार्ग में जारहा था। उसके सामने वह लड़का टिकटिकी बांधकर देखने लगा। पथिक भी आंतरिक प्रेम से लड़के की तरफ देखने लगा। वहां का व्यवस्थापक चतुर था उसने इन दोनों की चेष्टा देखी और पथिक को अपने पास बुला कर लड़के की और उसकी आकृति मिलाकर पथिक से कहा "तुम कौन हो, कहां से आये हो, कहां जाओगे और क्या काम करते हो?" पथिक ने अपना सब वृत्तात इस प्रकार कहा.—मैं सूनापुर नगर का एक वैश्य हूं, मेरे यहां गल्ले का धंधा होता है, रुपये पैसे की तरफ से मैं सुखी हूँ, मेरे दो लड़के और एक लड़की है, तीनों का विवाह कर दिया है, कई बच्चे हो हो कर मर भी चुके हैं। दोनो लड़के हुश्यार हैं, व्यापार का काम करते हैं। थोड़े दिन हुए जब मेरी स्त्री मरी तो मैं बहुत शोकातुर हुआ, पश्चात् मैं गया जी गया, वहां से काशी, अयोध्या, प्रयाग होता हुआ आ रहा हूँ, और अब मथुरा को जा रहा हूं। व्यवस्थापक

ने कहा, क्या आप कोई बारह वर्ष हुए तब बाल बच्चों सहित इस रस्ते हो कर आये थे ? पथिक ने कहा हां ! बारह वर्ष हुए होंगे एक बार कुटुम्ब सहित मथुरा जाने को इस रस्ते होकर आया था। व्यवस्थापक ने कहा, इस स्थान के पास क्या तुम्हारा कोई छोटा लड़का गुम हो गया था ? पथिकने कहा; हां! यह बात इस प्रकार है.—यहां से कोई दश मील पर एक टूटे झोंपड़े में हम लोग टिके थे, रात्रि में कोई जानवर आता हुआ मालूम हुआ जिससे कुलाहल मच गया और हम सब घबरा गये। पीछे देखा तो आठ मास का मेरा छोटा लड़का जो अपनी मां के पास सो रहा था, न मिला। पांच दिन तक वहां रह कर हमने उसकी बहुत खोज की परन्तु पता न चला, किसी जानवर ने मार डाला होगा, ऐसा समझ कर हम मथुरा चले गये। व्यवस्थापक ने लड़केको पास बुलाकर पथिकसे कहा "यह तुम्हारा लड़का है।" लड़के से "यह तेरा पिता है" लड़के ने कहा "मैं कैसे जानूं कि यह मेरा पिता है ?" इसी प्रकार पथिक ने कहा "यह मेरा लड़का है, मैं किस प्रकार जानूं!" व्यवस्थापक ने जिस प्रकार लड़का मिला था, सब वृतान्त कह सुनाया और कहा, मैं अनुमान करता हूं कि तुम्हारे लड़के को भेड़िया उठा लेगया था। उसने उसे मारा नहीं किंतु पाल लिया। अन्त मे लडका पकड़ा गया और चार साल से मेरे पास है, पहले तो यह पूरा पशु ही था अब थोड़े दिनोंसे कुछ २ मनुष्यकी सी बुद्धि प्राप्त हुई है। इस लड़केके दहने पैर में घोंटू के नीचे मांस की एक गुठली है।। मैं अनुमान

करता हूँ कि तुम्हारे पैर में भी ऐसी ही गुठली होगी। पथिक देखने लगा तो इसी प्रकार गुठली मिल गई। व्यवस्थापक ने कहा, तुम्हारी और उसकी आकृति एक मिलती है, तुम्हारा और उसका रक्त एक है, इसलिये विना जाने पहचाने स्वाभाविक उस की टिकटिकी तुम्हारी तरफ लग गई और तुम में भी प्रेम उत्पन्न हो आया। जितना समय लड़केके गुम होनेका वताया उतनी ही उस की उमर है। बोलिये अव ऐसा निश्चय होता है या नहीं कि यह लड़का आप ही का है? पथिक को निश्चय होगया, उसकी आंखों मे आंसू भर आये और उसने उससे भेंट करना चाहा परन्तु लड़का उसके पास न गया क्योंकि उसमे विशेष बुद्धि न थी इसलिये वह समझ नही सक्ता था। पथिक वहां पन्द्रह दिन तक रहा, लडके को अच्छे २ पदार्थ खिलाने लगा और अच्छे २ वस्त्र पहनाने लगा। जव लड़का उससे हिल गया तव वह उसे लेकर मथुरा होता हुआ घर पहुँचा। घर पहुँच कर उसने एक भारी रकम अनाथालय को भेजी और व्यवस्थापक का वहुत ही आभार माना।

ईश्वर ने उस लड़के को भेड़ियों का संग करके भेड़िये की आकृतिका नहीं वनाया था। उस लड़केके भेड़ियेरूप कर्मने भेड़ियों का संग और भेड़िया होने का ज्ञान कराया था। आत्मभाव से छूटे हुए जीव रूप भेड़ियों को सद्गुरु भक्ति द्वारा एकता सिद्ध करके ज्ञान प्राप्त कराता है।

पक्षपात उसमें होता है जो दोनों पक्षों को देख कर एक को अपना और दूसरे को पराया मानता हो। अपनी हानि न होने

पावे इसलिये अपने से भिन्न भाव वाले पर द्वेष होता है पृथकता विना राग द्वेष नही होता और राग द्वेष विना पक्षपात नही होता दूसरे के पक्ष-भाव-सिद्धान्त को तोड़ देना पक्षपात है जिसको सब अपना आप है उसे राग द्वेष नहीं होता। ईश्वर एक और रागद्वेष रहित है इसलिये उसमे पक्षपात नही है। जैसे एक मनुष्य को अपने शरीर के अवयवो मे राग द्वेष नहीं होता। एक अग मलिन हो और दूसरा अंग शुद्ध हो तो कोई मलिन अंग को काट नहीं डालता अथवा एक को दूसरे अंग से नीचा समझ कर उस में पक्षपात नहीं करता। इस प्रकार ईश्वर को समझ।

अतिम सारांशः—जीवो के समझने के लिये जीवो का समष्टि भाव ईश्वर है। वस्तुत' ईश्वर ब्रह्म है। ईश्वर की दृष्टि में व्यष्टि और समष्टि नहीं है। वह आप अपने में स्थित है। जीवो के कर्म उसके द्वारा उदय और अस्त को प्राप्त होते हैं। ईश्वर मे द्वैत भाव नहीं है वह अपने भाव से किसी को सुखी, दुखी, ज्ञानी अज्ञानी नहीं बनाता। अपुरुषार्थ—अज्ञान दुःख का हेतु है, पुरुषार्थ—ज्ञान सुख का हेतु है। जिसमें अपना पराया भेद नहीं है उसमें पक्षपात नहीं हो सक्ता, ईश्वर न तो पक्षपाती है और न किसी को ज्ञान अज्ञान का देने वाला है।

२४ ज्ञानी जन्म रहित कैसे ?

प्रश्न -विना कर्म कोई शरीर धारी नहीं रह सकता, कर्म फल दिये विना नहीं रहता, ज्ञानी भी कर्म करता है तो कर्म का फल भोगने के लिये उसको जन्म धारण करना पड़ेगा, जन्म धारण कर के कर्म करेगा तो ज्ञानी जन्म रहित कैसे हो सक्ता है ?

उत्तर:-विना कर्म कोई शरीरधारी नहीं रह सक्ता, यह तेरा कहना सत्य है परन्तु कर्म किस को कहते है, सामान्य कर्म क्या है, विशेष कर्म क्या है, और कौन से कर्म किस प्रकार से फल का हेतु है इत्यादिक समझना चाहिये। कर्म क्रिया को कहते हैं, क्रिया मे फल देने की शक्ति नहीं है फिर उससे शरीर की उत्पत्ति किस प्रकार हो सकती है ? अज्ञान संयुक्त होने वाले कर्मों में जो अज्ञान का भाव है वह ही कर्मों के फल का देने वाला है, अज्ञान में जो चिदाभास की शक्ति होती है उससे अज्ञान फल का हेतु होता है इसलिये सामान्यता से ऐसा कहा जाता है कि कर्म फल का देने वाला है। यदि कर्म करने में अज्ञान न हो तो अज्ञान रहित कर्म फल नहीं देते।

अब यह शंका होती है कि क्या कोई कर्म अज्ञान रहित भी हो सक्ता है। इस शंका का समाधान सुन:-अज्ञान रहित कर्म हो सक्ते हैं। ज्ञान होने के पश्चात् ज्ञानी जितने कर्म करते हैं वे सब अज्ञान रहित होते हैं। ज्ञानी में अज्ञान होना असंभव है, फिर ऐसा कैसे कहा जाय कि उससे अज्ञान से कर्म होते हैं ?

श्रीमद्भगवद्गीतामें जिन कर्मों को अकर्म कहा है वे इसी प्रकार के कर्म हैं। अकर्म शब्द का अर्थ कुकर्म नहीं है किंतु जिस कर्म का पुण्य या पाप भौतिक फल नहीं होता उस प्रकार के कर्म को अकर्म शब्द से कहा है। योग शास्त्र में इसी प्रकार के कर्मों को अशुक्लाकृष्ण (पुण्य पाप रहित) कर्म योगियों का बताया है। उसका अर्थ भी गीता के अकर्म के समान है। जो कर्म अभ्यास में आ जाते हैं, जो विशेष लक्ष्य बिना होते हैं, जो अत्यन्त सामान्यता से होते हैं ऐसे कर्मों में किसी प्रकार का विशेष भाव नहीं होता। राग द्वेष-आसक्ति रहित कर्म अंतःकरण में संस्कार उत्पन्न नहीं करते। ऐसे अनेक तुच्छ कर्मों का विशेष फल नहीं होता। भाव रहित कर्मों का फल नहीं होता। ज्ञानियों के सभी कर्मों में ज्ञान के प्रभाव से भाव रहितता होती है या यों कहो कि ज्ञानी के कर्म सामान्य भाव से होते हैं और अत करणमें संस्कार उत्पन्न नहीं करते। जिन कर्मों के संस्कार नहीं पड़ते, उन कर्मों का फल भी नहीं होता। फल वाले कर्म इस प्रकार हैं:-जो कार्य अहंभाव और ममत्व से होता है, उसमें राग द्वेष होता है, वह कामना-आसक्ति सहित सामान्य स्थिति को उल्लघन करके विशेष भाव वाला होता है। उस विशेष भाव से अंतःकरण में धक्का लगता है और संस्कार रूप आकृतियों को खेंच लेता है। जिस प्रकार ग्रामोफोन शब्द की आकृति को अपने में भर लेता है इसी प्रकार अंत.करण अज्ञान के कारण बाहर किये हुए कर्मों के भाव को अपने में भर लेता है, उसी अज्ञान से फिर

कर्म फल का भोग होता है। इनके सिवाय अन्य प्रकार के कर्म फल नहीं दे सक्ते। ज्ञानी का अंत.करण कर्म के भाव को नहीं पकड़ता इसलिये उसको कर्मों का फल भोग उत्पन्न नहीं होता। अज्ञान भाव सहित किये हुए पूर्व के कर्म जव फल देने के योग्य हो जाते हैं और वाहर निकल आते हैं उनको प्रारब्ध कहते हैं। प्रारब्ध पूर्व कर्मों के भोग भोगने के निमित्त होता है। उसका शरीर से सबंध है अर्थात् स्थूल शरीर की उत्पत्ति पूर्व किये हुए कर्मों के भाव से है। सब के शरीरो की उत्पत्ति इसी प्रकार होती है। शरीर से दो कार्य होते हैं। एक तो जिस भोग निमित्त वह उत्पन्न हुआ है उसकी प्राप्ति होती है और अज्ञानसे उस भोग में आसक्ति होती है और आसक्ति से नये संस्कार उत्पन्न होकर फिर अंत.करण मे जा चिपटते हैं।

इस प्रकार जब एक भोग अंश भीतरसे निकल कर समाप्त हो जाता है तब उससे उत्पन्नहुए नये संस्कार फिर भीतर चले जावे हैं और इस प्रकार अज्ञानियों के भोग के समय स्थूल भोग समाप्त होना और नये भोग के सूक्ष्म संस्कार उत्पन्न होना ये दोनों क्रियाऐ होती रहती हैं। अज्ञान में होने वाली ये दोनों क्रियायें ज्ञान होने पर नहीं होती मात्र एक ही प्रारब्ध समाप्ति की क्रिया होती है अर्थात् जिस भोग के लिये शरीर वना है वह भोग ही समाप्त होता है और अज्ञान–आसक्ति न होने के कारण भोग की समाप्ति में नये संस्कार उत्पन्न होकर अंत'करण में नही चिपटते। इस प्रकार ज्ञानी के मात्र भोग के ही कर्म होते है। अज्ञानियों का कर्म आने जाने वाले चक्र के समान होने से जब

तक अज्ञान रहता है तब तक निवृत्त नहीं होता इससे विरुद्ध ज्ञानी का प्रारब्ध कर्म समाप्त हो जाता है। भोग मे राग द्वेष रूप आसक्ति न होने से नये शरीर धारण करने के हेतु रूप कर्म संस्कार उसके नहीं होते। उससे मात्र वे ही कर्म होते है जिनकी संज्ञा भोग है। अज्ञानी को स्थूल भोग होता है तब उसकी क्रिया का भाव सूक्ष्म मे से स्थूल मे आता है और उसमे आसक्ति होती है उससे नया सूक्ष्म भाव-संस्कार उत्पन्न होकर सूक्ष्म में टिकता है इसलिये उसके व्यापारका अंत नहीं आता। जैसे कोई दुकान-दार माल बेचता जाय और नया खरीदता जाय तो उसका व्यापार निवृत्त नहीं होगा, इसी प्रकार अज्ञानियो के कर्म हैं। जब कोई व्यापारी व्यापार करना नहीं चाहता और माल बेचकर अपने देश को जाना चाहता है तब वह पुराने माल को बेचता रहता है और नया माल नहीं खरीदता। जब माल बिक जाता है तब उसका व्यापार निवृत्त हो जाता है। इस प्रकार ज्ञानी के कर्म हैं।

अंतःकरण मे दो भाव होते हैं। एक भाव भोग के कर्मों में प्रवृत्त होने का होता है जो अंतःकरण में से निकल कर स्थूल में आता है। इसके निमित्त विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं है। इनको प्रारब्ध संस्कार कहते हैं इन में उत्पन्न होने का प्रबल वेग होता है। दूसरे आगामी संस्कार हैं जो जीव की आसक्ति से उत्पन्न होते हैं। वे नये होते हैं और जीव के अंतः-करण में स्थान लेते हैं। वे चाहे जल्दी स्थूल में आवें, चाहे

देर से आवे सूक्ष्म में अवश्य रहते हैं। इन दोनो प्रकार के संस्कारों में बहुत सूक्ष्म अंतर है, मोटी बुद्धि वाले अज्ञानी उस भेद को नहीं समझ सके, जब अंत करण शुद्ध होता है तब सूक्ष्म भेद समझने में आता है। जीव अपने पूर्व के प्रारब्ध कर्म मे ही परतंत्र है, आगामी में परतंत्र नहीं है इसलिये ज्ञानियो का प्रारब्ध ही समाप्त होता है, आगामी नहीं बनता। जैसे कुंभार जब पात्र बनाता है तो चक्र को बार २ घुमाता है। चक्र में दो प्रकार की शक्ति होती है। एक तो वह शक्ति जो पूर्व दी गई है और अभी अपने वेग को समाप्त नहीं कर चुकी है, दूसरी वह शक्ति जो कुंभार वर्तमान मे देता जाता है। इसी प्रकार कुंभार रूप अज्ञानी जीव अतं.करण रूपी चक्र में पूर्व और वर्तमान दो शक्तियो से काम करता है। दोनो एक साथ होने से पूर्व और वर्तमान का भेद समझना कठिन है। जब कुंभार चक्र फिराना बन्द कर देता है तब भी चक्र थोड़े समय तक घूमता रहता है, यह घूसना मात्र पूर्व की शक्ति है क्यो कि अब अन्य शक्ति नहीं दी जाती, थोड़ी देर मे चक्र ठहर जाता है। ज्ञानियो के कर्म इसी प्रकार होते हैं, क्यो कि ज्ञान के कारण आसक्ति रूप नयी शक्ति देना वे बन्द कर देते हैं। उनके जो कर्म दीखते हैं वे नये भोग का हेतु नहीं हैं। जब ज्ञान हो जाता है तब ज्ञानी कर्म शृङ्खला से निवृत्त होता है, उसके कर्म भस्मीभूत होते हैं, उनमे उसका अनुसंधान नहीं होता। मात्र पूर्व का अनुसधान अज्ञानियो को कर्म करने वाला दीखता है वास्तविक में वह कर्म करता हुआ भी कर्म का कर्ता और भोगता हुआ भी भोक्ता

नहीं रहता। जिस प्रकार कोई बड़ा वृक्ष हो, उसकी जड़ पृथ्वी में से कट जाय तो वह बाहर से कटा हुआ न दीखता हुआ भी कितने दिनों तक खड़ा दीखता है, हरा रहता है, जड़ कटने से प्रथम जो रस जड़ से ऊपर आ चुका था जब तक अपने वेग को समाप्त न करे तब तक वृक्ष के ऊपर के अंश में पहुँचा करता है, उसके नये पत्ते निकलते दीखते हैं और नये फूलों के विकसित होने की क्रिया भी दीखती है ये क्रियायें वृक्ष की जीवित होने अथवा रखने की नहीं होती वास्तविक तो जड़ कटते ही वृक्ष नहीं है। इसी प्रकार ज्ञानी की भी ज्ञान होते ही अज्ञान रूपी जड़ कट जाती है यद्यपि आंतरिक जड़ लोगों को कटी हुई मालूम नही होती और ऊपर की हरियाली देख कर वे उसे अपने समान संसार में जीता समझते हैं।

•

एक समय एक जेलखाने में दो कैदी आये। दोनोंको चौदह चौदह वर्ष की कैद हुई थी। एक का नाम शांतिलाल और दूसरे का नाम भुलाराम था। शांतिलाल अपने नाम के अनुसार सीधा था और भुलाराम बदमाश था। शांतिलाल को जेलखाने में जो काम करने को दिया जाता था उसको वह ठीक रीति से करता था और कैदियों से मेल रखता था इसलिये जेलखाने के नौकर, जेलर, चपरासी आदिक थोड़े ही दिनों में उसे चाहने लगे और उन्होंने उससे काम लेने में क्रूरता करना छोड़ दिया। थोड़े दिन पीछे शांतिलाल का शुभाचार देखकर जेलर ने उसे कैदियों का जमादार बना दिया। अब उसे काम करना नहीं पड़ता था, मात्र

कैदियों से काम लेना पड़ता था। वह अपने देश को जाना चाहता था उसको तीव्र इच्छा थी कि जैसे बने जेलखाने से छूट कर वह अपने घर पहुंच जाय परन्तु वह जानता था कि समय पूरा हुए विना वह जेलखाने से नही निकल सक्ता था। ऐसा समझ कर वह सव के साथ मेल रखता था और सत्यता से वर्तता था, ऐसा करनेसे जेलखानेका दु.ख भी उसे विशेष मालूम नहीं होता था। पांच वर्ष पीछे उसे कुछ लिखने का काम मिल गया तव तो वह कुर्सी मेज पर बैठ कर अपना काम करने लगा। कौन कैदी कहा से आया है, कितने दिन की सजा है, किस कारण सजा हुई है, इत्यादिक लिखा करता और खाने पीने का हिसाव रक्खा करता था। जैलर आदिक नौकर वदल गये, उनके स्थान पर नये नये मनुष्य आ गये, शांतिलाल उनसे पुराना था इस लिये नये आये हुए नौकरो को वार वार हर एक वात उससे पूछनी पड़ती थी, वह हर एक प्रकार की सहायता उन्हें देता था इसलिये वे भी उसे मित्र समझने लगे। इस प्रकार उसके दिन सुख पूर्वक कटते रहे। एक वर्ष की उसकी सजा कम कर दी गई और तेरह वर्ष सजा भोग कर वह राजी खुशी अपने घर पहुंच गया।

दूसरा भुलाराम पूरा वदमाश था। वह एक मनुष्य के भारी चोट मारने से और प्रथम दो वार सजा पाया हुआ होने से तीसरी वार चौदह वर्ष की सजा भोगने जेलखाने में आया था। 'मैं कैदी हूँ, मैं जेलखाने में हूं' यह विचार उसे नहीं रहता था।

जैसे वह प्रथम स्वतंत्रता से वर्तता था इसी प्रकार जेलखाने में भी वर्तता रहा। जो काम उसको सोपा जाता था, उसको हराम-खोरी करके ठीक नहीं करता था, जब जमादार सामने न होता तब अपना काम दूसरे कैदियों से कराया करता, जो वे न करते तो मार पीट करता, सबको गाली गलोज दिया करता, जमादार को भी न छोड़ता, उसके साथ भी हाथा पाई करने लगता था इस प्रकार उसका वर्तावि होने से दूसरे तीसरे दिन जैलर द्वारा उस पर कोड़ों की मार पड़ा करती थी जिससे शरीर मे निशान पड़ जाते थे परन्तु वह अपनी आदत न छोड़ता। सब कैदी, जमादार, जेलर उससे नाराज रहते, कड़े से कड़ा काम उससे कराया जाता था। वह दूसरे कैदियों का भोजन भी छीन कर खा जाया करता, जब वे जैलर के पास जाकर फरयाद करते तो जैलर भुलाराम के हंटर लगाता और दो दो तीन तीन दिन तक उसका खाना भी बन्द कर दिया जाता था परन्तु कुत्ते की पूंछ जैसे कभी सीधी नहीं रहती इसी प्रकार वह अपने आचरण ठीक न करता। उसके नाम पर कैदियों की श्रेणी मे बदमाशी का विशेषण (Remark) दिया जाता था। इस प्रकार करने से पांच वर्ष में छः वर्ष की सजा और बढ़ाई गई अर्थात् चौदह वर्ष के बदले बीस वर्ष की सजा हो गई। एक समय उसने एक कैदी स्त्री पर समय पाकर बलात्कार किया, उसका मुकद्दमा चला और इस अपराध में दश वर्ष की सजा और बढ़ गई। एक वार वह एक कैदी का भोजन छीनना चाहता था, उसने

जव छीनने न दिया तव भुलाराम उसे मारने को कुदाल लेकर दौड़ा और उसके शिर में कुदाल मारी जिससे उसके शिर में गहरी चोट आई, छः महीने तक वह खाट में पड़ा रहा किंतु अच्छा होगया! इस अपराध मे भुलाराम को आयु भर की सजा होगई।

यह जेलखाना भुगतने क्या आया था। हमेशा जेल में पड़े रहने को ही आया था!

दोनों मनुष्य एक समान चौदह २ वर्ष की सजा काटने जेल-खाने मे आये थे। उनमे से शांतिलाल का विचार सजा पूर्ण करके घर लौटने का था इसलिये उसने सजा वढ़ने का कोई काम जेलखाने मे नहीं किया, सव से मेल करके जेल काटकर एक वर्ष प्रथम ही जेलखाने से मुक्त होगया। भुलाराम की भूलों का अन्त न था! जेलखाने में भी उसने इस प्रकार क्रिया की जिससे हमेशा के लिये जेल होगई।

दोहा:—साथ साथ ही दो पुरुप, गये जेल के मांहि।
लौटा एक शीघ्र घर, दूजा लौटा नाहिं ॥ १ ॥

संसार जेलखाना है। जन्म होना जेलखाने में आना है। जिस प्रकार जेलखाने में परवश काम करना पड़ता है इसी प्रकार संसार में काम करना पड़ता है। जो सत् कर्म करने वाला मनुष्य होता है वह शातिलाल की समान वर्ताव कर के ज्ञान प्राप्त करता है ज्ञान प्राप्ति के पीछे भोग समाप्त करने के सिवाय नये कर्म

नहीं करता-और मुक्त होकर अपने स्वस्थान-आत्मा को प्राप्त कर लेता है, ज्ञान के कारण ससार में भी जीवन्मुक्त होकर मुक्त का आचार करता है। अज्ञानी अधर्मी जीव भुलाराम की समान जो २ सजायें होती हैं उन्हे वार वार भूल जाता है और सजा के भोग में भी इस प्रकार के कार्य आसक्ति सहित करता है जिनसे सजाको वढ़ा लेता है। आयुष्य भर क्या जन्म जन्मांतरों मे भी उसको सजा पूर्ण नही होने पाती। ज्ञानी का भोग कर्म और जन्म का हेतु नहीं होता, अज्ञानी भोग कर्म में आसक्ति होने से आगामी कर्म उत्पन्न करता है - जो उसके अनेक अन्य जन्मो का हेतु होते हैं।

एक वड़े शहर में एक अति श्रीमान् साहूकार रहता था। वह कजूस था और अपनी स्थिति के अनुसार खर्च करने वाला न था, पैसे को ही परमेश्वर समझता था, रात दिन उसी की उपासना किया करता। ऐसा होते पर भी वह अत्यन्त लोभी न था किन्तु चतुर था और समय पर कुछ खर्च करनेकी आवश्यकता होती तो करता भी था। लोगो में और सरकार दरवार मे उसकी प्रतिष्ठा थी। वह वहुत वडे मकान में रहता था। उसके मकान के सामने एक मोची रहता था। मोचीका घर किराये का न था उस के वावाने वनाया था। अव वह कुछ टूट गया था तो भी रहने योग्य था। मोची के घर मे मोची, मोचन, और एक लड़का था। मोची सीधा था, एक जोडी जूता रोज वनाता था और डेढ़ रुपये में वेच देता था।

एक जोड़ी जूते में आठ आने का चमड़ा लगता था इसलिये मजदूरी का एक रुपया मिल जाता था। शाम को एक रुपया लेकर वह बाजार में जाता और मिठाई पूरी आदि खाने का सामान ले आता था, तीनों मिल कर खा लेते थे। जब से मोची ने काम आरम्भ किया था तब से उसकी यह ही दिनचर्य्या थी। स्त्री भी संतोषी थी। मोची के पास कभी दस पाच रुपये जमा न हुए थे, वह जमा करने का यत्न भी नहीं करता था, रोज कमाता रोज खा लेता। जैसे और लोग अनेक प्रकार के झगड़ो में पड़ा करते है वैसे वह नहीं पड़ता था। जैसे बने वैसे ही अपने फटे पुराने कपड़ों से ही जूता सीने का काम किया करता था। गर्मी के दिनों मे छत पर बैट कर तीनो भोजन किया करते थे और साहूकार के मकान की पहली मंजिल के किवाड़ों मे से भोजन करते हुए दिखाई देते थे। साहूकार धनाढ्य होकर भी खाने पीने मे कंजूस था, सस्ती भाजी ढूंढ कर ले आता, उसकी तरकारी कभी २ करवा लेता, नहीं तो प्रतिदिन दाल रोटी भोजन किया करता था। त्योहार के दिन भी दाल रोटी ही खाई जाती थी, किसी बहुत बड़े त्योहार को वर्ष में एकाध दिन उसके घर वालों को मिष्टान्न खाने को मिलता था। साहूकार की दूसरी बार व्याही हुई स्त्री मोची मोचन को भोजन करते हुए देख कर आश्चर्य करने लगी "मोची के पास कितना धन होगा! आज कोई त्योहार नहीं है, घर भर मिठाई खा रहा है!" दूसरे दिन फिर तीसरे दिन इसी प्रकार लगातार छः सात

दिन तक मिठाई खाते देखती रही। न कभी चूल्हा जलता, न कभी दाल रोटी होती। रोज २ मिठाई खाते देख कर एक दिन सेठानी अपने पति से कहने लगी, देखो जी! यह मोची रोज मिठाई खाया करता है। क्या यह तुम से भी विशेष धनवान् है? तुम्हारे यहां तो कभी आठ सात मास पीछे भी मिष्टान्न नहीं बनता। बाजार से तो कभी लाया ही नहीं जाता। साहूकार यह बात सुनकर मन में हंसा और कहने लगा, ये मोची लोग हैं। इनकी बराबरी हम कैसे कर सकते हैं। वे धनवान् नहीं है। धन का सुख वे नहीं जानते। धन की कीमत भी उन्हें नहीं मालूम है! तू आज से देखा कीजियो कि वे क्या खाते हैं। मैं जानता हूँ कि एक दो दिन पीछे वे मिठाई खाना भूल जांयगे। स्त्री ने कहा, तुम दो दिन की बात कहते हो, मैं दश दिन से देख रही हूँ। साहूकार ने कहा, तू सच कहती है परन्तु अब देखियो। (मन में) मोची को मिठाई खाना भुला देना चाहिये नहीं तो मिठाई की चाट मेरे घर मे घुस जायगी तो सैकड़ों हजारों रुपयों का प्रति वर्ष नाश करेगी। यह विचार कर साहूकार दूसरे दिन सबेरे ही मोची के घर गया और मोची से कहने लगा, भगतजी, मेरा जूता बना दो। मोची विचारने लगा, यह क्या बात है? इतने वर्षों से मैं जूता बनाता हूँ, सेठजी ने कभी मुझसे जूता नहीं बनवाया, आज क्या है जो मुझसे जूता बनवाते हैं। कुछ बात उसकी समझ में न आई परन्तु उसके पैर का नाप ले लिया और आठ आने चमड़े के लेकर कहा, सेठजी, शाम को पांच बजे जूते

बन जांयगे, एक रुपया और देकर जूते ले जाना। मोची ने जूते बना लिये, शाम को पांच बजे साहूकार जूते लेने गया, मोची ने जूते पहना दिये। सेठ ने कहा, रहदासजी, जूना कुछ कड़ा है, कुछ ठोक के बढ़ा दो। मोची जूता लेकर घर में आया और लकड़ी की डाट भर कर बढ़ाने लगा। मोची के जाने के पीछे सेठ ने दो रुपये जेब से निकाल कर उसके बैठने के चमड़ेके नीचे रख दिये। जब मोची घर से लौट कर आया तो सेठ जी जूते पहन कर और एक रुपया देकर चले गये। मोची बाजार जाने के लिये चमड़ा उठाने लगा तं' दो रुपये दिखाई पड़े, उन्हें देखकर मोची विचारने लगा, हैं, ये रुपये कैसे? दो रुपये ये हैं, एक रुपया मेरे पास हैं, तीन रुपये हुए, 'मकान की एक कड़ी टूटी हुई है, तीन रुपये में बन जायगी, विचार कर उसने स्त्री से आकर कहा, नथ्थी (लड़के का नाम) की मा, आज मैं बाजार से खाने को नहीं लाऊगा, पड़ोसिन से कुछ आटा मांग करटिकड़ बना ले। स्त्री ने ऐसा ही किया और उस दिन छत पर बैठ कर टिकड़ खाये गये! दूसरे दिन मोची के पास चार रुपये हो गये उन्हें खर्च करने को उसका जी नहीं चाहता था वह दिन भी टिकड़ खाकर निकाल दिया, अब उसके पास पांच रुपये हो गये। उस दिन भी मिठाई नहीं लाया, एक से खिचड़ी उधार लेकर पकाई गई और छः रुपये उसके पास हो गये। मोचन ने कहा, उधार लाते हुए आज कई दिन हो गये, उधार कब तक लाऊंगी? मोची ने कहा, इनमें से रुपया खर्च करने से काम न होगा।

मोचन के कहने से वह बाजार जाकर एक रुपये का अन्न ले आया और उससे काम चलने लगा। अब मोची के पास रुपया बढ़ने लगा। जब दश रुपये हो गये तो उसने विचार किया, एक कान की वाली बन जाय तो अच्छा है। बाली न बनी थोड़े दिन में बीस रुपये जमा हो गये तब पचीस रुपये की इच्छा हुई। कुछ दिन में पचीस हो गये तब पचास चाहने लगा और पचास से सौ की इच्छा हुई, इस प्रकार मोची मिठाई खाना भूल गया। रोज रसोई बनने लगी। सेठानी रोज देखा करती थी, सोचने लगी, यह क्या हुआ? कहा तो रोज मिठाई खाया करते थे! अब रोज रोटी खाते है। सेठ ने कुछ छू मतर (मन्त्र) तो नहीं कर दिया। एक दिन पति से कहने लगी, स्वामिन्, अब तो मोची कभी मिठाई नहीं खाता, यह क्या हो गया। सेठ ने जी में कहा, दो रुपये की गोली ने मोची के मिठाई खाने के दर्द को मिटा दिया! (पत्नि से) प्रिये, इस मोची के पास कभी दो तीन रुपये जमा नहीं हुए थे इसलिये रुपया जमा करने की चाट नहीं लगी थी, मैं जूते बनवाने उसके पास गया और जूतों के दामों के सिवाय दो रुपये उसकी गद्दी के नीचे डाल आया। उस दिन उसके पास तीन रुपये इकट्ठे हो गये। तीन रुपये देख कर जमा करने लगा। अब मिठाई कैसे खाय? मेरे पास तो लाखों रुपये हैं, मैं किस प्रकार नित्य मिठाई खा सक्ता हूँ? जब तक रुपया दिखाई नहीं देता, जब तक रुपया जमा करने की चाट नहीं पड़ती तब तक मिठाई खाई जाती है। स्त्री सेठ की युक्ति से

अवाक् (कायल) हो गई। सेठ ने दो रुपये खर्च करके भी खर्च वाली स्थिति को घर में नहीं घुसने दिया ।

मोची का प्रथम का वर्ताव-मात्र भोग कर्म का था और सेठ जी की युक्ति के पश्चात् का वर्ताव आगामी कर्म का था। कमाना खाना भोग के कर्म हैं। खाना और जोड़ना आगामी कर्म हैं । लालच का यह परिणाम होता है और अनेक प्रकार की चिन्तायें उत्पन्न करके चक्र चला करता है, जिसको निन्यानवे का फेर कहते हैं। जगत् में भोग निमित्त आकर आगामी को खड़ा करना नवीन कर्म-जन्मों का पैदा करना है।

अन्तिम सारांश:—जब कर्म फलभोग मे प्रवृत्त होते हैं तब शरीर होता है। इस शरीर से भोग रूप कर्म अवश्य होते हैं परन्तु भोग रूप फल अन्य फल को नहीं दे सकते । ज्ञानियों का कर्म जो संसारियों के देखने मे आता है वह भोग कर्म होता है। भोग का भोग फिर नहीं होता। मात्र भोग कर्म से फिर शरीर धारण करना नहीं पड़ता। ज्ञानी जन्म धारण कर के कर्म नहीं करता, मात्र भोगता है इसलिये वह जन्म रहित ही हो जाता है। जो अज्ञानी है वह भोग कर्म के साथ आसक्ति से नये आगामी कर्म उत्पन्न करता है और ज्ञान न होने से पूर्व संचित भी बना रहता है इसलिये उनको जन्म धारण करना पड़ता है। चक्र की निवृत्ति ज्ञान बिना कभी नहीं होती। ज्ञान बिना भोग कर्म के साथ आगामी कर्म का न बनना भी नहीं बन सकता जैसा कि ऊपर के दृष्टांत से समझाया गया है।

समाप्त।